यह देखा गया है कि दिन में दो तीन बार थोड़े समय के लिए रोगी को तौलिया स्नान आदि प्रयोग करने से मूत्रस्राव सरल होता है, शरीर से युरिया आदि विष आसानी से निकल जाते हैं और शरीर का तमाम काम (metabolism) ठीक रूप से चलने लगता है (Otto Glamer. Ph.D.—Madical Physics, Vol. I. p. 1048, Chicago, 1949)। वास्तव में स्नान के बाद शरीर के विष को नाश तथा दूर करने वाले यंत्रों की शक्ति इस प्रकार बढ़ जाती है कि वे रोग के विष और उनके कीटाणुओं को शरीर के अन्दर ही नष्ट कर डालते हैं या उन्हें निकाल बाहर करने में सक्षम हो जाते हैं।

इसके अलावा स्नान से शरीर के रक्त-कण विशेषकर श्वेत रक्त-कणों की वृद्धि होती है। इसी कारण शरीर के अन्दर रोग आरोग्य करने की जो व्यवस्था है, स्नान के द्वारा वह शक्तिशाली होने से रोग आरोग्य हो जाता है।

रोग के समय स्थान का प्रधान गुण यही है कि, इससे रोगी इतने आराम से रहता है कि उसे पता नहीं चलता है कि रोग किस प्रकार दूर हो गया। बुखार आदि में साधारणतया कई उपसर्ग एकत्रित हो जाते हैं, किंतु रोग के आरम्भ से ही यदि रोगी को स्नान कराया जाय अथवा बाथ आदि दिये जायें तो पेट का फूलना, पतले दस्त, सिर-दर्द कान की पीड़ा न्यूमोनिया, हृदय की सूजन, मूत्रग्रन्थि की सूजन, खून की उल्टी एवं पक्षाघात इत्यादि उपसर्गों का प्रकाश ही नहीं होने पाता एवं डाक्टरी पुस्तकों में हर रोग के जिन साधारण लक्षणों का उल्लेख है, उनमें से अधिकांश लक्षण प्रकट ही नहीं होने पाते (J. H. Kellogg, M.D.—Rational Hydrotherapy, p. 585, Battle Creek, 1928)।

साधारणतया रोग होने पर देखा जाता है कि रोग के हट जाने पर रोगी का शरीर आधा हो गया है। किंतु रोगी की पहली अवस्था से जल-चिकित्सा चलाने से शरीर विशेष खराब नहीं होने पाता और रोग

के दूर हो जाने पर ऐसा मालूम ही नहीं होता कि रोगी को बीमारी हुई थी।

रोग के समय स्नान करने से रोग के बहुत से लक्षण आश्चर्यजनक रीति से चले जाते हैं।

किन्तु तरुण रोग और बुखार आदि रोगों में रोगी को हमेशा ही स्नान कराना पड़ेगा, ऐसा नहीं। साधारणतः रोगी को तौलिया-स्नान गीली चादर की लपेट और घर्षण-स्नान के प्रयोग करने से ही काफी लाभ होता है।

बहुधा रोगी ठण्डे पानी का बहुत विरोध करते हैं। ऐसी हालत में क्रमानुसार ठण्डे पानी के स्नान का (graduated bath) प्रयोग किया जा सकता है। पहले गुनगुना पानी से स्नान शुरू कर कुछ देर बाद उसमें ठण्डा पानी मिलाकर धीरे-धीरे पानी को ठण्डा करते जाना चाहिये। अथवा पुराने रोगियों को प्रत्येक दिन पहले का अपेक्षा अधिक ठण्डे पानी से स्नान कराया जा सकता है

जैसे क्रमशः अधिकतर ठण्डा पानी व्यवहार करके अन्त में पूर्ण ठण्डे पानी का व्यवहार करना उचित है, उसी प्रकार धीरे-धीरे स्नान का समय भी बढ़ाते जाना चाहिये रोगियों को पहले थोड़े समय तक स्नान कराके धीरे-धीरे स्नान के समय को बढ़ाना उचित है। इस प्रकार रोगी धीरे-धीरे ठण्डे पानी का आदी हो जाता है और उसे किसी भी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती।

दुर्बल रोगीयों पर साधारणतः तौलिया-स्नान का प्रयोग किया जाता है। बाथ देने के पहले सिर, मुँह, गर्दन, पेड़ू एवं जानु-सन्धि आदि स्थान शीतल जल से धोकर ठण्डा कर लेना उचित है। इसके बाद रोगीको बिस्तर पर लिटाकर उसे एक चादर या कम्बल से ढँक देना चाहिये।

अतःपर हर बार रोगी के शरीर का एक-एक हिस्सा उघारकर ठण्डे पानी में गीली की हुई तौलिया से पांच सेकेंड तक पोंछकर, आखिर में इतने ही समय तक उसे खाली हाथों से मल देना जरूरी होता है। इसके

बाद पांच से दस सेकेंड तक दूसरे सूखी तौलिया से इस जगह को पोंछ कम्बल से उस हिस्से को ढँककर फिर शरीर के दूसरे हिस्सों को भी इसी प्रकार पोंछना चाहिये। पहले रोगी का एक हाथ उसके बाद उसका दूसरा हाथ, अन्त में एक-एक कर पेड़ू, छाती, पैर और जांघों का ऊपरी भाग एवं सबके बाद पीठ पाँव, और जाँघों का पिछला हिस्सा पोंछना आवश्यक है। तौलिया-स्नान का प्रयोग करते समय रोगी के गुदा-द्वार से जननेंद्रिय को ऊपरी हिस्सा गीले तौलिये से जिस प्रकार अच्छी तरह पोंछा जाय, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। अगर रोगी के हाथ पैर ठण्डे हों या रोगी अत्यन्त दुर्बल, बच्चा या वृद्ध हो तो तौलिया को खूब अच्छी तरह निचोड़ लेना आवश्यक है। और उसके पैर के नीचे एक गरम जल को थैली रखनी उचित है। यह याद रखना चाहिये कि अच्छी तरह से तौलिया-स्नान करने के लिए २० से ३० मिनट समय की आवश्यकता होती है।

घर्षन-स्नान (cold friction)

किन्तु विभिन्न वैज्ञानिक स्नानों में ठण्डो मालिश के समान लाभदायक कम ही स्नान हैं। एक भींगे गमछे को दाहिने हाथ में लपेटकर उससे रोगी के शरीर को रगड़ने को घर्षण स्नान का प्रयोग करना कहते हैं। घर्षण स्नान के प्रयोग के पहले रोगी के सिर, मुख और गर्दन को ठण्डे पानी से धो डालना चाहिये और फिर उसे एक कम्बल से गले तक ढँक देना उचित है। गर्मी के दिनों में कम्बल के बदले बिछौने की चादर से ढँकने से भी काम चल सकता है। इसके बाद मालिश का प्रयोग करना चाहिये। मालिश के समय परिचर्याकारी का दाहिना हाथ भींगे गमछे से इस प्रकार लपेटना चाहिये जिससे हाथ के सामने की ओर गमछा काफी समतल रहे। फिर दाहिने हाथ के पिछे से बायें हाथ द्वारा बचे हुए गमछे को खूब खींचकर पकड़ करके दाहिने हाथ से रोगी के शरीर को रगड़ना चाहिये। हर दफे थोड़ा-थोड़ा कम्बल हटाकर शरीर के कुछ हिस्से को

बाहर करके उसे रगड़ना आवश्यक है। शरीर के प्रत्येक भाग को इस प्रकार रगड़कर लाल और गरम करके एवं फिर ढँककर दूसरे अंग को इसी प्रकार रगड़ना चाहिये। इसी प्रकार बारी-बारी से शरीर के प्रत्येक अंग को रगड़ना उचित है। पहले छाती, फिर पेट, उसके बाद हाथ, अन्त में बारी-बारी से पैरों के ऊपरी भाग, पीठ चूतर और जंघे के पिछे की ओर घर्षण करना चाहिये। गमछे को साधारणतया निचोड़ लेना उचित है। तब यदि रोगी का ताप अधिक हो तो गमछे में यथेष्ट पानी रखा जा सकता है। साधारणतया जाड़े के दिनों में कम और गर्मी में अधिक जल का व्यवहार किया जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि तौलिया द्वारा घर्षण-स्नान नहीं होता। इसका प्रयोग करने के लिए चार या साढ़े तीन हाथ का पतला गमछा आवश्यक है।

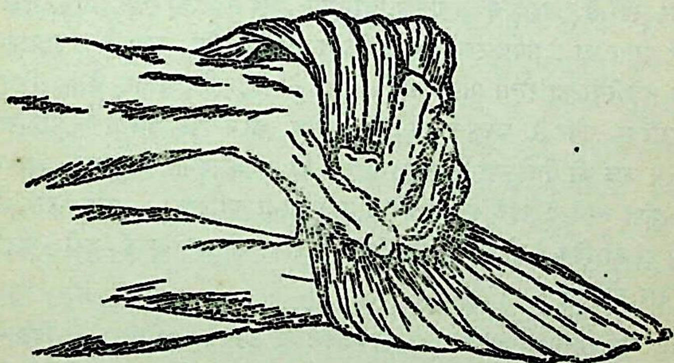
घर्षण-स्नान का प्रयोग करते समय सदा इस बात पर ध्यान आवश्यक है कि शरीर गरम है या नहीं। शरीर गरम नहीं होने पर घर्षण-स्नान का प्रयोग करने से कभी भी काम नहीं चल सकता। यदि शरीर ठंडा हो तो रोगी को छः मिनट के लिए वाष्पस्नान का प्रयोग कराने के बाद ही घर्षण-स्नान का प्रयोग करना चाहिये। अथवा, उसे थोड़े समय के लिए उष्ण पाद-स्नान देकर घर्षण-स्नान कराने से भी काम चल सकता है। अथवा, एक गरम थैली द्वारा रोगी का एक हाथ गरम कर लेने पर उस हाथ से घर्षण-स्नान का प्रयोग किया जा सकता है। घर्षण-स्नान का प्रयोग करते समय गरम थैली को दूसरे हाथ पर रखा जा सकता है। ऐसे होने पर पहले हाथ का काम समाप्त होते-होते दूसरा हाथ गरम हो उठता है एवं घर्षण-स्नान के उपयुक्त हो जाता है। साधारणतया दो-एक स्थानों पर गरम थैली रखकर घर्षण-स्नान करने से ही सारा शरीर गरम हो उठता है एवं और गरम थैलियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि घर्षण-स्नान के कारण कोई अंग शीतल हो जावे तो गरम पानी की एक थैली इस स्थान पर पांच-सात सेकेंड के लिए रखकर उस अंग में स्वाभाविक

ताप वापस लाना उचित है। रोगी को यदि ठंड मालूम पड़े तो उसके पैरों में गरम जल की एक थैली रखकर घर्षण-स्नान का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार घर्षण-स्नान का प्रयोग करने से समूची स्नायुमंडली, हृदय विभिन्न ग्रन्थियाँ यानी समूचा शरीर ही संजीवित हो उठता है।

कुछ दिनों तक पाँच-छः मिनट तक वाष्पस्नान या थोड़ी देर तक धूप-स्नान लेकर ३० मिनट तक इसका प्रयोग करने से देखते ही देखते रंग साफ होता है, चेहरा बहुत अच्छा हो जाता है और निर्मल स्वास्थ्य की पूर्ण दीप्ति से समस्त शरीर उज्वल हो उठता है।

साधारणतया दिन मे एक बार इसका प्रयोग करना काफी है। किंतु जब रोगी की बार-बार या लम्बे समय तक के लिए उत्ताप चिकित्सा करने की आवश्यकता हो अथवा जब रोगी को बुखार हो तब हमेशा रोगी को दिन में कम से कम दो बार घर्षण-स्नान का प्रयोग करना चाहिये।



घर्षण स्नान (cold friction)

इससे हृदय अच्छा रहता है एवं शरीर में रोग के प्रतिरोध करने की ताकत काफी बढ़ जाती है।

आंशिक रूप से किसी भी अंग पर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

हृदय पर इस प्रकार की मालिश से वह बहुत जल्दी चंगा हो जाता है। यकृत पर प्रयोग करने से यकृत ठीक होता है। पेट पर प्रयोग करने से पेट की अवस्था हर प्रकार से सुधरती है। पीठ और मस्तिष्क पर इस प्रकार के घर्षण से मस्तिष्क और स्नायुमंडली की क्षमता विशेष वृद्धि पाती है। इसी कारण सभी स्नायविक रोगों में यह बहुत ही लाभप्रद है।

रक्तशून्य शरीर में रक्त उत्पन्न करने में घर्षण स्नान के समान पृथ्वी पर और कोई उपाय है कि नहीं, इसमें सन्देह है। इसका प्रयोग करने पर रक्तशून्यता दूर होकर केवल पन्द्रह दिनों में ही रोगी का शरीर नये खून से लाल हो उठता है। शरीर में रक्त उत्पादन की जो व्यवस्था है, घर्षण-स्नान से वह उत्पन्न होती है। इसी कारण इसके प्रयोग से रक्तहीनता दूर होती है।

सब प्रकार के बुखारों में रोगी के ज्वर को कम करने के लिए यह एक श्रेष्ठ उपाय है अथवा ज्वरनाशक इस प्रकार का निर्दोष उपाय पृथ्वी पर और नहीं है। पहले मैं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा मलेरिया ज्वर ठीक नहीं कर पाता था। घर्षण-स्नान का प्रयोग करने पर मैंने देखा है कि प्रायः हर मलेरिया का रोगी प्राकृतिक चिकित्सा से ठीक हो जाता है। किंतु मलेरिया ज्वर में घर्षण-स्नान का प्रयोग करने पर हमेशा ही पैरों पर गरम जल की थैली रखनी उचित है एवं ठंड व कँपकँपी के समय अथवा कँपकँपी आने से पहले इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यक्ष्मा रोग में भी इसका दिन में दो बार प्रयोग करने से रोगी की अवस्था में बड़ी जल्दी सुधार होता है।

जब रोगी की अवस्था अत्यन्त जटिल हो उठे, तब रोगी को दिन में दो बार घर्षण-स्नान का प्रयोग कराने से देखते-देखते ही रोगी के विभिन्न लक्षण दूर हो जाते हैं एवं रोगी का शरीर जल्दी ही निरोग हो जाता है।

घर्षण स्नान से विशेष रूप से सब प्रकार के स्नायविक रोगों में लाभ होता है।

श्रीयुत् सोमेशचन्द्र बसु संसार के विद्वत् समाज में सुपरिचित हैं।

उनका स्मरण-शक्ति इतनी तेज है कि एक सौ राशियों के नीचे उतनी ही राशि रखकर दोनों का पूर्ण फल जब कभी जबानी बोल सकते हैं। यूरोप एवं अमेरिका के विद्वान लोग उनकी यह क्षमता देखकर दंग रह गये। ये एक महात्मा पुरुष एवं महान योगी हैं। परन्तु शरीर पर ध्यान न देने के कारण एव अन्यान्य कारणों से वे कठिन स्नायविक रोग के शिकार हुए। वे अच्छी तरह घूम-फिर भी नहीं सकते थे। खड़े होते ही प्रायः गिर पड़ते। अनजाने ही वे तरह-तरह से अंग-भङ्गी करते। कभी उनका हाथ नाचता, कभी प व मुँड़ जाता, कभो गरदन की मांसपेशी अपने आप कई वार पकड़कर शान्त हो जाती। हर वक्त उनके शरीर में यह मरोड़ (spasm) चलना रहना। वे एक क्षण भी चुपचाप वैठे नहीं रह सकते थे कभी आगे झुककर सिर बिस्तर से लगा लेते, कभी शरीर खींचकर दूसरी तरफ पड़ जाते सोये रहने पर भी प्रायः हमेशा ही समूचे बिछौने पर लोटते रहते थे डाक्टरी भाषा में इस रोग को Locomotor ataxia कहते हैं। इस रोग से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने कलकत्ते के बड़े बड़े डाक्टर एवं वैद्यों से करीब दो साल तक चिकित्सा करायी किंतु उससे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा शुरू करने का सकल्प किया। मैंने उन्हें घर्षण-स्नान के साथ-साथ पद्धति के अनुसार मालिश, पेट एवं मेरुदंड के गरम-ठंडा प्रयोग डूस भींगी चादर की लपेट एवं फूट फ्रैक : पाँव की लपेट आदि का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इसके अलावा घर पर वे भींगी कमर पट्टी और मेरुदण्ड पर ढँकी हुई पट्टी (heating compress) का प्रयोग करते। सोमेश बाबू का पेट बिलकुल साफ नहीं होना था। चिकित्सा के तीसरे ही दिन उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें इस प्रकार साफ पाखाना हो रहा है कि जैसा जीवन में कभी भी नहीं हुआ। उनके स्नायविक लक्षण भी शीघ्र ही कम होने लगे। प्रधानतया घर्षण स्नान के फलस्वरूप तीन-चार दिनों में ही उनकी अस्थिरता बहुत कुछ कम पड़ने लगी एवं शरीर का अकड़ना शीघ्र कम होने लगा। इसके बाद उन्होंने एक

दिन मुझसे कहा कि अब टहलने जाने पर मैं लड़खड़ाकर गिर नहीं पड़ता। पहले कई दिनों तक उनके साथ आदमी आता एवं बड़ी सावधानी से उन्हें लाया जाता। परन्तु केवल सात दिन के बाद ही वे अकेले मेरे चिकित्सालय में चिकित्सा कराने आने लगे। चिकित्सा के पहले प्रारम्भिक कई दिनों तक रोज मुझसे पूछते—मैं बचूंगा कि नहीं? पर अब दिन पर दिन उनके जीवन की आशा क्रमशः लौटने लगी। गत दो वर्षों से वे बाहरी दुनिया से अलग-से हो रहे थे। अब थोड़ी देर के लिए वे घर से बाहर निकालने लगे। अन्त में उन्होंने सबको आश्चर्यचकित कर दिया जब चिकित्सा आरम्भ करने के केवल सोलह दिन बाद ही अकेले घर से बाहर जाकर यादवपुर इंजिनियरिङ्ग कालेज की गवर्निङ्ग बाडी की बैठक में भाग लिया। उनका वजन पहले दो मन के करीब था। रोग भुगतने भुगतते उनका वजन एक मन दस सेर रह गया था। चिकित्सा के चार महीने बाद एक दिन मैंने देखा कि उनके वजन में २४ पौंड की वृद्धि हुई है

वास्तव में स्नायुमंडली को उद्दीपन करने में घर्षण-स्नान के समान और कुछ भी नहीं है। इस विषय में सभी प्रकार के स्नानों में यह श्रेष्ठ है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्नायुमंडली ही हमारे शरीर का राजा है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारी स्नायुमंडली हमारे शरीर के सारे यंत्रों को परिचालित करती है। स्नायु के कारण ही हमारी पाकस्थली को खाद्य-पदार्थ को हजम कर पाती है, अंतड़ियों से मल बाहर होता है मूत्रग्रन्थि, फेंफड़े, हृदय और शरीर के सभी अवयव अपने अपने कार्य को सम्पादित करते हैं। हमारी विचारधारा यहाँ तक कि स्मरण-क्रिया भी स्नायुयों के कार्य का अंश है। इसी कारण घर्षण-स्नान से स्नायुमंडली को स्निग्ध और उद्दीपित करने से उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सारे शरीर की स्नायुयें इस प्रकार उद्दीपित होती हैं कि शरीर में किसी भी प्रकार के रोग का रहना असम्भव हो उठता है।

सिजबाथ (sitz bath)

कमजोर रोगियों को कभी-कभी सिजबाथ देने से लाभ होता है। एक शब्द में सिजबाथ का अर्थ है लिङ्गस्नान। एक साफ कपड़े के छोटे टुकड़े को शीतल जल मे डुबोकर इस जल से लिङ्ग के सिर को धीरे-धीरे रगड़कर धो डालने को ही सिजबाथ कहते हैं। हर बार पन्द्रह मिनट से लेकर तीस मिनट तक इस स्नान को लेना आवश्यक होता है। आवश्यकता होने पर इसे दिन में दो-तीन बार लिया जा सकता है। स्नान लेते समय हमेशा दोनों पांव सूखे रहने चाहिये। कपड़े से इस प्रकार जल गिराना चाहिये कि जल किसी भी हालत में लिङ्ग के सिर के मांस को स्पर्श न करे। लिङ्ग के ऊपर के चमड़े को इस प्रकार आगे खींचकर उस पर जल डालना चाहिये कि भीतर के मांस पर जल न पड़े।

मूसलमानों के लिङ्ग के सामने का यह चमड़ा कटा होता है। किंतु जननेन्द्रिय के नीचे जुड़े मुख की तरह जो चमड़ा रहता है, उसे ही कपड़े के टुकड़े को भिगोकर बार बार धीरे-धीरे हल्के हाथ से रगड़ करके धो लेने से ही उनका सिजबाथ लेना हो जायगा।

स्त्रीयाँ कपड़े को पानी में भिगोकर जननेन्द्रिय के बाहरी भाग को दोनों तरफ धीरे-धीरे धो डालें। पानी किसी भी अवस्था में भीतर प्रवेश न करने पावे (Louis Kuhne—The New Science of Healing, p. 111)

जो रोगी कमजोरी के कारण बिस्तर से उठ न सकते हों, उन्हें सिजबाथ से सबसे अधिक लाभ होता है। इन रोगियों को दिन में तीन बार सिजबाथ देना चाहिये।

किसी प्रकार के परिश्रम के कारण शरीर के गरम हो जाने पर सिजबाथ बड़ो जल्दी शरीर को शीतल कर देता है। आधे घंटे तक सिजबाथ लेने से भयानक श्वास-रोग भी कम पड़ सकता है। दमा, न्यूमोनिया, डिप्थीरिया और कैन्सर आदि रोगों में भयंकर श्वास-कष्ट सिजबाथ से बड़ो

जल्दी बन्द हो जाता है। बीस मिनट तक सिजबाथ के बाद प्रायः रोगी स्वयं सो जाता है।

सभी प्रकार के स्नायविक रोगों में इससे बहुत ही लाभ होता है जिन लोगों को नींद न आती हो वे यदि दिन में हिपबाथ एवं रात में सोने के पहले सिजबाथ लेकर बरामदे में सोवें, तो उन्हें जल्दी अनिद्रा के कष्ट से छुटकारा मिल सकता है। क्रोधी स्वभाव के मनुष्य, आसानी से मानसिक कष्ट के शिकार होनेवाले व्यक्ति एवं स्वभाव से ही अति चंचल व्यक्ति यदि कुछ दिनों तक सिजबाथ लें तो उनका स्वभाव धीरे-धीरे शान्त हो जाता है। स्नायुशूल और साइटिका रोग में इससे बड़ा ही फायदा है कि केवल इसी के द्वारा अनेक उन्माद रोगी रोगमुक्त हो गये हैं। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग में भी इससे बहुत लाभ होता है।

सिजबाथ से स्त्रियों को सर्वाधिन लाभ पहुंचना है। प्रायः सभी स्त्री रोगों के लिए सिजबाथ की व्यवस्था की जा सकती है।

किंतु यदि रोगी में कटिस्नान लेने की शक्ति हो तो अलग से सिजबाथ नहीं लेने से भी काम चल सकता है क्योंकि, कटिस्नान में सिजबाथ के सारे लाभ प्रायः होते हैं यही कारण है कि वर्तमान में सिजबाथ पृथ्वी के सभी देशों से उठ-सा गया है एवं कई देशों में सिजबाथ कहने से लोग कटिस्नान ही समझते हैं। कटिस्नान में मेरुदंड को डुबोकर स्नान लेने से सिजबाथ का काम हो जाता है यदि रोगी में कटिस्नान लेने की क्षमता न हो, तो घर्षण-स्थान से सिजबाथ की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। किंतु यदि रोगी को कटिस्नान लेने की क्षमता न हो अथवा घर्षण-स्नान के प्रयोग की सुविधा या सुयोग सम्भव न हो तो उसे सिजबाथ देना अत्यन्त आवश्यक है।

———

नवाँ अध्याय

जल-चिकित्सा की अन्यान्य विधियाँ

[१]

जलपट्टी (cold compress)

मनुष्य-देश के अधिकांश रोग ही डूस, वाष्पस्नान और घर्षण-स्नान आदि सारे शरीर की चिकित्सा (general treatment) से आराम हो सकते हैं। किन्तु कई बार अस्वस्थ अंग को विशेष चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अन्य अवस्थाओं में छोटी-मोटी बीमारियाँ केवल अस्वस्थ अंग की चिकित्सा से ही अच्छी हो जाया करती हैं और कई बार सारे शरीर का इलाज कर लेने पर भी विभिन्न अवस्थाओं के लिए अलग-अलग चिकित्सा की आवश्यकता होती है। इन में जलपट्टी सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। ठंडक का प्रयोग यद्यपि अत्यन्त पुरातन विधि है, तथापि यह still maintains an important place in modern medicine—अब भी इसने आधुनिक चिकित्सा में एक आवश्यकीय स्थान ले रखा है (W. Bierman. M.D.—Therapeutic Use of Cold; The Journal of American Medical Association, p. 1192, April 2, 1955)।

शीतल जल में भिगोकर एक साफ कपड़े के टुकड़े को तह करके शरीर के किसी स्थान पर गरम होने के पहले ही बदल देने को जलपट्टी कहते हैं। आवश्यकतानुसार पाँच से दस मिनट के बाद इसे बदलने से काम चल सकता है। कुछ समय बाद पन्द्रह से तीस मिनट के बाद इसे बदला जाना चाहिये। जलपट्टी का हमेशा ही काफी बड़ा होना जरूरी है। शरीर के जिस अंग पर इसका प्रयोग करना हो, उसे आक्रांत अंग के चारों ओर काफी दूर तक पट्टी लपेटना आवश्यक होता है। यदि शरीर के किसी ऐसे भाग

में जलपट्टी का इस्तेमाल करना हो जो पानी में डुबोया जा सकता हो तो इस अंग को ठण्डे जल में डुबो रखने से भी जलपट्टी का काम होता है।

विभिन्न रोगों में शरीर के भिन्न स्थलों पर इस जलपट्टी का प्रयोग हो सकता है। स्नायु और धमनी आदि के द्वारा बाहर के चमड़े के साथ हमारे भीतरी यन्त्रों का संयोग है। इसीलिए विभिन्न यंत्रों के संयोग में इन यंत्रों के चमड़े के ऊपर पट्टो का प्रयोग कर इसका असर (reflex effects) बढ़ाया जा सकता है।

जोर के बुखार में रोगी के सिर, गरदन एवं मुख पर देर तक बड़ी जल-पट्टी का प्रयोग करने से ज्वर बड़ी जल्दी उतर जाता है। इससे प्रलाप बन्द हो जाता है, सिरदर्द और खून की अधिकता कम हो जाती है तथा बड़ी आसानी से रोगी को नींद आ जाती है। ज्वर की हालत में इस पट्टी से रोगी का सारा सिर और गरदन ढँक देना जरूरी होता है।

बुखार के रोगों के पेड़ू पर आधा घंटे से लेकर एक घंटे तक गीले गमछे की पट्टी का इस्तेमाल करके ज्वर दो डिग्री तक कम किया सकता है। बुखार में दिन में तीन-चार बार आध घंटे से लेकर एक घंटे तक इस पट्टी के प्रयोग करने की आवश्यकत्ता होती है। ज्वर कम करने के लिए और ज्वर के समय पेट ठीक रखने के लिए पेड़ू पर ठंडी पट्टो के प्रयोग से बहुत लाभ होना है। ज्वर के आरम्भ से लेकर अन्त तक इस पट्टी का प्रयोग आवश्यक होता है।

खूब तेज बुखार में मेरुदंड के ऊपर ठण्डी पट्टी के प्रयोग से भी ज्वर बहुत कम हो जाता है।

दस्त (diarrhoea) में पेट जब गरम रहे तब पेड़ू पर भींगे गमछे की तह करके पट्टी का प्रयोग किया जाय तो परिमित दस्तों के बाद दस्त अपने आप बन्द हो जाता है। किन्तु अधिक समय तक इस पट्टी का इस्तेमाल करना हो तो दिन में दो बार पेड़ू पर गरम-ठण्डा देने के बाद जलपट्टी का व्यवहार करना आवश्यक होता है।

मुख और ऊपरी मेरुदंड के ऊपर एक साथ ही जलपट्टी का प्रयोग

करने से नाक की श्लैष्मिक झिल्लियाँ संकुचित हो जाती हैं और इसके फल-स्वरूप नाक से खून गिरना बन्द हो जाता है।

हृदय की धड़कन (palpitation of the heart) में हृत्पिण्ड के ऊपर दिन में दो बार तीन से दस मिनट के लिए गीले गमछे की पट्टी रखने से बहुत ही जल्दी लाभ होता है। पहले केवल पांच मिनट तक पट्टी रखकर क्रमशः समय बढ़ाते जाना चाहिये। पट्टी हटा लेने के बाद उस स्थान को रगड़कर लाल और गरम कर लेना उचित है। ऐसे बहुत से रोगी हैं जिनके हृदय का स्पन्दन स्वभावतः एक मिनट में पचहत्तर बार की अपेक्षा बहुत अधिक बार होता है। बहुतेरे पुराने रोगियों के हृदय की धड़कन (स्पन्दन) बुखार न होने पर भी प्रति मिनट सौ से लेकर एक सौ बीस तक होती है। किसी-किसी को इससे भी ज्यादा होता है। ऐसे रोगियों को इस पट्टी का प्रयोग करने से कुछ ही दिनों में हृदय का स्पन्दन स्वाभाविक हो जाता है। छाती पर पट्टी रखने से जिन्हें जाड़ा लगे उन्हें पैरों के नीचे गरम पानी की बोतल या थैली रख लेनी चाहिये।

शरीर की सभी प्रकार की भीतरी तथा बाहरी सूजनों (inflammation) में जलपट्टी जादू की तरह काम करती है। सूजन की पहली अवस्था में देर तक जलपट्टी का प्रयोग करके दिन में दो बार दो-तीन घंटे के बाद बीच-बीच में पाँच से दस मिनट तक के लिए गरम सेंक देना जरूरी होता है। सूजन की गति और जीवानुओं की बाढ़ को रोकने के लिए ठण्डी पट्टी के समान लाभदायक और कोई दुसरी चीज नहीं है।

आग से जल जाने के कारण उत्पन्न सभी प्रकार के दर्द और पीड़ा जलपट्टी के प्रयोग से आश्चर्यजनक रूप से दब जाते हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि आग से जली हुई जगह पर पानी देने से फफोले पड़ जाते हैं। किन्तु फफोले तभी पड़ते हैं जब उस पर थोड़े समय तक ही पानी दिया जाता है। आग से किसी अंग के जल जाने से उस स्थान को ठण्डे पानी में डुबो रखना चाहिये। पानी में डुबोने के साथ ही पीड़ा

आधी हो जाती है और क्रमशः कम होने लगती है। जब पीड़ा बिलकुल न रह जाये तब पानी से जले हुए अंग को हटा लेना चाहिये और उस पर दूसरी जलपट्टी या कादा (कीचड़ मिट्टी के मोटे पुलटिस का प्रयोग करना चाहिये इसके बारह घंटे के भीतर जलन अच्छी हो जाती है एवं जलन का चिन्ह भी नहीं रह जाता। एक समय कपड़े में पूड़ी बनाते समय मेरी छोटी बहन श्रीमती सावित्री देवी के हाथ पर कड़ाही के उलट जाने के कारण खौलता हुआ घी गिर पड़ा। उन्होंने तुरन्त ही हाथ को पानी से भरी बाल्टी में डुबो दिया और करीब घंटे भर तक इसी प्रकार डुबोये रखा। इसके बाद जब उन्होंने हाथ को बाल्टी से निकाला तो जलने का कोई भी चिन्ह हाथ पर नहीं था।

यदि शरीर का ऐसा अंश जल जाये जिसे पानी में डुबोने की सुविधा नहीं हो तो उस स्थान पर शीतल कादा मिट्टी की आधी इञ्च की तह थोप देने से जल में भिगोने का ही लाभ होता है। मिट्टी ज्योंही गरम हो जाये त्यों ही उसे बदल डालना चाहिये। जब जलपट्टी देने से वेदना दूर न हो तब हमेशा मिट्टी की पट्टी देना उचित है।

यदि कपड़े में आग लगकर सारा शरीर जल जाये तो तुरन्त रोगी को हौज में ले जाकर गले तक पानी में डुबोये रखना चाहिये। गाँव के लोग इस अवस्था में नदी या तालाब में डुबो सकते हैं आवश्यकतानुसार एक दिन या उससे भी अधिक समय तक रहा जा सकता है। किन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि दोनों कन्धे पानी मे डूबे रहें और सिर पर गीला गमछा रहे। इससे न्यूमोनिया होने का डर नहीं रहता और जलने से मृत्यु भी असंभव होती है।

देह भयंकर रूप से जल जाने पर जल-चिकित्सा करने की व्यवस्था अब साधारणतया स्वीकृत हुई है। गत महायुद्ध में अग्निदाह की जल-चिकित्सा के लिए कई विशेष केन्द्र खोले गये थे (Francis Back M.A., D.M.—Recent Advances in Physical Medicine,

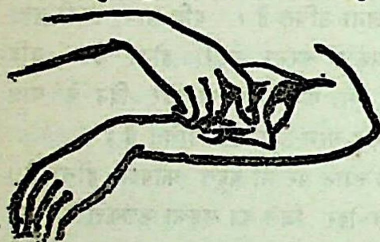
p. 100, London, 1950)। इससे रोगियों को अत्यधिक लाभ हुआ है।

साधारणतया कटी हुई जगह, घाव और क्षत आदि पर दो-तीन दिनों तक जलपट्टी का प्रयोग करने से वे अच्छे हो जाते हैं। जलपट्टी को हमेशा गोला रखना चाहिये। दिन में पूरे समय तक इस पट्टी को प्रयोग कर रात्रि में घाव के स्थान को खुला रखना उचित है। यदि घाव काफी बड़ा हो तो सात-आठ दिनों तक इसी प्रकार करना जरूरी होता है। यदि दो-तीन दिनों से अधिक समय तक ऐसा करना पड़े तो दूसरे दिन के बाद से ही घाव पर हमेशा दिन में दो बार गरम-ठंडा देना उचित है।

जलपट्टी के इस्तेमाल से कुचले स्थान पर भी बहुत फायदा होता है। नरेन्द्रनाथ विश्वास नामक एक जशोहर जिले का लड़का कलकत्ते के किसी छापेखाने में नौकरी करता था। एक दिन प्रेस चलाते समय असावधानी से उनकी दो उंगलियाँ पिच गयीं। दोनों उंगलियों के नाखून उसी समय फट गये और फटे स्थान से खून गिरने लगा। प्रेस के एक सज्जन ने उसे पकड़कर मिथिलेटेड स्पिरिट से भिगोकर एक कपड़े से दोनों उंगलियों को बाँध दिया और उसे सावधान कर दिया कि उसपर पानी न पड़ने पाये। किंतु इससे उसका दर्द घटा नहीं बल्कि क्रमशः बढ़ने लगा। तब बुझी हुई बत्ती की तरह मुँह किये वह मेरे पास आया। मैंने फौरन उसके हाथ से बेंडेज आदि को खोलकर पानी के एक कटोरे में उसके हाथ को डुबो दिया। उसके हाथ में जो असह्य पीड़ा हो रही थी वह पानी में डुबोने मात्र ही से आधी हो गयी। इस प्रकार तीन घंटे तक वह हाथ पानी में डुबाये रहा, जिससे दर्द प्राय नहीं-सा रह गया। तब एक भींगा कपड़ा उसके हाथ पर लपेट दिया गया और उसे हिदायत कर दी गयी कि वह उसे बार-बार पानी में भिगोये। दो दिन तक उसने इस प्रकार उसे पानी से तर रखा। इन दो दिनों में ही उसकी भंयकर चोट बिलकुल अच्छी हो गयी और नाखूनों के गिर जाने की जो सम्भावना थी, वह भी यथास्थान ठीक बनी रही।

शीतल जल के प्रयोग से चोट या कटने या घाव सम्बन्धी सभी प्रकार के दर्द दूर हो जाते हैं। यदि जलपट्टी देने के बाद भी दर्द बना रहे तो समझना चाहिये कि पानी काफी ठंडा नहीं है। तब और भी अधिक शीतल जल देने से दर्द निश्चय ही कम हो जायगा।

किन्तु पट्टी से यथेष्ट लाभ पहुंचने पर भी इसे अविच्छिन्न रूप से बहुत अधिक समय तक प्रयोग में नहीं लाना चाहिये। इससे खून का दौरा बन्द हो जाता है। एवं उस स्थान पर एक प्रकार का अवसाद (depression) आता है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि रक्त ही सभी रोगों को दूर करता है। इसलिए किसी भी स्थान पर विशेष कर अधिक समय के लिये यदि जलपट्टी का प्रयोग करना हो तो कम से कम दिन में दो बार इस स्थान पर पन्द्रह से बीस मिनट तक के लिए गरम-ठण्डा देना आवश्यक है। सेंक देने के बाद फिर शीतल पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। पहली अवस्था में शीतल जलपट्टी को बार-बार बदलते रहना जरूरी है। इसके बाद जब दर्द आदि कम हो जायें तब बीस से तीस मिनट के बाद पट्टी बदलते रहना काफी है अथवा, जलपट्टी गरम हो उठने पर पट्टी पर फिर से ठण्डा जल डालने से काम चल सकता है।



जलपट्टी (cold compress)

[२]

गरम सेंक (Fomentation)

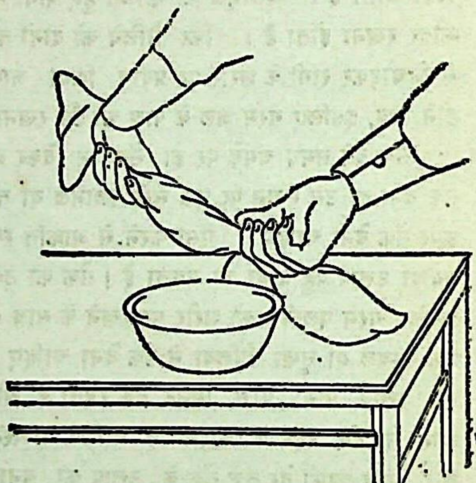
शरीर के किसी भी सीमाबद्ध स्थान पर गरमी पहुंचाने की क्रिया को सेंक कहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली में यह सबसे अधिक जनप्रिय

और सर्वाधिक प्रचलित व्यवस्था है। साधारणतया कम्बल के टुकड़े, तह किये हुए फ्लानेल या उनके अभाव में रूई या तौलिये आदि द्वारा सेंक दिया जाता है। फ्लानेल को खौलते हुए पानी में डुबोकर एक तौलिये के भीतर रखना होता है। फिर तौलिये को दोनों तरफ पकड़कर बिना कष्ट से निचोड़कर रोगी के शरीर पर प्रयोग किया जाता है। जल ठण्डा न होने पावे, इसलिए गरम जल के पात्र को ढँके रखना चाहिये।

सेंक देते समय चमड़े पर ही सेंक न देकर शरीर के जिस स्थान पर सेंक देना हो उस स्थान पर एक सूखे फ्लानेल या तौलिये को रखकर उसके ऊपर सेंक देनी चाहिये। ऐसा करने से आक्रांत स्थान पर काफी देर तक ज्यादा उत्ताप पहुँचाया जा सकता है। सेंक का उत्ताप बाहर न होने पावे इसलिए गरम फ्लानेल को शरीर पर रखने के साथ ही साथ उसे अविलम्ब एक कम्बल या सूखी तौलिया से ढँक देना चाहिए। ऐसा करने से सेंक का उत्ताप प्रायः पाँच मिनट तक रहता है और सेंक के स्थान के चारों ओर से ढँके रहने के कारण यह आंशिक वाष्पस्नान का भी काम करता है। यदि काफी देर तक सेंक के उत्ताप को बनाए रखना आवश्यक हो तो सेकनेवाले फ्लानेल के ऊपर एक गरम पानी की बोतल या गरम जल की थैली (hot water bag) रखकर उसे कम्बल से ढँक दें। कुछ समय तक सेंक देने के बाद जब बर्तन में रखे हुए पानी का उत्ताप कुछ कम हो जाये तब फ्लानेल में कुछ अधिक पानी रहने देकर सेंकना चाहिये। ऐसा करने से यह कुछ अधिक समय तक गरम रहेगा। सेंकने का उत्ताप जब कम हो जाये तब फ्लानेल को हटाकर और एक गरम जल में भींगे फ्लानेल को उस स्थान पर रखना चाहिये। इस प्रकार एक सेंक के फ्लानेल को हटाने के पहले दूसरा तैयार रखना जरूरी है।

तेज दर्द को जल्दी से दूर करने के लिए सेंक बहुत लाभदायक है। साधारणतया दर्द का स्थान जितना बड़ा हो, उसके आठ या दस गुने स्थान पर चारों ओर सेंक देना चाहिये। तभी सेंक से समुचित लाभ होता है।

शरीर के मध्यभाग में यदि कहीं सेंक देना हो तो इस बात का पहले ही से विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि हाथ या पांव ठण्डे न हों एवं रोगी के सिर में खून की अधिकता न हो सिर गरम रहने पर रोगी के सिर को पहले अच्छी तरह से धो लेना चाहिये और एक भींगी तौलिया से सिर को अच्छी तरह लपेट-कर फिर सेंक देना उचित है। हाथ-पांव यदि ठंडे हों तो उन्हें पूरी तरह गरम कर लेना आवश्यक है।



सेंक देने का तरीका

पेट पर गरम ठंडा देने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि हाथ पैर गरम हैं या नहीं। यदि ठंडे हों तो हाथ-पैरों पर पहले गरम जल की थैली रखकर गरम कर लिया जावे एवं उसके बाद पेट पर गरम थैली रखना आवश्यक है।

यदि किसी पूराने रोग के लिए सेंक लेने की आवश्यकता हो तो सेंकने के स्थान पर कुछ तेल की अच्छी तरह मालिश कर लेना चाहिये। फिर सेंक इस प्रकार देना चाहिये कि रोगी का शरीर जलने न पावे। यदि फलानेल खूब अच्छी तरह से निचोड़ लिया जावे तथा सेंक के स्थान पर तेल इत्यादि मल लिया जाये तो सेंक से जलने की प्रायः कोई संभावना नहीं रहती। फोड़ा या घाव आदि में तेल की मालिश बिलकुल नहीं करनी चाहिये।

केवल उत्ताप देने मात्र से ही सेंक नहीं हो जाता सेंक के बाद आक्रांत स्थान को खूब ठंडे पानी में डुबा हुआ और अच्छी तरह निचोड़े हुए एक तौलिये से तीस से साठ सेकेन्ड तक अच्छी तरह पोंछकर कुछ शीतल कर लेना चाहिये, फिर सूखे फ्लानेल आदि से अच्छी तरह ढँककर उसे गरम कर लेना उचित है। अन्यथा सेंक से लाभ के स्थान पर हानि ही होने की संभावना है।

सेंक के बाद यदि उस स्थान पर एक भींगा कपड़ा रखकर उसे फिर एक फ्लानेल के टुकड़े से ढँककर बाँध दिया जाये तो सेंक की उपकारिता बढ़ जाती है और उसका यह फल अधिक समय तक रहता है। यदि नयी सूजन की हालत में सेंक देना हो, जैसे—न्यूमोनिया, प्लूरिसी या विसर्प रोग (erysipelas) तो सेंक के बाद इस तरह की पट्टी के प्रयोग से विशेष लाभ होता है।

तेज दर्द की किसी-किसी अवस्था में काफी देर तक सेंक देने की आवश्यकता पड़ती है। इस अवस्था में भी आधे घंटे पर खुब ठण्डे पानी में भिगोई तथा अच्छी तरह निचोड़ी हुई एक तौलिया से एक से दो मिनट तक सेंक के स्थान को पोंछकर फिर सेंक देना चाहिये।

सेंक के बाद यदि रोगी को पसीना आ जाये तो एक तौलिया को आवश्यकतानुसार समशीतोष्ण अथवा ठंडे पानी में डुबोकर रोगी के सारे शरीर को जल्दी से पोंछ डालना चाहिये। उसके बाद थोड़ी देर के लिए कम्बल से ढँककर चमड़े के ताप को फिर वापस कर लेना जरूरी है। यदि तौलिया-स्नान देना असम्भव हो तो सुखी तौलिया से पसीना अवश्य पोंछ लेना चाहिये।

सेंक के प्रयोग के साथ रोगी को यदि काफी पसीना निकले तो सेंक अविलम्ब बन्द कर देना जरूरी है, क्योंकि अधिक पसीना निकलने से रोगी कमजोर हो सकता है। तब आवश्यक होने पर सेंक के बदले गरम पानी में भींगे कपड़े से उस स्थान को पोंछ डालना उचित है।

सेंक का प्रधान गुण यही है कि नम गर्मी (moist heat) बड़ी

जल्दी तथा निश्चितरूप से दर्द को कम कर देती है। दर्द मिटाने के लिये सेंक का खूब गरम होना आवश्यक है ।

पाकस्थली के सभी प्रकार के दर्द में सेंक बहुत लाभदायक होता है। इसी प्रकार चौथी हड्डी से लेकर नाभि तक और दोनों ओर पंजरियों के हाड़ तक को सेंकना आवश्यक होता है।

अजीर्ण (dyspepsia) रोग में भोजन के बाद आधे घंटे से लेकर एक घंटे तक पाकस्थली पर गरम पानी की थैली (hot water bag) रखने से संकुचित रक्त-प्रवाह की नालियाँ फैल जाती हैं तथा काफी मात्रा में पाचक रस निकलता है। इससे पाचन-क्रिया की शक्ति भी बढ़ जाती है।

कमर के वात और साइटिका के दर्द में यदि खूब गरम सेंक का प्रयोग किया जाय तो दर्द आश्चर्यजनक रीति से चला जाता है पेशी-वात तथा संधि-वात का दर्द भी और किसी उपाय की अपेक्षा सेंक से जल्दी ठीक होता है। सेंक देते समय दर्द के स्थान के ऊपर तथा नीचे की ओर कई इञ्च अधिक स्नान तक सेंक देना चाहिये। जरूरत के मुताविक यह सेंक दिन में कई वार दिया जा सकता है।

पित्त पथरी, मूत्र पथरी और यकृत के दर्द आदि पुराने दर्दों में भी सेंक बहुत गुणकारी है। किन्तु सेंक काफी अधिक होना चाहिये और सेंक के बाद उस स्थान पर निचोड़े हुए जलपट्टी का प्रयोग कर उसे फ्लानेल से ढँककर बाँध देना उचित है।

गलग्रन्थि (tonsil), गलनाली (pharynx) अथवा स्वरयंत्र (larynx) के सूजन में सेंक से भीतरी भाग का खून चमड़े में खिच आता है, फलस्वरूप इससे बहुत ही फायदा होता है। इन सब रोगों में पन्द्रह से बीस मिनट तक सेंक देकर उसके बाद एक से दो घंटे तक गले के चारों ओर एक भींगा कपड़ा लपेटकर फिर इसे पशमी कपड़े से ढँककर बाँध देना चाहिये तथा उसके गरम होते ही बार-बार बदलते जाना आवश्यक है।

कान के दर्द में यह अत्यन्त लाभदायक है, किन्तु इसमें मुख को ओर सेंक देनी चाहिये नहीं तो दर्द बढ़ सकता है।

फोड़े और फुन्सियों की प्रथम अवस्था में दिन में दो बार दस मिनट के लिए रोगी द्वारा सहे जाने लायक गरम सेंक देने के बाद आधे घण्टे के लिए ठंडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

इनके अलावा बहुत से रोगों में सेंक का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु किन-किन रोगों में सेंक से लाभ होता है—उनकी सूची देना एक प्रकार से असंभव-सा है।

[३]

गरम-ठंडी पट्टी (the alternate compress)

किसी अंग को मरम्मत करने के लिए बारी-बारी से गरम और ठंडे जल के प्रयोग से अधिक मुफीद दूसरी और कोई चीज नहीं है। किसी अंग पर जब गरम सेंक दिया जाता है तब उस अंग की सूक्ष्मतम रक्तवाहक नलियाँ भी फैल जाती हैं। क्योंकि, प्रसारण या विस्तार उत्ताप का गुण है। उन मार्गों से उस समय रक्त प्रवाहित होने लगता है। इस प्रकार जब रक्त आता है, तब वहाँ शरीर गठन के लिए नये मसाला तथा जीवाणुओं के साथ युद्ध करने के लिए नये सफेद कणों को ले आता है। फिर उस अग पर शीतल जल के प्रयोग करने से रोगी को रक्तवाहक-प्रणाली संकुचित होती है और रक्त उस स्थान से चला जाता है। उस निष्कासन की अवस्था में रक्त अपने साथ उस आक्रान्त अंग के दूषित और विषाक्त पदार्थ को भी लिये चला जाता है और शरीर की विभिन्न मोरियों से उन्हें निकाल बाहर करता है। इस प्रकार किसी अंग को एक बार शीतल और एक बार गरम करने से उस अंग में यह एक प्रकार के पम्प का काम होता है। इसी कारण दूषित अंग थोड़े ही समय में विकार-रहित हो जाता है।

जब किसी आक्रान्त अंग पर बारी-बारी से गरम सेंक और शीतल जलपट्टी का प्रयोग किया जाता है तब उसे गरम-ठण्डी पट्टी (the

alternate compress) कहते हैं गरम और शीतल पट्टी के उत्ताप में काफी अन्तर रहना चाहिये। पानी जितना ही गरम और ठंडा होगा उसके प्रयोग से लाभ भी उतना ही अधिक होगा। तेज उत्ताप पर खूब ठंडे पानी का प्रयोग करने से उस स्थान पर कोई भी कीटाणु बचा नहीं रह सकता, यह भी ध्यान रखना चाहिये। किंतु पानी इतना गरम भी न रहें कि शरीर जल जाये। गरम पानी का प्रयोग समाप्त होते ही तुरत खूब ठंडे पानी का व्यवहार आवश्यक है। ऐसा होने पर लाभ संभव है।

साधारणतया दो से पाँच मिनट तक गरम सेंक चलाने के बाद तुरत ही उतने ही समय के लिये शीतल पट्टी का प्रयोग होना चाहिये। अवस्था विशेष में अपेक्षाकृत कम या अधिक समय के लिए भी गरम सेंक का प्रयोग किया जा सकता है। पर गरम और ठंडा प्रयोग प्रायः समान समय के लिए होता है। किंतु उत्ताप के प्रयोग का जिस प्रकार निर्दिष्ट समय है, ठंडे प्रयोग के लिए उसी प्रकार निर्दिष्ट समय नहीं। जिस स्थान पर उत्ताप का प्रयोग किया गया है, उस स्थान विशेष को अच्छी तरह ठंडा कर लेना ही यथेष्ट होता है। ठंडा करने के लिए शरीर पर जलपट्टी न रखकर एक हाथ से ठंडे गमछे से लगातार उस स्थान को पोंछकर ठंडा कर लेना उचित है। इसी कारण शरीर के अत्यन्त ठंडा रहने पर या जाड़े के मौसम में गरम सेंक से अत्यन्त कम समय में ही यथेष्ट शीतलता आ जाती है। किंतु ठंडा गमछा आदि हटाने के पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह स्थान यथेष्ट रूप से ठण्डा हो गया है या नहीं।

जब शरीर के किसी अंश पर सूजन (inflammation) पैदा हो जाये तब गरम ओर ठण्डी पट्टी के प्रयोग से दर्द के साथ सूजन भी चली जाती है।

जो अंश सुन्न हो गये हों उनपर इसके प्रयोग से यथेष्ट लाभ होता है।

दुर्बल रोगियों की समय-समय पर शय्या क्षत प्रकट होने जैसी अवस्था होती हैं। तब उस स्थान पर गरम ठण्डे के प्रयोग करने से

निश्चित रूप से शय्या-क्षत रुक जाता है। शय्या-क्षत होने पर भी दिन में घाव के ऊपर दो बार गरम-ठण्डा देकर एक घंटे के लिए बार बार मिट्टी की पुल-टिस देना ही उसकी प्रधान चिकित्सा है।

छाती या पेड़ू के शोथ एवं पुरानी प्लूरिसी में गरम-ठण्डा खासकर फायदेमन्द होता है।

अफीम अथवा अन्य किसी विष के खा लेने से जब रोगी की नाड़ी की गति और श्वास-प्रश्वास की संख्या बहुत कम हो जाती है तब मेरु-दंड पर गरम-ठण्डी पट्टी के प्रयोग से तुरंत नाड़ी स्वाभाविक गति से चलने लगती है। शराब पीकर बेहोश होने पर अथवा जहरीली गैस के कारण बेहोश होने पर इससे विशेष लाभ होता है। पानी में डूबे हुए रोगी पर भी इसका प्रयोग आशातीत फल प्रदान करता है। इस अवस्था में साधारणतया बीस सेकेंड तक गरम पानी में भींगे फ्लानेल के टुकड़े से मेरुदंड को पोंछकर उसके बाद उतने ही समय तक के लिए ठण्डे पानी में भिगोये हुए कपड़े से मेरुदंड पोंछ लेना चाहिये। इसका आवश्यकतानुसार दस से पन्द्रह मिनट तक बारी बारी से प्रयोग किया जा सकता है

कमजोर हृदय को मजबूत करने में मेरुदंड पर गरम और शीतल प्रयोग मंत्रशक्ति की तरह काम करता है। हमारे हृदय का स्पन्दन जब प्रति मिनट पचहत्तर से बहुत कम हो जाये तब ऊपरी मेरुदंड पर प्रतिबार दो मिनट तक सेंक देने के बाद दो मिनट तक ठण्डा प्रयोग करके चौदह मिनट से लेकर बाईस मिनट तक ठण्डा-गरम प्रयोग करने से कुछ ही दिनों में हृदय की धड़कन बढ़कर समान अवस्था में आ जाती है। असल में प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न पद्धति द्वारा हृदय के भिन्न-भिन्न रोगों में इतनी जल्दी और निर्दोष भाव से आरोग्य लाभ होता है कि किसी भी प्रकार की दवा से इतनी जल्दी तथा इतने निर्दोष रूप से निरोग करना बिलकुल असम्भव है।

यकृत या प्लीहा के बढ़ने पर बड़े हुए अंग पर यदि प्रतिदिन २० मिनट के लिए गरम-ठण्डा प्रयोग किया जाये तो कुछ ही दिनों में वे कम होकर

स्वाभाविक हो जाते हैं। इसके साथ ही साथ सारे शरीर की भी चिकित्सा करनी अत्यन्त आवश्यक है . मुर्शिदावाद जिले का जगन्नाथ विश्वास नाम का एक युवक पुराना मलेरिया और प्लीहा बढ़ने से बहुत दिनों से कष्ट पा रहा था। उसके प्लीहा ने बढ़ते बढ़ते प्रायः सारे पेड़ू को ढँक लिया था। देश की चिकित्सा से कुछ लाभ न देखकर वह कलकत्ता दवा करने आया। कलकत्ता में काफी दिनों तक उसकी चिकित्सा चलती रही. किन्तु इससे उसको कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तब वह देश जाकर मरने के लिये तैयार हुआ। इसी समय उसके बहनोई एक बार अन्तिम चेष्टा के लिए उसे मेरे पास ले आये। मैंने उसको प्लीहा पर प्रतिदिन गरम ठंडा देने की व्यवस्था कर दी और साथ ही साथ स्नान के पहले पाँच छः मिनट के लिए वाष्प-स्नान देकर कटिस्नान लेने के बाद स्नान करने को कहा तथा बीच-बीच में भींगी चादर की कई लपेट दी। इस चिकित्सा से तीन सप्ताह के भीतर ही उसकी प्लीहा छोटी हो गयी और डेढ़ महीने में ही वह ज्वर आदि अन्यान्य कष्टों से बिलकुल छुटकारा पा गया।

ट्यूमर अत्यन्त कठिन बीमारी है। प्रचलित चिकित्साओं से यह प्रायः जाती नहीं लेकिन सम्पूर्ण शरीर की चिकित्सा के साथ ही साथ ट्यूमर पर गरम-ठंडा देने से अत्यन्त कठिन ट्यूमर भी धीरे-धीरे गायब हो जाता है। रामेश्वर तिवारी नामक बड़ाबाजार के एक युवक सात वर्षों से पेट के ट्यूमर रोग से पीड़ित थे। उनकी दोनों आंतों में और पेट के भिन्न-भिन्न स्थानों में अगनित ट्यूमर हो गये थे। यदि गीनती करने की कोशिश की जाती तो पचास से अधिक ही होते। उन ट्यूमरों की वजह से उनकी आँतों के रास्ते धीरे-धीरे बन्द होते जा रहे थे और हालत यहाँ तक पहुंच गयी थी कि स्वाभाविक तौर से मलत्याग करना भी उनके लिए असम्भव हो गया था। हर तरह की चिकित्सा करने के बाद वे मेरे पास आये। मैंने देखा कि उनका हाथ भी बहुत खराब है। हृदय की कमजोरी की वजह से कभी-कभी उनके हाथ-पैर सूज जाते थे। मैंने उन्हें डूस, वाष्पस्नान, गीली चादर की लपेट, पादस्नान, कटिस्नान,

धूपस्नान और फल-मूल की अधिकता-युक्त पथ्य आदि के द्वारा शरीर को दोषयुक्त करने के साथ ही साथ उनके पेट पर रोजाना दो बार गरम-ठंडा देने की अवस्था की। इन चिकित्सा से उनके ट्यूमर सब धीरे-धीरे छोटे हो गये और छः महीने में पूरी तरह से गायब हो गये। तथापि चिकित्सा के बाद उन्होंने एक बार एक्सरे कराया और जब यह रिपोर्ट मिली कि उनके पेट में ट्यूमर का चिह्न भी नहीं है तो वे सन्तुष्ट, चित्त हो देश लौटे गये।

यकृत बढ़ जाने पर भी हमेशा छः-सात दिनों तक उसपर गरम-ठंडा देने से ही वह स्वाभाविक आकार में आ जाता है एवं यदि यकृत सम्बन्धी पीड़ा हो तो वह भी दूर हो जाती है।

यकृत पर इस पट्टी के प्रयोग से पित्त अधिक निकलने लगता है। इसी कारण कब्जियत में यह विशेष लाभदायक है। इस पट्टी के प्रयोग से यकृत की विषनाशक आदि सभी प्रकार के काम करने की क्षमता भी बढ़ जाता है।

पेड़ू (abdomen) पर इसके प्रयोग से आँतों को परिपाक और मल निकाल फेंकने की ताकत बढ़ जाती है। इसी कारण शरीर को दोष-रहित करने के साथ-साथ सभी पुराने रोगियों के पेड़ू पर कुछ दिनों तक डूस देने से ठीक पहले गरम-ठण्डा पट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

बहुत बार पेड़ू पर इस पट्टी का प्रयोग करने के थोड़ी देर बाद ही मल का वेग होता है तथा रोगी का पेट साफ हो जाता है।

आमाशय (आंव पड़ने पर) में यह पट्टी बहुत ही फायदा पहुंचाती है। पेड़ू पर थोड़ी देर के लिए गरम-ठण्डा प्रयोग करके बाद ढँकी हुई पट्टी के इस्तेमाल से भारी कष्टदायक आंव भी बड़ी आसानी से ठीक हो जानी है।

स्नायविक रोग में रोगी के सिर को धोकर उसकी रीढ़ पर गरम-ठण्डा का प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है किन्तु इसके प्रयोग के पहले माथे को धोकर तथा माथे पर भींगा तौलिया रखकर और दोनों पैरों को गरम

कर लेने के बाद ही इसका प्रयोग करना चाहिये। केहुनी, हाथ, पैर और पादग्रन्थि के स्थानों में चोट आ जाने पर या वे स्नान टूट जाने पर और सन्धि-प्रदाह में इसे सफलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है (The American Medical Association—Handbook of Physical medicine and Rehabilitation, p 129, Philadelphia; 1950)।

कभी-कभी शरीर के के विभिन्न स्थानों में पाँच से दस मिनट के लिये गरम सेंक देने के बाद ब स से चालीस सेकेंड के लिए ठण्डा प्रयोग करना पड़ना है। सब प्रकार के स्नायूशूल, प्रदाहयुक्त वेदना, नई साइटिका, पाकस्थली की सूचन (gastritis), स्नायु-प्रदाह (neuritis) एवं आँख और दांतों के दर्द में यह अत्यन्त लाभदायक है।

ठण्ड और कंपकपी के साथ ज्वर के रोगी को मेरुदंड या पेड़ू पर इस प्रकार की तापबहुल पट्टी का प्रयोग कराने से ठण्ड और कपकंपी चली जाती हैं एव प्रायः रोगी का ज्वर दूर हो जाता है।

साधारणतया गरम-ठण्डा में गरम से शुरू किया जाता है एवं ठण्डा से समाप्त किया जाता है। किंतु कभी कभी ठण्डे से भी यह आरम्भ होता है। रोगी को यदि बुखार हो अथवा गरम-ठण्डा प्रयोग करने का स्थान अत्यन्त गरम हो तो हमेशा ठण्डे से शुरू करना उचित है। किंतु हमेशा हो ठण्डे से समाप्त करना चाहिये : इसे ठण्डा गरम कहा जाता है।

शरीर के विभिन्न अवयवों पर गरम ठण्डा पट्टी के प्रयोग से जो फल होता है, आक्रान्त अंग पर गरम और शीतल पानी को धार गिराने से भी वही फल होता है। शरोर का कोई जोड़ (सन्धिस्थल) कड़ा होने, किसी मांसपेशी के लकवा से ग्रस्त होते (in mascular paralysis), रक्तशून्यता के कारण किसी अग में सूजन आ जाने. वात रोग के फल-स्वरूप किसी अंग के कड़ा हो जाने और पुराने घाव एवं चमड़े के मोटा होने के साथ किसी कष्टकरण चर्मरोग के उत्पन्न होने पर इसका प्रयोग करने से आश्चर्यजनक फल पाया जा सकता है।

यदि संभव हो तो आक्रांत अंग को बारी बारी से गरम एवं शीतल जल में डुबो रखने से भी समान लाभ होता है।

हाथ और पैर में वात का दर्द रहने पर बारी-बारी से गरम व ठण्डे पानी में दर्द का स्थान डुबो रखना आवश्यक है। उससे बहुत लाभ होता है। पहले गरम पानी की बाल्टी में चार मिनट तक डुबोकर, उसके तुरन्त बाद एक मिनट के लिए ठण्डे पानी में डुबोना आवश्यक है प्रत्येक बार यह आधे घंटे के लिए दिन मे एक बार या दो बार करना चाहिये (Otto Glosser, Ph.D.—Medical Physics, Vol. 1, p. 621, Chicago, 1951)। वात के दर्द में गरम-ठण्डा सदैव गरम से शुरू कर गरम में ही समाप्त करना चाहिये (Howard F. Conn M. D.—Current Therapy, p. 375, London, 1951)। इसके बाद नीचे से ऊपर की ओर सूखे हाथ से मालिश कर देना जरूरी है।

मुँह के भीतर के सभी रोगों में गरम-ठण्डे जल से बारी-बारी कुल्ला करने से भी बहुत फायदा पहुँचता है। दाँत का दर्द, मसूड़ों की सूजन, मसूड़ा फूलना तथा मुँह के घाव आदि रोगों में इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है। इन सभी रोगों में हर बार दो-तीन मिनटों के लिए मुँह में गरम रखकर फिर उतने ही समय के लिए ठण्डा पानी रखना चाहिये। इसी प्रकार एक समय तीन बार और सुबह-शाम इस प्रकार कुल्ला करना चाहिये। दाँत और मुँह के स्वास्थ्य को बढ़ाने में भी एक श्रेष्ठ उपाय है। सारे शरीर की चिकित्सा के साथ यदि गरम-ठण्डे पानी का कुल्ला किया जाय और प्रतिदिन मिट्टी से दाँत साफ किया जावे तो पायरिया रोग भी ठीक हो सकता है।

[४]

छाती की लपेट (Chest pack)

जलपट्टी को जब किसी प्रकार ढँके बिना बार-बार बदलते रहते हैं। तब उसे जलपट्टी या ठण्डे पानी की पट्टी (cold compress) कहते

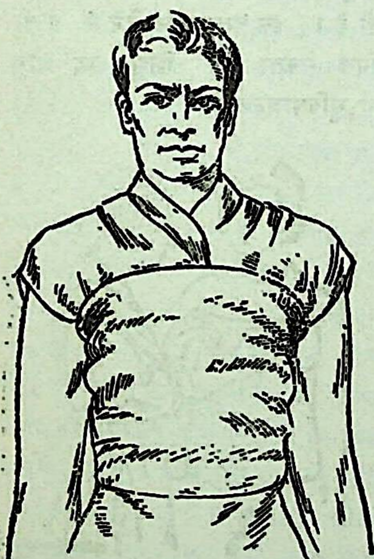
हैं। और, इसी को यदि फ्लानेल के टुकड़े से ढँककर काफी देर तक रहने दिया जाद तो इसे ढँकी हुई पट्टी (heating compress) कहत हैं।

किसी स्थान को ठण्डा करना हो ठण्डा पट्टी के प्रयोग का उद्देश्य होता है। किन्तु ढँकी हुई पट्टी का उद्देश्य है पट्टी के भीतर ताप का सचार करना। इस ताप का संचार होने से ही लाभ होता है, अन्यथा नहीं होता।

सभी प्रकार की लपेटें (पैक) ढँकी हुई पट्टी के ही विभिन्न रूप होती हैं। जब इसका प्रयोग समूचे शरीर पर किया जाता है, तब इसे भींगी चादर को लपेट कहते हैं और जब इसे पेड़ू, गला, छाती आदि स्थानों पर अपेक्षाकृत छोटा करके प्रयोग करते हैं, तब स्थान भेद के अनुसार इसे भींगी कमरपट्टी; गले की पट्टी (throat pack) या पैरों की पट्टी (foot pack) आदि कहते हैं। जब छाती के चारों तरफ यह पट्टी दी जाती है, तब उसे छाती की पट्टी (chest pack) कहते हैं।

पन्द्रह से लेकर करीब सत्रह इञ्च के एक लम्बे कपड़े के टुकड़े को लेकर उसे भिगोकर व निचोड़कर और उसके द्वारा गले से लेकर नाभि तक ऊपर के समूचे शरीर को बिना बाँह की गंजी की तरह लपेट करके एक पूरे अलवान से अच्छी तरह ढँक लेने से ही इस लपेट का लेना हो जाता है। पहले भींगे कपड़े को छाती पर बायीं ओर रखकर गले के पास से पीठ ओर ढँकते हुए दाहिने हाथ के नीचे से लेकर छाती पर लाना चाहिये। फिर इस कपड़े को बायें हाथ के नीचे, पीठ, दाहिनी गरदन तथा दाहिनी छाती के ऊपर से नाभि तक ;लाकर समाप्त करना जरूरी है। इसके बाद तह किया हुआ और लपेट (rolled) हुआ एक सूखा गरम कपड़े का अलवान या जूट फ्लानेल अथवा फ्लानेल का एक हाथ अर्जवाला थान लेकर ठीक उसी प्रकार भींगे कपड़े के ऊपर लपेट देना चाहिये। यदि शरीर विशेष गरम न हो तो एक के बाद दूसरा अलवान भी लपेटा जा सकता है। अलवान का अन्तिम हिस्सा कंधे के ऊपर से घुमाकर छाती के पास के कपड़े में अच्छी तरह खींचकर घुसेड़ देना चाहिये। ऐसा करने से यह कुरते की तरह अच्छी तरह कस जाता है।

साधारणतया भींगे कपड़े का पानी बिलकुल निचोड़कर छाती की लपेट का व्यवहार करना चाहिये। पर रोगी को यदि बुखार हो तो कपड़े में थोड़ा सा जल रहने देना चाहिये। किंतु इस बात की भी सावधानी रखनी चाहिये कि पानी इतना अधिक नहीं रखा जाय कि ऊपर का अलवान भींग जाय। रोगी यदि बूढ़ा, बच्चा या कमजोर हो अथवा उसका चमड़ा ठण्डा रहता हो तब इन कपड़ों को खूब अच्छी तरह निचोड़कर ही प्रयोग करना आवश्यक है। लपेट के प्रयोग के पहले इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि चमड़ा गरम है या नहीं। यदि गरम न हो तो पाँच से आठ मिनट तक एक गरम पानी की बोतल या गरम पानी की थैली द्वारा रोगी की पीठ और छाती को गरम कर लेना चाहिये। फिर शरीर के गरम रहते ही इस पट्टी का प्रयोग करना उचित है। सभी ढँकी हुई पट्टी के प्रयोग का साधारणतया यही नियम है। कपड़ा यथासम्भव पतला होना चाहिये। इसे एक से लेकर छः बार घुमाकर लपेटा जा सकता है। ऊपर के अलवान या गरम कपड़े का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये की जिससे भींगे कपड़े के साथ हवा का किसी प्रकार संयोग न रहे और भीतर गरमी का संचार हो सके। किंतु इसके लिए बहुत अधिक फ्लानेल देकर इस प्रकार ढँकना उचित नहीं कि जिससे रोगी को बेचैनी मालूम हो और उसका शरीर गरम हो उठे अथवा लपेट के नीचे रक्त का आवागमन



छाती की लपेट (chest pack)

बन्द हो जावे। फलानेल लपेटने पर गला, हाथ और नाभि के पास यदि कपड़ा अलग रहे तो सेफ्टीपिन लगाकर उसे अच्छी तरह से कसा जा सकता है सबसे अच्छा हो, यदि फ्लानेल के बाद उसके ऊपर दस हाथ की एक धोती द्वारा छाती और पीठ फिर लपेट दी जावें।

इच्छा होने पर यह लपेट बहुत आसानी से लिया जा सकता हैं। एक गीले कपड़े से कांख से कमर तक छाती और पीठ को लपेटकर एक लम्बे फलानेल या किसी गरम कपड़े से उपर्युक्त प्रणाली से अच्छी तरह ढँक देने से छाती की सहज लपेट हो जाती है। इस तरह लपेट देने से छाती की पूरी लपेट का अधिकांश फल मिल सकता है। शिशु, वृद्ध और बहुत दुर्बल आदमी ऐसी ही लपेट देना सुविधाजनक है।

छाती को लपेट लेने के बाद शीतकाल में किसी लिहाफ, कम्बल आदि से गले तक सारे शरीर को ढँक देना चाहिये। पर गरमी के दिनों में एक साधारण चादर से ढँक लेना ही काफी होगा। लपेट खोलने के बाद अन्य लपेटों की तरह लपेट के स्थान को भींगी तौलिया से जल्दी-जल्दी रगड़ लेना चाहिये। फिर हाथों से रगड़कर तथा उसके बाद कपड़े पहनकर फिर से चमड़े के ताप को वापस ले आना उचित है।



छाती की सहज लपेट

इस लपेट का प्रयोग साधारणतया डेढ़ घण्टे के लिए करना काफी है। यदि गीला कपड़ा इसके पहले ही सूख जाय तो लपेट पहले भी खोली जा सकती है। जब तक भीतर का गीला कपड़ा भींगा रहता हैं तभी तक लपेट से लाभ होता है।

इससे फेफड़ों की सभी प्रकार की बीमारियों में आश्चर्यजनक लाभ होता है। सर्दी और सर्दी के ज्वर में भी इस लपेट से जादू की तरह लाभ होता है। खूब नाक बहने के साथ-साथ यदि ज्वर भी हो तो एक लपेट से ही ज्वर और सर्दी चले जावेंगे। ज्वर न रहने पर भी डेढ़ घण्टे की यह लपेट सर्दी ठीक कर देती है।

इन्फ्लुएंजा ठीक करने का तो यह एक कभी न चूकनेवाला इलाज है। अधिकांश अवस्थाओं में इन्फ्लुएंजा के रोगी केवल एक लपेट लेने से ही चंगे हो जाते हैं। महात्मा गांधी जिस समय नोआखाली में थे उस समय उन्होंने एक बार मुझे बुलावा भेजा था। उनके कैम्प में पहुंचकर मैंने सुना कि उनके कैम्प के दो आदमियों को बुखार के साथ जोरों की सर्दी हुई है। महात्माजी ने मुझसे पूछा कि इस हालत में मैं कुछ कर सकता हूं या नहीं। मैंने कहा कि सिर्फ एक घण्टे की चिकित्सा से यह ज्वर अच्छा हो जाता है। तब उन्होंने मुझे उन रोगियों के लिए तुरन्त कुछ करने के लिए कहा। मैंने कैम्प के आदमियों से छाती की पट्टी के लिए पुराना कपड़ा और अलवान आदि जुटा देने के लिए कहा। लेकिन वह गाँव इससे पहले इस तरह लूटा जा चुका था कि हजार चेष्टा करने पर भी मैं एक टुकड़ा पुराना कपड़ा जुटा न पाया। तब रोगियों की दो गंजियाँ भिगोकर मैंने उन लोगों को पहना दिया। उसके बाद उनमें से एक को एक गरम स्वीटर द्वारा और दूसरे को एक अलवान द्वारा उनकी भींगी गंजियों को ढक दिया। उसके बाद दो सूखी धोतियों को तह करके उन दोनों का सीना और पीठ दोनों अच्छी तरह लपेटकर उन्हें बिस्तर पर लिटा दिया— इस अद्भुत ढंग से लपेट का प्रयोग किया गया। किंतु उसी से ही काफी फायदा हुआ। दूसरे रोज देखा गया कि उनको बुखार नहीं है, सर्दी नहीं है, कष्ट नहीं है और वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो चुके थे। इसके पहले बापूजी ने मेरी लिखी हुई प्राकृतिक चिकित्सा की हिन्दी पुस्तक पढ़ी थी। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का यह फल देखकर वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और मेरी चिकित्सा पद्धति पर उनको काफी विश्वास हो गया। इसके बाद

मृत्यु से पहले तक कितने ही लोगों को उन्होंने मेरी चिकित्सा कराने के लिए कहा जिसकी सीमा नहीं है।

ब्रौंकाइटीज, ब्रैंकोन्यूमोनिया और न्यूमोनिया रोग होने के साथ ही यदि लपेट का प्रयोग हो तो अधिकांश अवस्था में रोग का आक्रमण व्यर्थ होगा। रोग की हालत में भी थोड़े समय के लिए कई लपेटों द्वारा रोग से छुटकारा मिल जायगा।

दमा की बीमारी दुनिया की किसी भी दवा से अच्छी नहीं होती। किंतु दमा और पुराने ब्रौंकाइटीज के ऐसे एक भी रोगी को मैंने नहीं देखा जिसे पूरे समय तक सारे शरीर की चिकित्सा के साथ-साथ इस पट्टी के व्यवहार से लाभ न पाया। वास्तव में मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि अत्यन्त कठिन दमा और ब्रौंकाइटीज का रोगी भी इसके व्यवहार से आरोग्य लाभ कर सकता है। खिदिरपुर के श्री धीरेन्द्रनाथ मजुमदार बहुत साल से दमा की बीमारी से कष्ठ भोग रहे थे। खिदिरपुर में उन्होंने तीन मंजिला मकान खरीदा था। पर वह नीचे की मंजिल पर ही रहते थे, क्योंकि सीढ़ी से ऊपर चढ़ते ही उनका श्वास फूलने लगता। उनकी छाती हमेशा कफ से भरी रहती और वे सदा कफ फेंकते रहते थे। हांफने के कारण प्रायः बीच-बीच में वे अकर्मण्य- से हो जाते। मैंने उन्हें कई दिनों तक नियमित रूप से मालिश, डूस, वाष्पस्नान, पीठ एवं छाती पर गरम ठण्डी पट्टी और भींगी चादर की लपेट आदि का प्रयोग कराके लम्बी अवेध के लिए छाती की पट्टी देने की व्यवस्था करा दी। पहले दिन छाती दिखाने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा था, "छाती की कैसी हालत है?" मैंने कहा, "घर में जब डाकू प्रवेश करें और संदूक बक्स आदि को तोड़ना शुरू करें तो जैसा शब्द होता है ठीक वैसा ही शब्द आप की छाती मे होता है।" केवल तीन सप्ताह चिकित्सा कराने के बाद उन्होंने मुझसे फिर पूछा, "अब छाती में किस प्रकार का शब्द सुनाई देता है?" उस समय छाती काफी साफ हो चुकी थी। मैंने कहा, "तीन दिन वर्षा में भींगने के बाद बिल्ली का कोई बच्चा जैसे मरने के

पहले म्याऊँ म्याऊँ करता है, ठीक उसी प्रकार का शब्द है। वास्तव में कुछ दिनों बाद ही उनके श्वासकष्ट, कफ और खाँसी आदि दमा के कोई भी लक्षण नहीं रहे। धीरेन बाबू एक जहाज की कम्पनी में काम करते थे और किसी समय अच्छे खिलाड़ी भी थे। एक दिन वे गंगा के किनारे गये थे। उनके बड़े साहब ने जहाज पर से ही उन्हें पुकारा। जहाज की छत पर चढ़ने के लिए छत से एक मोटा रस्सा लटकता रहता है। नौजवान कर्मचारी सीढ़ी का इस्तेमाल न कर बहुधा इसी रस्से के सहारे ऊपर चढ़ जाते हैं। धीरेन बाबू पन्द्रह वर्षों में इस प्रकार कभी भी ऊपर नहीं चढ़े थे। उन दिन जब कि महीने भर से अधिक उनकी चिकित्सा नहीं हुई थी, उन्होंने अपने में इतनी ताकत महसूस की कि आज बहुत वर्षों के बाद इसी रस्से से टपाटप ऊपर चढ़ गये। जब कि एक महीने पूर्व वे अपने मकान की दूसरी मंजिल पर भी चढ़ने में असमर्थ थे।

नई और पुरानी प्लूरिसी में भी यह लपेट बहुत ही लाभदायक है। किंतु पुरानी प्लूरिसी, दमा और पुराने ब्रौंकाइटीज में हमेशा ही छाती पर अट्ठारह मिनट तक गरम-ठण्डी पट्टी देने के बाद लपेट देनी चाहिये। इन सभी बीमारियों में ज्वर न रहने पर दो से चार घण्टे तक लपेट का प्रयोग करना आवश्यक होता है और ज्वर रहने पर हर प्रति घण्टे बदल बदलकर तीन-चार घण्टे के लिए लपेट देनी चाहिये।

विवेकानन्द रोड की श्रीमती खंडेलवाल प्लूरिसी रोग (pleurisy with affusion) से आक्रान्त हुईं। साथ ही साथ नये बात रोग (acute rheumatism) के लक्षण भी उनके शरीर में प्रकट हुए। उनके हाथ पैरों के विभिन्न जोड़ फूल उठे एवं इतनी वेदना होने लगी कि वे हाथ-पैर हिलाने में असमर्थ हो गईं। उनके शरीर का ताप १०३° तक हो जाता था। श्री खंडेलवाल का प्राकृतिक चिकित्सा पर अटल विश्वास था। उन्होंने अन्य चिकित्सा न करके मुझे बुलाया। मैंने जाकर देखा कि रोगिणी के हृदय की स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी है।

मेरे साथ जो नर्स थी वह रोगिणी की अवस्था देखकर मुझसे बोली, "इस प्रकार की रोगिणो हमारी चिकित्सा से ठीक होगी ?" किन्तु मुझे भय नहीं हुआ। उन्हें डूस, उष्ण पादस्नान, पैरों की पट्टी, जोड़ों पर गरम-ठण्डा प्रयोग करने के बाद हल्की रगड़ आदि के साथ छातो की पट्टो का प्रयोग करने की मैंने व्यवस्था की। रोगिणी को नीबू के रस के साथ केवल जल, फल का रस और शहद के साथ पाना पिलाकर रखने की भो मैंने व्यवस्था की। इसी से तीन सप्ताहों में ही धीरे-धीरे वे नीरोग हो गईं।

यक्ष्मा रोग में छाती की लपेट बहुत लाभदायक होती है। कुछ दिनों तक इसके व्यवहार से ही रोगी की खाँसी, ज्वर व रात का पसीना कम हो जाता है और छाती के भीतर का घाव भी जल्दी ही ठीक होने लगता है। इस पट्टी के प्रयोग से आक्रान्त स्थान पर रक्त का आवागमन और श्वेत कणों की वृद्धि होती है। इसी कारण इसके प्रयोग से यक्ष्मा की बीमारी दूर हो जातो है (J. H. Kellogg, M.D. —Rational Hydrotherpy, p. 862, Battle Creek, Mich.; 1928)।

असल में सर्दी, ब्रोंकाटीइज, न्यूमोनिया, प्लूरिसी और यक्ष्मा रोग की यही सर्वप्रधान चिकित्सा है (F. M. Rossiter, M.D.—The Practical Guide to Health, 212)।

रोगी यदि शिशु, वृद्ध या दुर्बल हो तो कंधे न ढककर रोगी को यह पट्टी दी जा सकती है। नाभि से लेकर छाती तक समस्त स्थानों और पीठ को गीले कपड़े द्वारा लपेटकर उसपर अलवान आदि द्वारा लपेट देने से ही इस पट्टी का प्रयोग हो जाता है। वास्तव में पेट की पट्टी को जब ऊपर उठाकर प्रयोग किया जाय तभी उसे छाती की सहज पट्टी कहा जा सकता है। इससे सर्दी आदि छाती के विभिन्न रोगों में विशेष फल होता है।

छाती की पट्टी यदि जांघ की जोड़ तक फैलाकर दी जाये तो उसे

मध्य शरीर की लपेट (trunk pack) कहते हैं। इस लपेट को नितम्ब से घुमाकर जानुसंधि आदि के ऊपर से लाना आवश्यक होता है। जिन रोगियों को भींगी चादर की लपेट (wet-sheet pack) का प्रयोग करना असुविधाजनक हो, उन्हें इस लपेट के प्रयोग से प्रायः वही लाभ होते हैं। इसी कारण बच्चे, अत्यन्त बूढ़े और स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्तियों के लिये यह लपेट गीली चादर की लपेट का काम करती है।

[५]

आंशिक वाष्पस्नान (local steam bath)

बहुधा सारे शरीर में भाप देने की आवश्यकता नहीं होती और कभी कभी सारे शरीर में भाप का प्रयोग करने पर ही किसी खास अंग के रोग में उस अंग पर बार-बार आंशिक वाष्पस्नान प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है।

यह एक प्रकार से सेंक का ही उत्तम संस्करण मात्र है। जहाँ-जहाँ सेंक दिया जा सकता है वहाँ आंशिक वाष्पस्नान का प्रयोग किया जा सकता है। किंतु सेंक से यह इसलिए श्रेष्ट है कि इससे आक्रान्त भाग पर किसी प्रकार का दबाव डाले बिना ही उक्त स्थान के अणु-परमाणु तक में भी उत्ताप पहुंच आता है तथा मुँह के भीतरी भाग आदि में जहाँ सेंक की गरमी प्रत्यक्ष रूप से नहीं पहुंच सकती, भाप वहाँ भी आसानी से जा पहुंचती है। हाथ, पांव, मुँह, गला, सिर, आँख और कान आदि सभी अंगों पर ही वाष्प का प्रयोग किया जा सकता है।

आंशिक वाष्पस्नान में साधारणतया नल द्वारा भाप लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किसी बर्तन में खौलता पानी लेकर उसके ऊपर आक्रान्त अंग को रखकर बर्तन समेत उक्त अंग को कम्बल आदि द्वारा ढक देने से ही काम चल जाता है। मुँह और आँख आदि स्थानों में सात से दस मिनट तक भाप ली जा सकती है किंतु शरीर के निचले हिस्से में

थोड़े अधिक समय तक भाप लेना चाहिये। वहाँ पन्द्रह से तीस मिनट तक वाष्प का प्रयोग होना आवश्यक है। जिस अंग पर वाष्प का प्रयोग करना होता है उस अंग से अच्छी तरह पसीना निकलते तक इसका प्रयोग करने की जरूरत है।

किसी अंग पर आंशिक वाष्पस्नान के प्रयोग के बाद ही उस अंग को ठण्डे पानी में भींगी तौलिया से पोंछ डालना चाहिये। मुँह या गरदन पर भाप देने के बाद तुरंत ही समशीतोष्ण जल से कुल्ला कर लेना विशेष रूप से आवश्यक है। सारे शरीर से पसीना निकलने पर सारे शरीर को ही भींगी तौलिया से पोंछ लेना चाहिये। जिस अंग पर भाप का प्रयोग किया जाये उसे भींगी तौलिया से पोंछने के बाद तुरंत ही कपड़े आदि से ढककर चमड़े की गरमी को वापस कर लेना उचित है। शीतल करने के बाद सभी प्रकार के स्नानों में चमड़े के ताप को फिर वापस कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि देर तक आंशिक वाष्पस्नान लिया जाये, खासकर जब सिर और मुंह में वाष्पस्नान ग्रहण किया हो, तो तौलिया स्नान के बाद पूरा स्नान किया जा सकता है। इसके बाद थोड़े नीबू के रस के साथ बार बार काफी मात्रा में पानी पीना चाहिये।

आंशिक वाष्पस्नान बहुत रोगों में लाभ पहुँचाता है। जहरीले कीड़ों के काटने, अंगों में मरोड़ आने (in cramps), खाज, खुजली, बवासीर, गुह्यद्वार का घाव और भगन्दर में यह बहुत ही लाभ पहुँचाता है।

जांघ, घुटना, पैरों का जोड़ (ankels), केहुनी आदि में अकड़ आने पर आंशिक वाष्पस्नान बहुत ही लाभ पहुँचाता है। जांघ की भीतरी हड्डी की सूजन में यह बहुत ही लाभदायक है। इन स्थानों में साधारणतया बीस मिनट के लिए वाष्प का प्रयोग करके फिर दस मिनट तक उस स्थान पर मालिश करनी चाहिये (British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 6, p. 585)।

सभी प्रकार के दर्द या सूजन में यह अन्य दवाइयों की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। क्योंकि पसीना निकलने से ही सभी प्रकार के दर्द अपने

आप कम हो जाते हैं।

दाँत दर्द साधारणतया दवा से अच्छा नहीं होता, पर दंतशूल कितना ही भंयकर क्यों न हो, वाष्पस्नान से वह जादू की तरह अच्छा होता है। चौबीस परगना जिले के श्रीयुत् हृषीकेश मुखोपाध्याय, एम० ए०, बी० एल० महाशय का दाँत के रोग से अचानक सारा मुँह सूज गया और सेप्टिक हो गया। उनका मुँह सूजकर इस प्रकार का हो गया कि उन्हें देखकर पहचानना किसी के लिए भी संभव नहीं था। उनके सारे मूँह में इस प्रकार मवाद भर गया था कि आँखों के नीचे दबाने से दाँतों के मसूड़ों से बजबज कर मवाद निकलने लगता। शरीर का ताप १०२° था और दिनरात में क्षण भर के लिए भी उनकी आँख नहीं लगती। पहले उन्होंने एक एलोपैथिक डाक्टर को बुलाया। डाक्टर बाबू ने मुँह की हालत देखकर कहा कि यदि तुरंत ही आपरेशन नहीं किया जायेगा, तो उनका जीवन ही कठिनाई में पड़ जायेगा। किंतु हृषीकेश बाबू ने अस्वीकार करते हुए कहा कि सारे मुँह पर आपरेशन करावे की अपेक्षा मृत्यु का आलिङ्गन करना उन्हें प्रिय है। तब उन्होंने एक अच्छे होमियोपैथ डाक्टर को दिखलाया। किंतु दो दिनों तक कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा। तब उन्होंने मुझे बुलाया। उनके मुँह की अवस्था को देखकर मैंने उनसे अधिक सलाह-मशविरा करने में देर नहीं की। मैंने फौरन एक स्पीरिट के स्टोव पर एक पानी का बर्तन रख भाप उत्पन्न किया एवं उनका सिर धुलवाकर उसपर मुँह खोलकर भाप लेने के लिए कहा। पाँच छः मिनट बाद ही मुँह से पसीना निकलने लगा और पसीना निकलने के साथ ही साथ दाँत की भीषण पीड़ा बन्द हो गयी। इसके बाद मुँह से पीब, रक्त और बहुत अधिक दूषित खंखार आदि निकलने लगा। उनके सामने एक पिकदानी रख दी गयी थी। यह पिकदानी इस मवाद, रक्त आदि विकारों से प्रायः भर गयी। दस मिनट बाद मैंने भाप हटा दिया। उसके बाद समशीतोष्ण जल से उन्हें खूब कुल्ला करा दिया और एक भींगी तौलिया से सारे शरीर को अच्छी तरह पुंछवाकर उन्हें सुलाकर मैं चला आया।

आते समय यह कहता आया कि एक घण्टे के बाद उनकी कैसी हालत है, वह मुझे बताई जाये। किंतु डेढ़ घण्टे के बाद तक भी मेरे पास कोई नहीं आया। उनके सम्बन्ध में मैं काफी उद्विग्न था। अतः मैं स्वयं ही उन्हें देखने वहाँ गया। रोगी के घर जाकर देखा कि रोगी गम्भीर निद्रा में पड़ा है। तब मैंने घर में सभी को सावधान कर दिया कि किसी भी अवस्था में रोगी को जगाया न जाये, पर नींद टूटने पर मुझे तुरंत खबर मिलनी चाहिये। करीब बारह बजे दिन को वाष्प का प्रयोग किया था और उनकी नींद टूटी पाँच बजे। नींद टूटते ही उन्होंने मुझे बुलवाया। मेरे जाने पर उन्होंने मुझसे कहा—अब मुझे जरा भी दर्द नहीं है और खूब गहरी नींद आयी थी। तब मैंने दिन में दो बार तोलिया-स्नान और केवल नीबू के रस के साथ पानी पीने की व्यवस्था करके मुँह पर भींगे कपड़े की पट्टी फ्लानेल से ढककर बाँध दी। पट्टी सारी रात रही। दूसरे दिन सबेरे जाकर देखा कि मुँह स्वाभाविक अवस्था में आ गया है। मुँह पर सूजन नहीं, दर्द नहीं, ज्वर नहीं, यहाँ तक की आँख तक जो अनेकों नासूर हो गयी थीं, वे भी नहीं थीं। केवल आँखों के नीचे जरा सी सूजन थी। मैंने फिर मुँह पर पट्टी बाँध दी जिससे वे दूसरे ही दिन ठीक हो गये। हृषीकेश बाबू टकसाल में काम करते थे। उस समय उनकी छुट्टी थी। तीन दिनों के बाद उनकी छुट्टी समाप्त हुई। मैंने उनसे कहा कि अब आप चंगे हो गये हैं यह ठीक है, पर फिर भी आपको और सात दिनों तक आराम करना चाहिये। उन्होंने कहा कि मैं आफिस से छुट्टी लेकर घर लौट आऊँगा। किंतु छुट्टी लेने में उन्हें मेडिकल सार्टिफिकेट लेने की आवश्यकता थी। वे टकसाल के डाक्टर साहब से सार्टिफिकेट लाने गये। डाक्टर ने अच्छी तरह उनके मुँह की परीक्षा करने के बाद कहा, "तुम्हें ऐसी कोई बीमारी नहीं जिसके लिए तुम छुट्टी पा सको।"

सभी प्रकार के पुराने दाँत दर्द और दाँत की बीमारियाँ इससे ठीक होती हैं। किंतु चोट लगने से यदि दाँत दर्द कर रहा हो तो उसमें हरगिज वाष्प प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से दाँत भी नष्ट हो सकते

हैं। इस अवस्था में ठंडा पानी बार बार मुंह में रखने से दर्द शीघ्र ही चला जाता है।

ग्लूकोमा अत्यन्त कठिन रोग है। बिना आपरेशन के यह प्रायः अच्छा नहीं होता। किंतु आँख बन्द करके दिनों तक वाष्प लेने से आश्चर्यजनक रीति से यह अच्छा हो जाता है। बरीसाल जिले के श्री अनन्त कुमार सरकार, बी० ए० महाशय को बेरीबेरी होने के बाद ग्लूकोमा हो गया। उन्होंने मेडिकल कालेज में आँख की परीक्षा करवाई। वहाँ डाक्टरों ने कहा कि उनकी आँखों में पानी जमा हो गया है। इसलिए यथाशीघ्र इसका आपरेशन होना चाहिये। इसी बीच मैंने उन्हें एक भींगी चादर की लपेट (wet-sheet pack) देकर कई दिनों तक आँख पर भाप लेने की सलाह दी। सात दिनों तक इसका प्रयोग कर के फिर मेडिकल कालेज गये। तब डाक्टरों ने उनकी आँख की परीक्षा करके कहा कि उनको आँख में अब और जल नहीं है। वे अच्छे हो गये हैं।

ठीक इसी प्रकार कालीघाट रोड की एक महिला का ग्लूकोमा ठीक हुआ था।

[६]

भींगी चादर की शीतल लपेट

(The cooling wet-sheet pack)

भींगी चादर की लपेट से शरीर उत्तप्त करके जिस प्रकार शरीर का ताप बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार इसके विशेष प्रयोग से तेज बुखार के समय इच्छानुसार शरीर के ताप को कम भी कर सकते हैं। इस लपेट को भींगी चादर की शीतल लपेट (the cooling wet-sheet pack) कहते हैं। रोगी के शरीर में ताप का बहुत अधिक वृद्धि होने पर एक कम्बल पर एक भींगी चादर बिछाकर उससे रोगी के गले तक सारे शरीर को ढक देना चाहिये। इस चादर को पानी से खूब तर रखना आवश्यक है। जरूरत होने पर दो चादर को भी व्यवहार किया जा सकता है।

उसके बाद केवल एक कम्बल से रोगी को ढककर कम्बल के ऊपर से रोगी के सारे शरीर को धीरे-धीरे रगड़ना चाहिये। थोड़ी ही देर बाद चादर गरम हो जायेगी। तब जरा-सी देर के लिए कम्बल को हटाकर चादर तथा शरीर पर ठण्डा पानी छिड़ककर चादर तथा शरीर को शीतल करके फिर तुरन्त ही फिर से रोगी को कम्बल से पूर्ववत् ढक देना चाहिये। रोगी का ज्वर जितना ही तेज हो उतनी ही बार अधिक इसका प्रयोग होना उचित है। एक साथ तीन से लेकर पाँच बार तक इसका प्रयोग किया जा सकता है। पहली बार रोगी को पाँच-छः मिनट तक इस लपेट में रखकर दूसरी बार पाँच मिनट से अधिक तक इस लपेट में रखना चाहिये। इसी प्रकार हर बार की लपेट उसके पहले की लपेट से क्रमशः अधिक समय के लिए होनी चाहिये और अन्तिम लपेट आधे घण्टे तक के लिए होनी आवश्यक है। पहली बार की लपेट में ठण्डा पानी (६०° से ६५° ताप का) प्रयोग करके रोगी का ताप जितना ही कम हुआ हो उतना ही कम ठण्डे पानी का व्यवहार करना आवश्यक है।

इसके द्वारा रोगी के शरीर का ताप इच्छानुसार कम करके जितनी डिग्री पर लाना चाहें ला सकते हैं। किंतु बुखार को किसी भी हालत में जबर्दस्ती बन्द नहीं करना चाहिये। यदि रोगी के शरीर का ताप १०४° हो तो उसे घटाकर १०२° तक लाया जा सकता है। १०२° होने पर वह और भी दो डिग्री घटाया जा सकता है (Lindlahr, M.D.—Practice of Natural Therapeutics pp. 42, 80, 84 and 148)। किंतु यदि बुखार १०६°-७° से अधिक हो जावे तो बार-बार इसका कम समय के लिये प्रयोग करके उसे निरापद (१०३°-४° तक) ताप तक कम कर लेना चाहिये।

ठण्डे पानी के स्नान से जो लाभ होता है, भींगी चादर की शीतल लपेट (cooling wet-sheet pack) से भी वही लाभ होता है। इसलिए रोगी को टब में स्नान कराने के बदले हमेशा ही इस लपेट का प्रयोग किया जा सकता है।

[७]

मृदु वाष्पस्नान

किसी-किसी समय रोगी को प्रतिदिन वाष्पस्नान का प्रयोग कराने की आवश्यकता पड़ती है। उस समय रोगी को केवल तीन से छः मिनट तक के लिए वाष्पस्नान का प्रयोग कराया जाना चाहिये। इस प्रकार से थोड़े समय के लिए प्रयोग किये जाने के कारण उसे मृदु वाष्पस्नान (mild steam bath) कहते हैं। पुराने रोगों में हर रोज मालिश, पेठ पर गरम-ठंडा, डूस और ठण्डो मालिश आदि के साथ इसका रोगी पर प्रयोग करना उचित है। ठण्डी मालिश आदि के पहले अथवा अन्य किसी भी शीतल स्नान देने के पहले इस प्रकार रोगी के शरीर को गरम कर लेने से बहुत लाभ होता है। पुराने रोगों में प्रायः पाकस्थली, आँतों यकृत और विभिन्न स्नायविक केन्द्रों आदि में काफी समय तक रक्ताधिक्य चलता रहता है। इसके फलस्वरूप शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। पाकस्थली और आँतों में रक्तबद्धता होने पर इन अंशों में एक तरह की श्लेष्मायुक्त अवस्था की सृष्टी होती है और उससे तरह-तरह के कीटाणुओ की बाढ़ के लिए उपयुक्त स्थान बन जाता है, तब उनसे पैदा होनेवाले विष से सारा शरीर ही विषाक्त हो उठता है, जिसके कारण विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। यकृत में रक्तबद्धता रहने पर वह उचित रीति से अपना काम नहीं कर पोता और उसके फलस्वरूप यकृत खून साफ करने तथा अपने और आवश्यक कामों को सुचारु रूप से सम्पादित करने में थोड़ा बहुत अक्षम हो जाता है। दूसरे यंत्रों में रक्ताधिक्य होने पर भी ऐसे शरीर की काफी हानि हो सकती है।

किंतु मृदु वाष्पस्नान ग्रहण करने से खून चमड़े में चला आता है। शरोर के सम्पूर्ण खून का आधे से लेकर दो तिहाई भाग तक चमड़े में आकर स्थान प्राप्त कर सकता है, चमड़े में ऐसी व्यवस्था है। वाष्पस्नान के फलस्वरूप जब रक्त चमड़े की रक्तवाहक नालियों के भीतर चला आता है, तब

अपने आप ही भीतरी यंत्रों का रक्ताधिक्य नष्ट हो जाता है। जब इस प्रकार रोज वाष्प का प्रयोग किया जाता है, तब खून स्थायी रूप से चमड़े में आकर प्रतिष्ठित (established) हो जाता है (J. H. Kellogg, M. D.—Light Therapeutics. pp. 44-53)। किंतु प्रतिदिन वाष्पस्नान का प्रयोग करने पर भी रोगी को काफी देर तक के लिए कभी भी वाष्पस्नान का व्यवहार नहीं करना चाहिये। इस अवस्था में वह केवल तीन से सात मिनट के लिए होना चाहिये। इसके ग्रहण किये जाने के बाद ही तुरन्त तौलिया-स्नान या ठण्डी मालिश आदि किसी भी शीतल स्नान का प्रयोग करना उचित है। ऐसा होने पर ही ठीक तरह से लाभ होता है। मृदु वाष्पस्नान लेते समय भी सिर और हृदय पर गीला गमछा रखना चाहिये। इसके पहले डूस ले लेना उचित है। वाष्पस्नान के बदले में शरीर को अच्छी तरह गरम होने तक रोज शरीर पर धुप लेकर स्नान करने से भी समान ही फल होता है।

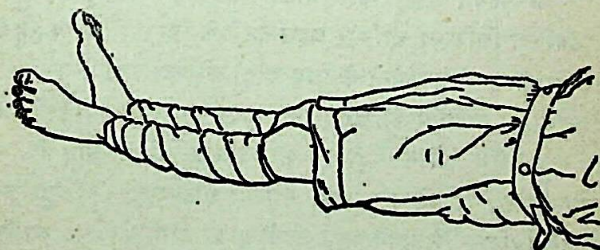
[८]

पैरों की पट्टी (foot pack)

एक भींगे पर खूब अच्छी तरह निचोड़कर जलरहित कपड़े को पैरों की एड़ी (ankle) से लेकर जंघा तक अच्छी तरह एक या दो बार लपेटकर फिर किसी गरम कपड़े से उसे अच्छी तरह लपेट लेने को ही पैरों की पट्टी कहते हैं। इस समय पैरों का गरम रहना जरूरी है। गरम न रहने की हालत में गरम पानी की थैली या बोतल आदि से पैरों को गरम कर लेने के बाद पट्टी लपेटनी चाहिये और आवश्यकता होने पर बीच बीच में गरम थैली पैरों पर रखकर उन्हें गरम रखना जरूरी है। पैरों के ठण्डा रहने पर जानुसन्धि के ऊपर से उरुसंधि (groin) तक इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग करने के पहले रोगी के सिर को धो लेना चाहिये और प्रयोग के समय सिर को ठण्डा रखना उचित

है। जब रोगी के सिर पर पानी चालू रहे तब भी साथ ही साथ यह चालू रह सकता है। साधारणतया इसका प्रयोग एक घंटे के लिए होता है। किंतु रोगी को आराम मालूम पड़ने पर यह अधिक समय तक के लिए रखा जा सकता है और दिन में बार-बार इसका प्रयोग किया जा सकता है। किंतु रोगी को जब पसीना आने लगे तो इसे खोल डालना चाहिये। हर बार लपेट खोलकर सारे शरीर में तौलिया स्नान लेना उचित है।

सिर, गला, मेरुदंड, छाती, पेट, बस्ति और ऊपरी शरीर के किसी भी रोग में इस पट्टी से लाभ होता है। इसके द्वारा इन सारे अंगों के दूषित खून को नीचे खींच लिया जाता है। फलस्वरूप इन सभी अंगों का रक्ताधिक्य अनायास ही नष्ट हो जाता है। असल में इसके द्वारा रोग का आक्रमण शरीर के उपरी भाग से पैरों को और पलट जाता है। फलस्वरूप रोग आसानी से दूर हो जाता है। किसी किसी का कहना है कि मेनिनजाइटिज, न्यूमोनिया, ब्रौंकाइटीज, यकृत की सूजन, मूत्रग्रंथियों की सूजन और जरायु के रोग आदि में यह पट्टी सर्वप्रधान चिकित्सा है। यूरोप के विभिन्न अस्पतालों के विवरणों से देखा गया है कि इस पट्टी के प्रयोग से रोग की तेजी यथेष्ट रूप से घट जाती है, रोग अपेक्षाकृत कम स्थायी



पैरों की पट्टी (foot pack)

होता है, और रोग की प्रबलता के कारण कभी-कभी जो पक्षाघात, अन्धापन, बहरापन, और मानसिक रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं, वे इस प्रयोग से कभी भी नहीं सकते (Otto-Juettner, M.D.,

Ph.D.—Physical Treapeutic Methods, p. 508)।

असलियत यह है कि इसके द्वारा मृतप्राय रोगी को भी मृत्यु-मुँह से अनेकों बार बचाया जा सकता है। श्रीयुत् देवेन्द्र नाथ धर वकालत से विश्राम लेकर कार्नवालिस स्ट्रीट में अपने पुत्र के निवास स्थान पर रहते थे। एक दिन देखा गया कि वे बीच-बीच में गलती बोलने लगे और उनकी स्मरणशक्ति जाती रही। इसके बाद एक दिन वे बेहोश हो गये और उनके दाहिने हाथ में लकवा मार गया। उस समय समझा गया कि उनके मस्तिष्क के भीतर रक्त का चक्का बंध जाने के कारण (celebral thrombosis) यह अवस्था हुई है। रोगी धीरे-धीरे निस्तेज होने लगा और पन्द्रह दिनों के बाद बेहोशी की नींद (coma) सी उन्हें आ गई। अन्त में वे बिलकुल बेहोश हो गये और छाती में आकर पानी इकट्ठा (pulmonary edema) हो गया। इस अवस्था में रोगी के बचने की कोई आशा नहीं थी। इसलिए डाक्टरों ने अपना हाथ खींच लिया और अन्त तक कुछ करना चाहिये इसलिए मुझे बुलाया गया। मैंने जाकर देखा हालत इतनी चरम अवस्था को पहुँच गयी है कि रोगी कफ की खरखराहट शुरू हो गई थी। रोगी की अवस्था देखकर पहले तो मैंने चिकित्सा करना अस्वीकार कर दिया, किंतु सारे परिवार के लोगों ने मुझे इस प्रकार मजबूर किया कि चिकित्सा का भार ग्रहण करने के लिए मैं बाध्य हुआ। मैंने पहले ही रोगी को एक घन्टे के लिए छाती की पट्टी बांधी। इसी से आश्चर्यजनक रूप से छाती की खरखराहट गायब हो गयी। इसके बाद उन्हें दिन में बार-बार पैरों की पट्टी देने की व्यवस्था की। साथ ही साथ पेट पर गरम-ठण्डा, पेट की पट्टी, ठण्डी मालिश और छाती की पट्टी चलने लगी। इस चिकित्सा से अपने आप उलटी होकर रोगी का पेट खाली हो गया। इसके बाद अपने आप पेशाब और पाखाना हुआ और जिस रोगी की मृत्यु दो-चार घण्टों में अवश्यम्भावी थी, उसे रात बीतते-बीतते होश भी आ गया। रोगी के बड़े पुत्र एम० बी०. डाक्टर हैं। किंतु केम्पवेल अस्पताल के विलायत से लौटे हुए एक अनुभवी एम० डी० डाक्टर उनकी

चिकित्सा कर रहे थे। यह रोगी बच गया है ऐसा सुन आश्चर्य-चकित होकर वे उसे देखने आये और बहुत देर तक रोगी को परीक्षा करके जाते समय बोले कि कैम्पवेल अस्पताल मे उनके अधीन जो पचास बेड हैं, उनमें अब वे प्राकृतिक चिकित्सा का (physio-therapy) प्रचलन करेंगे।

[६]

बर्फ का व्यवहार

तीव्र उत्ताप जिस प्रकार यथासाध्य वर्जित है, अत्यधिक ठण्डक को भी उसी प्रकार वर्जन करना चाहिये। तथापि जब कभी कभी साधारण ठण्डे पानी से शीघ्र काम नहीं निकलता तब मजबूरन बर्फ का सहारा लेना पड़ता है। किंतु हमेशा ही विशेष सावधानी के साथ पद्धति के अनुसार बर्फ का प्रयोग आवश्यक है। नहीं तो लाभ के बदले हानि होने की ही संभावना रहती है।

खुले चमड़े पर कभी भी बर्फ या बर्फ की थैली (ice bag) का प्रयोग नहीं करना चाहिये। शरीर के किसी भी भाग पर बर्फ प्रयोग करते समय हमेशा प्रयोग के स्थान पर एक जलपट्टी (cold compress) देकर उसके ऊपर बर्फ या बर्फ की थैली का प्रयोग करना आवश्यक है। अथवा एक फ्लानेल के टुकड़े को फैलाकर उसपर बर्फ की थैली रखी जा सकती है। यदि बर्फ के पानी में डुबोकर शीतल पट्टी देनी हो तो वह चमड़े पर भी रखी जा सकती है। इससे बर्फ की थैली रखने के समान ही फल होता है। इस अवस्था में कुछ मिनट के अंतर से पट्टी बदलते जाना आवश्यक है। यदि पट्टी बदलने की इच्छा न हो तो कई तह में बर्फ के चूरे को बिछाकर पट्टी का व्यवहार करने पर भी वह काफी समय तक ठण्डी रहती है। बर्फ या बर्फ की थैली की अपेक्षा बर्फ के पानी में भींगी ठण्डी पट्टी से ही हमेशा अधिक लाभ होता है।

संन्यास (apoplexy) रोग में जब मस्तिष्क के भीतर की कोई

धमनी फट जाये तो बर्फ की थैली का सिर पर प्रयोग करने से बहुधा रोगी के प्राण बच जाते हैं। पाकस्थली से खून की उल्टी होने पर बर्फ के छोटे छोटे टुकड़े निगलने पर विशेष लाभ होता है। मूत्रयंत्र (kidney) से रक्तस्राव होने से पीछे की तरफ कमर पर बर्फ की पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। जरायु से यदि बहुत अधिक रक्त निकल रहा हो तो मूत्रद्वार और मूत्रद्वार एवं गुह्यद्वार के बीच का भाग (perineum), जांघों का भीतरी भाग तथा कटि प्रदेशों में बर्फ के पानी में भींगी पट्टी देने से जरायु संकुचित होती है और रक्तस्राव बंद हो जाता है।

मस्तिष्क के रक्ताधिक्य को यही बड़ी आसानी से दूर कर देता है। तेज बुखार में रोगी के सिर, गरदन और मुँह पर बर्फ की पट्टी का प्रयोग करने से रोगी को बहुत ही आराम पहुंचता है। थोड़े समय के लिए सिर पर बर्फ की पट्टी का प्रयोग करने पर पागलों की प्रबल उत्तेजना भी कम हो जाती है। किंतु हमेशा ही बड़ी सावधानी के साथ सिर पर बर्फ का प्रयोग होना चाहिये। सिर पर अत्यधिक ठण्डक पहुँचाने से सिर की तरफ रक्त का आवागमन बंद हो जाता है और हृदय के काम में बाधा पहुंचने लगती है। इन कारण हृत्पिंड की पेशियाँ बहुधा अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो जाती है।

साधारण सूजन में इस पट्टी का प्रयोग करने से बहुत ही फायदा होता है। मस्तिष्क को सूजन में बर्फ की पट्टी असीम लाभ पहुँचाती हैं। सूजन के साथ घाव में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। अर्श (बवासीर) की बीमारी में गुह्यद्वार पर घाव एवं सूजन होने पर बर्फ की पट्टी से बहुत लाभ होता है।

हिस्टीरिया और अंगनृत्य रोग (chorea) में जब अंगों की ऐंठन किसी भी प्रकार से कम नहीं होती, तब मेरुदन्ड पर बर्फ की पट्टी का प्रयोग करने से वह दूर हो जाती है।

पाकस्थली अथवा उसकी ठीक विपरीत दिशा में मेरुदंड पर बर्फ की थैली रखने से प्रायः कै बंद हो जाती है। पाकस्थली के कैंसर से जो

असहनीय पीड़ा होती है, उसे भी यह कम करती है।

मेरुदंड पर बर्फ की थैली रखने से धनुष्टंकार (tetanus), समुद्र पीड़ा (sea sickness) और मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड झिल्लियों की सूजन (cerebro-spinal meningitis) में इससे विशेष लाभ पहुंचता है।

इरिसिप्लस (erysipelas) की वृद्धि को रोकने में बर्फ की थैली अत्यन्त लाभदायक है।

अफीम या अन्य किसी विष के खा लेने से जब नाड़ी की स्पन्दन बन्द-सा होने लगता है एवं श्वासकष्ट होता हो तब नाक की श्लैष्मिक झिल्ली और होठ के ऊपर बर्फ का प्रयोग करने से रोगी की अवस्था बहुधा स्वाभाविक हो जाती है। क्योंकि उक्त स्थान पर ठंडक पहुंचाने से श्वास-प्रश्वास के केन्द्र (respiratory centre) को उत्तेजना मिलती है।

गांवों आदि में जहाँ बर्फ नहीं मिलती वहाँ बर्फ के बदले खूब ठण्डी कादा मिट्टी या खूब ठंडे पानी में भींगा कपड़ा चमड़े के ऊपर इस्तेमाल किया जा सकता है।

[१०]

गरम-ठंडा कटिस्नान

प्राकृतिक चिकित्सा में गरम-ठण्डा कटिस्नान एक आश्चर्यजनक चिकित्सा विधि है। यह गरम-ठण्डा पट्टी का एक दूसरा रूप है। सिर को पहले धोकर एवं उसके बाद सिर पर गीला गमछा रखकर यह स्नान लेना आवश्यक है। तीन से छः मिनट तक गरम पानी से कटिस्नान लेने के तुरंत बाद ही फिर दो से तीन मिनट के लिए ठण्डे जल में कटिस्नान लेने से ही यह स्नान हो जाता है। यह एक समय में तीन बार लेना चाहिये। बाकी दफे हिप-बाथ लेकर उसके बाद तौलिया-स्नान, ठण्डी मालिश या थोड़े समय के लिए स्नान कर लेना चाहिये।

यह स्नान कुछ दिनों तक लेने से पेट के सभी यन्त्र सबल होते हैं,

पाचनशक्ति बढ़ती है. अजीर्ण दूर होता है, जननेंद्रियों के विभिन्न रोग चले जाते हैं एव बस्तिप्रदेश के सारे यन्त्र नवीन हो उठते हैं। पुराने कब्जियत में यह बहुत लाभप्रद है (William Bierman, M.D. and Sidney Licht, M.D.—Physical Medicine in General Practice, p. 41, New york, 1952)।

[११]

बस्तिप्रदेश की लपेट (the pelvic pack)

एक भींगा गमछा काछा मारकर पहनकर ऊपर से एक दुशाला मोटा करके पहन लेने से ही यह लपेट लेना होता है। यदि शरीर ठण्डा हो तो पेड़ पर ५ मिनट के लिए गरम सेंक देकर यह पट्टी कम्बल से लपेटकर लेनी चाहिये अथवा पट्टी प्रयोग कर पट्टी के ऊपर एक गरम थैली रखना आवश्यक है। इसे खोल डालने के बाद भींगे गमछे द्वारा पट्टी का स्थान पोंछकर बाद में सूखे हाथ से रगड़ लेना चाहिये। पेड़ू के विभिन्न रोग में यह अत्यन्त हितकर है। पुरानी कोष्ठबद्धता में, ऋतुस्राव की भिन्न-भिन्न गड़बड़ियों में, आँत, गर्भाशय या अंडकोष के लटक जाने पर, जननेन्द्रिय की अक्षमता और दुर्बलता में २० से ३० मिनट तक इसका प्रयोग करना चाहिये। पुराना आँव, गर्भाशय की सूजन, श्वेत प्रदर, ऋतुरोध आदि में एक से डेढ़ घंटे तक यह लेना चाहिये।

[१२]

टी-पैक (T-Pack)

जनन-यन्त्रों के विभिन्न रोगों में टी-पैक बहुत लाभप्रद है। एक छोटी सी तौलिया भिगोकर और जलशून्य करके निचोड़कर उससे समूचे जनन-यन्त्रों को अच्छी तरह से ढककर और उसके बाद मफलर आदि किसी भारी ऊनी कपड़े से तीन तह करके ढककर ऊपर से एक कौपिन या लंगोट पहन लेने से ही यह पट्टी हो जाती है। पहनने पर अंग्रेजी टी (T)

के समान दीखता है इसलिये इसे टी-पैक कहा जाता है। इसे एक घन्टे के लिये रखना चाहिये एवं पुराने रोगों में हप्ते में दो तीन रोज प्रयोग करने से ही यथेष्ठ होता है।

जनन-यन्त्रों की दुर्बलता में निम्नतम मेरुदन्ड पर एक दिन के लिये तीन बार गरम-ठंडा देकर एक घंटे के लिये टी-पैक लेने से अत्यन्त उपकार होता है। हाईड्रोसिल या पोता बढ़ने में एक घन्टे के लिये टी-पैक लेने से हो गीली तौलिया इतना पानी खींच लेती है कि एक घण्टे के अन्दर ही वह बहुत छोटा हो जाता है। कुछ रोज के लिये प्रयोग करने से बीच-बीच में उस स्थान पर गरम-ठण्डा लेना उचित है।

अंडकोष का एकजिमा बहुत कष्टदायक व्याधि है। बीच-बीच में उसपर गरम-ठण्डा लेकर टी-पैक ग्रहण करने से बहुत लाभ होता है।

सुजाक में जब मूत्रस्राव विघ्नयुक्त होता है तब यह टी पैक बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

प्रोस्ट्रेट ग्लैंड की वृद्धि में भी पोता के अन्तिम भाग से गुदा तक समूचे स्थान पर तीन बार गरम ठण्डा देकर टी-पैक ग्रहण करने से बहुत अवस्था में मूत्रस्राव साफ़ हो जाता है।

श्वेतप्रदर (leucorrhoea) तथा ऋतुरोध में यह बहुत लाभप्रद है। श्वेतप्रदर में इतनी गन्दगी भीतर से तौलिया में उतर आती है कि थोड़े दिनों में ही अस्वस्थ जरायु स्वस्थ हो उठता है। इसके साथ-साथ अवश्य ही समूचे जनन-यन्त्र के ऊपर बीच-बीच में गरम ठण्डा देना उचित है।

किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के किसी साधन को भी औषधि ऐसा गिनना नहीं चाहिये। विभिन्न रुग्ण अवस्था में विशेष विशेष उपचार से विभिन्न लाभ पाये जा सकते हैं किन्तु इन सब उपचारों से वास्तविक लाभ तभी होता है जब सर्वदैहिक चिकित्सा अर्थात् शरीर को दोषमुक्त तथा चंगा करने के साथ-साथ रोग की विभिन्न अवस्था पर ध्यान दिया जाय।

दसवाँ अध्याय

मिट्टी का जादू

[१]

प्राकृतिक चिकित्सा में जल के बाद ही मिट्टी एक श्रेष्ठ स्थान अधिकार करती है। फादर निप और जुष्ट आदि चिकित्सकगण व्यापक रूप से इसका उपयोग करते थे। वर्तमान में यद्यपि मिट्टी के बदलने में जल का प्रयोग अधिक हुआ करता है, तथापि मिट्टी अब भी अनेक रोगों में चिकित्सा के प्रधान उपकरण के रूप में उपयोग में लायी जाती है।

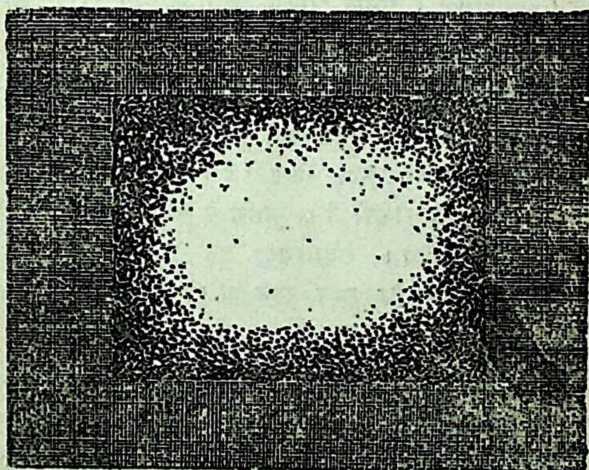
रोग चिकित्सा में जल के द्वारा जो लाभ हुआ करता है, अनेक समय पर कादो मिट्टी से भी वही लाभ मिलता है। किसी-किसी समय पानी की अपेक्षा कादो मिट्टी से बहुत अधिक लाभ होता है। क्योंकि मिट्टी के प्रयोग से ठण्डक का प्रयोग सुसम्पन्न (thorough) होता है। शरीर के रोग-विष खींच लेने में भी मिट्टी के समान और कुछ भी नहीं है। इसलिए विभिन्न प्रकार से शरीर के ऊपर मिट्टी का प्रयोग कर अनेक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी का सबसे अधिक उपयोग होता है पट्टी या पुलटिस के रूप में। जलपट्टी के समान हाथ, पैर, माथा, कंधा, पेट तथा आँख आदि पर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

चिकित्सा के लिए जो मिट्टी उपयोग में लायी जाती है, उसको कुछ विशेष यत्नपूर्वक संग्रह करना चाहिये। मल-मूत्र या अन्य किसी प्रकार गन्दगी न हो ऐसे स्थान से मिट्टी का संग्रह करना उचित है। मिट्टी बहुत बालू युक्त या लसलसी होनी नहीं चाहिये। तीन-चौथाई बालू और एक चौथाई लसलसी हो मिट्टी ऐसी होनी जरूरी है। एकबार संग्रह कर घर

में रखने के लिए मिट्टियों को अच्छी प्रकार धूप में सूखा कर रखना चाहिये। नहीं तो उस मिट्टी से सात दिन से अधिक काम नहीं होता। यदि सूखी मिट्टी में पानी डालने पर उसमें से सड़ा दुर्गन्ध निकले तो उसे कभी चिकित्सा के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहिये।

पट्टी देते समय मिट्टियों को अच्छी प्रकार से छानकर अविकल मक्खन के समान बसाकर प्रयोग में लाना चाहिये। मिट्टियों को छानकर पहले एक भींगे कपड़े के ऊपर आधे इञ्च से कुछ अधिक ऊँचा कर सजा रखा जा



मिट्टी की पुलटिस (earth compress)

सकता है। इसके बाद धीरे-धीरे वह कपड़ा एक हाथ से उठाकर उन मिट्टियों को इस प्रकार से रोगी के शरीर के निर्दिष्ट स्थान पर रखना चाहिये, जिससे मिट्टी कपड़े के बाहर न जाय और शरीर के ऊपर मिट्टी रखने पर सब जगह मिट्टी आधे इञ्च ऊँची रहे।

जलपट्टी के समान मिट्टी की पट्टी भी इच्छानुसार शीतल अथवा आवृत पट्टी के रूप में प्रयोग की जा सकती है।

[२]

मिट्टी की ठंडी पुलटिस (cold earth compress)

जब मिट्टी की पुलटिस खुली अवस्था में प्रयुक्त की जाती है, अथवा एक भींगे कपड़े के टुकड़े के द्वारा हल्के रूप से ढक दी जाती है अथवा गरम होने या सूख जाने के पहले ही बार-बार बदल दी जाती है, तब उसे ठण्डी पुलटिस कहा जाता है।

इसे जिस अंग के ऊपर प्रयोग किया जाता है, उसपर यह एक शान्तिकर (sedative) प्रभाव विस्तार करती है और जीवाणुओं की वृद्धि रोकती है।

पेट की विभिन्न बीमारियों में मिट्टी की पुलटिस से विशेष लाभ होता है। इसके उपयोग करने से अनेक अंगों में कटिस्नान लेने का लाभ हुआ करता है और पेट के अनेक दोष नष्ट होते हैं। क्योंकि ठण्डक आँत के अन्दर जीवाणुओं की वृद्धि रोकती है। नाभि से लेकर सम्पूर्ण पेड़ू के ऊपर इसका प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः दस से बीस मिनट तक यह लगाना चाहिये। किन्तु पेट गरम रहने पर ही केवल मिट्टी की पुलटिस लेनी उचित है। पुलटिस प्रयोग के बाद भी घर्षण के द्वारा पेट को गरम कर लेना चाहिये।

ज्वर के समय इस पुलटिस का प्रयोग करने से अत्यन्त लाभ होता है। इसके प्रयोग से कोष्ठ साफ होता है, ज्वर कम होने लगता है एवं विभिन्न जटिलताएँ दूर हो जाती हैं। टायफायड आदि पेट के दोषयुक्त रोगों में ज्वर के आरम्भ से आरोग्य लाभ तक दिन में दो-तीन बार इसका प्रयोग करना जरूरी है। किन्तु ज्वर की प्रथम अवस्था में जब जाड़ा और कँपकँपी रहती है, तब कभी इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

दस्त की बीमारी तथा हैजे में यदि पेट गरम रहे तो मिट्टी की पुलटिस से आश्चर्यजनक लाभ होता है। हावड़ा जिले के बासन्ती कुमार चक्रवर्ती नामक एक सज्जन को हैजा हो गया। उन्हें पाँच-छः बार के

तथा दस-बारह बार दस्त हुई। अन्त में दस्त के साथ केवल पानी आने लगा तथा हाथ-पाँव में ऐंठन आने लगी। रात के एक बजे से लेकर सुबह तक उनकी यही अवस्था रही। जब उनकी हालत अत्यन्त खतरनाक हो गयी तब मुझे खबर मिली। मैंने जाते ही और कुछ न कर पहले गिली मिट्टी लाकर उनके पेडू पर एक पुलटिस बाँध दी। उनका पेट उस समय इतना गरम था कि बर्फ के समान ठण्डो मिट्टी बीस मिनट में ही आग के समान गरम हो गई। मैंने बार-बार मिट्टी बदलनी शुरू की। पहली बार मिट्टो देने के बाद एक बार और दस्त हुई, पर कै तो जादू-मन्तर की तरह उसी समय बन्द हो गई। किन्तु इसके पहले ही ऐंठन शुरू हो गई थी। वह उन्हें बहुत ही कष्ट दे रही थी। उनके हाथ बार-बार ऐंठ जाते थे। दवाई से चिकित्सा करने पर यह प्रायः दो तीन दिन तक चलती है। किन्तु धूप निकलते ही उनके बिस्तर को बाहर लाकर उन्हें मैंने इस प्रकार सुलाया जिससे धूप केवल उनके पैर और हाथों पर ही पड़े। उसके बाद मैंने कपड़े से उनके हाथ पैर ढक दिये। वह जाड़े का दिन था। घण्टे भर तक वे हाथ पैर उसी प्रकार किये धूप में रहे। इसी से उनकी मरोड़ जाती रही। उस दिन मैंने उन्हें केवल नीबू का रस और पानी पिलाकर रखा। दो दिनों में ही वे पूर्ण रूप से ठीक हो गये।

एडल्फ जुष्ट ने कहा है, Many a local trouble will flee from an earth compress as if by magic—मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग से अनेक बीमारी जादू के समान अच्छी हो जाती है (Return to Nature, p. 128)।

मिट्टी को ठण्डी पुलटिस आग से जल जाने की एक श्रेष्ठ चिकित्सा है। यदि ऐसा कोई अंग आग से जल जाय, जिसे ठण्डे पानी में डुबाया नहीं जा सकता, तो तुरन्त जले हुए स्थान पर कादो मिट्टी की ठण्डी पुलटिस का प्रयोग करना चाहिये। पुलटिस के प्रयोग के साथ ही साथ दर्द कम हो जाता है। इसके गरम होने या सूख जाने के पहले अथवा पुनः दर्द शुरू होते ही बदल देना चाहिये। ऐसा करने से कभी छाला नहीं पड़ सकता।

यदि कभी छाला पड़े तो वह भी बार-बार प्रयोग करने पर एक ही दिन में ठीक हो जाता है।

आग से जला घाव भी मिट्टी की पुलटिस से शीघ्र आराम हो जाता है। इस स्थिति में मिट्टी की पुलटिस सूख जाने या गरम हो उठने के पहले ही बदल देना आवश्यक है।

पाकस्थली, मूत्राशय, गर्भाशय आदि स्थानों से रक्तस्राव होने पर मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग से तुरन्त वह बन्द हो जाता हैं। इस अवस्था में मिट्टी का यथेष्ट रूप से ठंडा होना आवश्यक है और वह पेडू से गुदा तक सब स्थानों के ऊपर तथा ऊपर की जांघों के दोनों बगल में प्रयोग करना आवश्यक है। इस समय दोनों पैरों को अवश्य ही अल्प गरम रखना चाहिये।

मिट्टी की ढकी हुई पुलटिस (heating earth compress)

मिट्टी की ठंडी पुलटिस के ऊपर फ्लानेल द्वारा कसकर बाँधने पर ही वह मिट्टी की ढकी हुई पुलटिस में बदल जाती है। इसका फल ढकी हुई पट्टी के समान है। एक फ्लानेल की कई तह बनाकर मिट्टी को इस प्रकार ढक देना होता है जिससे मिट्टी के सब ओर कम से कम एक इञ्च फ्लानेल बाहर रहें। उसके बाद एक कपड़े के द्वारा हवा का आना-जाना बन्द कर उसे बाँधना जरूरी है। किंतु इस प्रकार उसे नहीं बाँधना चाहिये जिससे रक्त का आवागमन बन्द हो जाय। जब तक मिट्टी गीली रहती है, तभी तक पुलटिस से काम होता है। मिट्टी सूख जाने पर फिर नहीं होता। मिट्टी की ढकी पुलटिस हटाकर सदैव पुलटिस के स्थान को समसीतोष्ण पानी में भिगोई हुई तौलिया द्वारा पोंछ डालना चाहिये। उसके बाद हल्के तौरपर रगड़कर अथवा घाव आदि रहने पर उसे गरम कपड़े आदि द्वारा कुछ समय के लिए ढककर थोड़ा गरम कर लेना आवश्यक है।

मिट्टी की ढकी हुई पुलटिस एक घण्टे तक रखना ही यथेष्ट है। कठिन नये रोग में आवश्यकतानुसार बार-बार इसका प्रयोग किया जा सकता है।

व्रण, फोड़ा और जहरबाद (carbuncle) आदि जब फट जाते हैं, तब मिट्टी की पुलटिस से वे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

घाव सहित नयी सूजन में अनेक अवस्थाओं में यह तथाकथित जादू की तरह काम करती है। एक बार हमारे आँगन में एक पुराना टूटा तख्त रखा गया उसकी एक पुरानी कील ऊपर उठी हुई थी। एक नया नौकर आकर उस तख्त पर पैर रखते ही वह पुरानी कील उसके पैर के अन्दर प्रायः एक इञ्च घुस गई। सब लोग आकर खींचकर किल निकाल डाले परन्तु उसकी पीड़ा का अन्त न था। मैं उस दिन उस घटना के बारे में जान नहीं पाया। दूसरे दिन जब मैं बाहर जाने लगा तो देखा कि वह व्यक्ति पैर बाँधकर बरामदे में बैठा है। मैंने उसके पास जाकर घाव को देखा। घाव के दोनों बगल थोड़ा सा दबाते ही पीप की धारें फूट निकली। उसका पैर भी काफी फुल उठा था। एक सज्जन पास में थे। उन्होंने बताया, इसे जल्दी अस्पताल भेज दीजिये। मैंने उसे अस्पताल जाने नहीं दिया। जल्दी से गीली मिट्टी लाकर उसके पैर के ऊपर और नीचे चारों ओर लगाकर कपड़े से बांध दिया। घाव के दर्द के मारे सारी रात वह सो नहीं पाया था। आधा घण्टा बाद फिर मैं उधर से ही लौट रहा था, तो देखा कि मिट्टी की ठण्डक पाकर वह इतने में ही सो गया था। दोपहर के बारह बजे वह नींद से उठा। तब मैंने फिर एकबार उसकी मिट्टी बदल दी। दूसरे दिन नींद से उठने में मुझे बहुत देर हो गई थी। मैंने उठकर आश्चर्य होकर देखा कि वह नया नौकर आंगन में झाड़ू लगा रहा था। मैंने विस्मित होकर उससे पूछा, तुम्हारे घाव का क्या हुआ ? उसने अपने घाववाले पैर को उठाकर घाव के स्थान पर जोर से दबाकर कहा, अब कुछ भी नहीं है, अच्छा हो गया।

विभिन्न पुराने घाव अच्छा करने के लिए मिट्टी की पुलटिस एक श्रेष्ठ उपचार है। नये घाव में जिस प्रकार जल की पट्टी अच्छी है, पुराने घाव उसी प्रकार मिट्टी की पुलटिस ही सर्वोत्तम है।

मिट्टी की पुलटिस घाव के ठीक ऊपर ही लगानी चाहिये। किन्तु घाव

में यदि नासूर (sinus) हो, तो पतले गीले कपड़े के ऊपर मिट्टी रखी जा सकती हैं। उससे समान ही लाभ होता है। घाव के ऊपर मिट्टी का प्रयोग करते समय एक नई मिट्टी को हाँड़ी में मिट्टी को एक घण्टा उबाल लेना अच्छा होता है। उसके बाद मिट्टी ठण्डी हो जाने पर तब उसे घाव पर रखना चाहिये।

घाव के ऊपर मिट्टी की पुलटिस का कभी एक घण्टे से अधिक समय तक प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि एक घण्टे के अन्दर इतना विष और क्लेद आदि मिट्टी के भीतर उठ आते हैं कि घाव के विष से मिट्टी जर्जरित (saturated) हो उठती है। तब वह और कुछ खींचने नहीं सकती, बल्कि उल्टा विष देती है। अतः एक घंटे से अधिक समय तक घाव के ऊपर पुलटिस रखने से घाव की स्थिति खराब हो जाती है और अच्छा होने में बहुत अधिक समय लेता है।

किन्तु अविच्छिन्न रूप से घाव के ऊपर केवल ठण्डा ही नहीं देते रहना चाहिये। उससे उस स्थान पर अवसाद (depression) आता है। उससे भी घाव के अच्छे होने में देर हुआ करती है। इसलिए घाव के ऊपर जब भी बार-बार मिट्टी देने की आवश्यकता होती है, तब उसके ऊपर दिन में एकबार ५ से १० मिनट के लिये अवश्य सेंक देना चाहिये। तो भी आग से जलने के कारण हुए घाव पर कभी भी सेंक नहीं देना चाहिये।

मिट्टी की पुलटिस से समय-समय पर जिस प्रकार घाव अच्छा हुआ करता है उसे देखकर आश्चर्य होना पड़ता है। गोपीकिशन तिवारी नाम के हरिसन रोड के सज्जन बीस साल से अधिक समय से दाहिने पैर की उरुसंधि के ऊपर एक घाव से पीड़ित थे। घाव सम्पूर्ण उरुसंधि में फैल गया था। कभी कभी घाव कम रहता था और फिर बीच-बीच में नये रोग के आकार मे प्रकट होकर उन्हें अत्यधिक कष्ट देता था। इसके लिए उन्होंने सब प्रकार की चिकित्सायें करायीं। किन्तु सभी चिकित्सायें उनके लिए मिथ्या हो गईं। अन्त मे वे प्राकृतिक चिकित्सा कराने के

लिए आये। मैंने पहले उनके शरीर की साधारण चिकित्सा (general treatment) की इसके लिए उन्हें डूस तथा वाष्पस्नान का प्रयोग किया गया और प्रधानतः फलमूल-प्रधान पथ्य खाने के लिए दिया गया। इसके बाद उनके घाव के ऊपर दिन में दो बार मिट्टी की ढकी हुई पुलटिस रखने की व्यवस्था की गई। इस चिकित्सा से ही प्रायः दो मास में उनका घाव सम्पूर्ण अच्छा हो गया।

मिट्टी की पुलटिस से घाव इस कारण से अच्छा होता है कि यह घाव से मवाद, क्लेद, विभिन्न जीवाणु तथा जिस परिस्थिति पर सारे रोग-जीवाणु बढ़ते हैं, उन्हें सोख लेती है। इसी कारण पीप-युक्त घाव के ऊपर से पुलटिस उठाते समय वह भारी मालूम पड़ती है और उसमें से एक दुर्गन्ध निकला करता है।

मिट्टी को पुलटिस में खोंचने की शक्ति इतनी अधिक है कि इसके प्रयोग करने पर नितांत शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में भी अनेक अवस्थाओं में चीर-फाड़ करने की आवश्यकता नहीं होती।

मैंमनसिंह जिले का विधुभूषण नाहा नामक एक सत्रह वर्ष के लड़का एकबार कलकत्ते आया। देश में बांस चीरते समय एक बांस का टुकड़ा उसके पैर में गड़ गया था। उसे उसी समय उसने निकाल फेंका, पर उससे घाव सूखा नहीं। वह बार-बार दवाई लगाकर घाव को सुखाता था पर घाव फिर हो जाता था। उसके पैर में दर्द भी खूब विशेष रहता था और चलने में उसे विशेष कष्ट होता था। एक आदमी ने उसके पैर की हालत देखकर उसे पहले ही बतलाया था कि उसके पैर में बांस का टुकड़ा रह गया है। उसे चिरकर निकलवाना होगा। कलकत्ता आकर वह घाव चिराने को तैयार हुआ। किन्तु पैर में किस जगह बांस का टुकड़ा है उसे निकालने के लिए डाक्टर लोग कितना काटेंगे और इस कारण परदेश में उसे कितने दिन कष्ट भोगना और बिस्तर पर रहना होगा आदि सोचकर वह बहुत डर गया। मैंने उसे आश्वासन दिया और कुछ मिट्टी लाकर उसके पैर पर एक पुलटिस देकर फलानेल से उसे अच्छी तरह बांध दिया।

दो-तीन रात उसने इसी प्रकार मिट्टी रखी। रोज सुबह उस घाव को दिखाने के लिए वह मेरे पास आता था। एक दिन मैंने देखा कि एक बांस के टूकड़े का सिरा घाव के भीतर दिखाई दे रहा है। मानो वह टुकड़ा मुँह बाहर करके कह रहा हो, "मुझे बाहर खींच लो।" उस लड़के ने ही अपने नाखून से उस टूकड़े को बाहर खींच लिया। मैंने देखा कि वह टुकड़ा तीन-चौथाई इञ्च से भी बड़ा था। दूसरे दिन भी रात के समय उसका पैर फिर पहले की तरह मिट्टी से बाँध दिया। इसके दूसरे दिन यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक और बांस का टूकड़ा उसी प्रकार मुँह किये घाव में दिखाई दे रहा है। इसे भी निकाल फेंका गया। यह भी पहले टुकड़े के बराबर ही बड़ा था इसके बाद तीन-चार दिन मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग से घाव बिल्कुल सूख गया और फिर उसे घाव नहीं हुआ।

बवासीर रोग में जब अत्यधिक रक्तस्राव होता है, तब पेडू पर सारी रात के लिए मिट्टी की पुलटिस के प्रयोग से साधारणतः एक से तीन दिन के अन्दर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। परन्तु कम से कम ७ दिनों तक इसका प्रयोग करना चाहिये तथा फ्लानेल द्वारा अच्छी प्रकार ढककर और बस्त्र के द्वारा बाँधकर इसका प्रयोग करना आवश्यक है।

पाकस्थली तथा ड्यूओडिनम के घाव (gastric and duodenal ulcer) कभी सहज में अच्छे नहीं होते। परन्तु सर्वदैहिक चिकित्सा के साथ पेट के उपर मिट्टी की ढकी हुई पुलटिस के प्रयोग से यह निश्चित रूप से अच्छा हो जाता है। जब पेट में दर्द नहीं रहता है, तभी एक घण्टे के लिए इसका प्रयोग करना चाहिये और दिन में दो-तीन बार प्रयोग करना उचित है।

नये या पुराने अन्त्रपुच्छ के सुजन में सम्पूर्ण विश्राम, जलपान सहित उपवास और बाहर व भीतर से शरीर की धुलाई के साथ-साथ मिट्टी की पुलटिस दिन में तीन-चार बार लेने पर कभी नश्तर करने की आवश्यकता नहीं होती और रोग (appendicitis) सम्पूर्ण रूप से अच्छा हो

जाता है।

अन्यान्य प्रकार से भी चिकित्सा के लिए मिट्टी का उपयोग किया जा सकता है। गर्मी के दिनों में जब अत्यधिक घमौरी निकलती है, तब कादो मिट्टी शरीर में लपेटकर धूप में सूखाकर बाद में स्नान कर लेने पर एक से तीन दिन के अंदर चमड़ा साफ हो जाता है। पेट को अवश्य ही पहले साफ कर लेना चाहिये।

जिनके सिर पर रूसी होतो है, वे पेट को साफ रखकर बीच-बीच में कादो मिट्टी द्वारा यदि सिर धोया करें तो सिर यथेष्ट साफ हो जाता है। किंतु इसके लिए कभी लोनी मिट्टी का उपयोग नहीं करना चाहिये। उससे बाल झड़ जा सकते है।

दाँत के रोगों में बलुही मिट्टी के समान दूसरी कोई लाभकारी वस्तु नहीं है।

दाँत की ऐसी कोई भी बीमारी नहीं जो रोज मिट्टी से दाँत साफ कर धोने से अच्छी न हो जाये। दाँत का हिलना, मसूड़ों का सूजन, दाँत का दर्द आदि सभी रोग मिट्टी से दाँत साफ करने से अच्छे हो जाते हैं। पहले पहल दोनों समय मिट्टी से दाँत मलना चाहिये, जिसमें कम से कम एक बार रात को सोने से पहले होना आवश्यक है। कुछ दिनों बाद एक बार मलने से ही काम चल जायगा। दाँत मलने की मिट्टी यथा-सम्भव ताजी होनी चाहिये।

किंतु इस बात का सदैव ध्यान रखना जरूरी है कि मिट्टी एक औषधि नहीं है। इससे इस कारण लाभ होता है कि यह शरीर में से यथेष्ठ रोग-विष खींच लेती है और उसी कारण रोग अच्छे होते हैं।

इसीलिए स्थानीय प्रयोग (local application) के साथ सदैव शरीर को दोषमुक्त करने के लिए सारी शक्ति से प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने पर ही प्राकृतिक चिकित्सा ठीक-ठीक प्रकार से हो सकती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

चिकित्सा में सावधानी

[१]

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग की चिकित्सा जितनी की जाती है, उससे अधिक चिकित्सा की जाती है शरीर को। हमें जो कोई भी रोग क्यों न हो, देह-संचित विभिन्न विषाक्त और दूषित पदार्थ ही उसका मूल कारण है। हमारे शरीर के अन्दर जो रक्तधारा बहती है, उसी में से समस्त यंत्र पोषण लिया करते हैं। आँख, दाँत, हृदय, फेंफड़ा, यहाँ तक की शरीर के प्रत्येक कोष तक, इस साधारण रक्त-प्रवाह से ही शरीर निर्माण का मसाला इकट्ठा करते हैं। जब शरीर के अन्दर को रक्तधारा ही विषाक्त हो उठती है, तब कोई भी यंत्र उस विष के द्वारा आक्रान्त हो सकता है।

साधारणतः दुर्बल अगों में ही रोग उत्पन्न होते हैं। एक जंजीर को यदि दोनों ओर से खींचा जाय तो वह कहाँ पर टूटती है? जो स्थान दुर्बल होता है वहीं पर टूटती है। दूषित रक्तधारा के अन्दर जो विष चक्कर लगाते रहते हैं, साधारणतः दुर्बल अंग ही उनके द्वारा आक्रान्त होते हैं। इस प्रकार शरीर के भीतर विभिन्न चक्षुरोग, दन्तरोग, चर्मरोग, फेंफड़े के रोग तथा स्त्रीरोग आदि असंख्य रोग उत्पन्न होते हैं। किंतु वास्तव में इन सब को रोग कहना गलत है। शरीर की दोषयुक्त अवस्था (toxaemia) ही वास्तविक रोग है। बाकी सब उनके लक्षण मात्र हैं।

ऐसा समझा जाता है कि रोग बाहर से आता है। परन्तु यह अत्यन्त भूल है। अकस्मात् नीलाकाश से कभी वज्र सिर पर उतर नहीं आता। पहले से शरीर के भीतर रोग-वृद्धि की अनुकूल अवस्था जब रहती है, केवल तब ही उस पर रोग का विस्तार होता है।

हम कई बार सुनते हैं कि एक व्यक्ति बड़े स्वस्थ थे, एकाएक चलने फिरने की शक्ति खो बैठे, या हार्टफेल होकर उनकी मृत्यु हो गई। किंतु हठात् कभी कोई रोग नहीं हो सकता। यहाँ तक कि साधारण सर्दी या जुकाम तक नहीं। कभी सर्दी लगकर रोमकूप बन्द हो जाने पर रोमकूप के रास्ते से जो विष निकलता है, प्रकृति उसे दूसरे रास्ते से निकाल देती है। दिनोंदिन शरीर में दूषित पदार्थों के संचय के कारण जब अन्यान्य सफाई के यंत्र दुर्बल हो जाते हैं और वे यत्र इस अतिरिक्त बोझ को ढोने में असमर्थ होते हैं, केवल तब ही सर्दी लगती है। इस प्रकार एक व्रण तक एकाएक नहीं हो सकता। अदर के विष के आक्रमण के कारण जब शरीर के रोग-प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है, केवल तब ही एक व्रण का होना संभव होता है। जिसका हृदय स्वस्थ और सबल रहता है, कभी उसका एकायक हार्टफेल नहीं हो सकता। देह-संचित विष, मल व क्लेद इत्यादि के आक्रमण से शरीर का एक यंत्र जब बहुत दिनों से खराब होने लगता है, केवल तब ही उसके ऊपर अंतिम संकट आकर उपस्थित होता है।

अतः कोई रोग होने से ही वह अकस्मात् हुआ है यह समझना भ्रम है। आज जो रोग प्रकट हुआ है, अनेक दिनों के पहले से ही उसकी अनुकूल अवस्था (predisposition) लोकदृष्टि की आड़ में शरीर के अंदर दिन पर चलती रही। उसके बाद अकस्मात् एक दिन रोग उपस्थित होता है।

सभी रोगों में पहले शरीर भिन्न भिन्न विषों और कूड़ा कचड़ा द्वारा भाराक्रान्त होता है। उसके बाद एक रोग प्रकट होता है।

इसीलिए किसी रोग को ही स्थानीय समझना उचित नहीं। All diseases are constitutional—सभी रोग सर्वदैहिक हैं। भिन्न-भिन्न अंगों में तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से वे प्रकट होते हैं मात्र। इसीलिए सभी रोगों में केवल स्थानीय अर्थात् जिस अंग पर रोग का आक्रमण हुआ है, केवल उसकी चिकित्सा न कर तुरन्त शरीर को दोषमुक्त करने और विशेष क्षेत्रों में शरीर को तैयार कर लेने की कोशिश करते हुए सारे शरीर

की चिकित्सा करनी चाहिये।

औषधि द्वारा चिकित्सा करनी हो तो औषधि देने के पूर्व समस्त शरीर को छानबीन करना आवश्यक होता है। पेनिसिलिन का प्रयोग करना हो तो भी कौन सा जीवाणु शरीर में फैल गया है, इसका निर्णय पहले ही कर लेना आवश्यक है और यह देखना आवश्यक है कि उनके अन्दर पेनिसिलिन के प्रतिरोध को शक्ति है या नहीं। ऐसा न होने पर उसे वैज्ञानिक चिकित्सा नहीं कहा जा सकता और उसके फलस्वरूप मनुष्यों की हत्या भी हो सकती है (Journal of Indian Medical Association, p. 141, Calcutta, July, 1955)। रोग कुछ कठिन होने पर अच्छे डाक्टर पहले ही दवा नहीं देते। वे संभवतः पहले खून की जाँच करते हैं। उसके बाद मल और मूत्र की जाँच की जाती है। किंतु एक ही व्यक्ति के खून की जाँच कर भिन्न-भिन्न परीक्षक भिन्न-भिन्न मय व्यक्त करते हैं। अतः तीन-चार बार जाँच किये बिना असल रोग का पता नहीं लगता। किसी-किसी समय दो-तीन बार एक्स-रे खींचने की आवश्यकता होती है। इन सब बृहद् व्यापार करने के बाद यदि रोगी का धन और परमायु कुछ अवशिष्ट रहे, तब उसे औषधि मिलती है।

इन जाँचों की आवश्यकता नहीं है, ऐसा नहीं परन्तु प्राकृतिक विधान में चिकित्सा आरम्भ करने के लिए कभी रोग निर्णय के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती। शरीर के अन्दर विभिन्न प्रकार के कई विष संचित होने के फलस्वरूप ही शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। अतः शरीर के किसी रोग म भी बिना विलम्ब किये शरीर की उस दूषित अवस्था को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। शरीर को यदि दोषमुक्त किया जा सके तो रोग स्वयं ही अच्छा हो जाता है और ९९ प्रतिशत क्षेत्रों में शरीर को विशेष जाँच की आवश्यकता नहीं होती।

रोग के आरम्भ में सर्वदैहिक चिकित्सा के द्वारा यदि शरीर को दोषमुक्त कर लिया जाय तो रोग कभी बढ़ नहीं सकता, सहज ही रोग

अच्छा होता है और अच्छे हो जाने के बाद शरीर में स्वास्थ्य की प्रतिष्ठा हुआ करती है।

सर्वदैहिक चिकित्सा का अर्थ यह है कि प्रचुर जल पान, डूस, पाद-स्नान या वाष्पस्नान, घर्षन स्नान या तोलिया-स्नान, पेट की पट्टी लेना और रोग की प्रकृति के अनुसार उपवास करना अथवा फल, फल का रस, मधु-जल, मट्ठा और तरकारी का सूप आदि हल्का भोजन लेकर रहना। इसके साथ मालिश ले सकें तो फल बहुत अच्छा होता है।

किसी भी रोग में इस चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है तथा उससे सबसे जल्दी और सबसे अधिक उपकार लाभ होता है। जब महात्मा गान्धी पटना में डा० सैयद महमूद के घर पर थे तब उन्होंने एक स्थानीय रोगी को दिखलाने के लिए मुझे बुलावा भेजा। उस समय सीमान्त नेता अब्दुल गफ्फार खाँन उनके साथ ठहरे थे। गान्धीजी ने मुझे बुलाकर उन्हें भी दिखवाया। यद्यपि खाँन साहब का शरीर बाहर से देखने मे बहुत अच्छा है तथापि जेल में अत्याचार के फलस्वरूप उनका हार्ट दुर्बल हो गया था और परिपाक यत्र खराब हो गया था। मैं एक पुरुष नर्स को साथ में ले गया था। उनसे मैंने उनको मालिश, पेट पर गरम-ठण्डा, डूस पादस्नान तथा घर्षण स्नान और सारी रात के लिए पेट में पट्टी देने की व्यवस्था की। केवल तीन दिन बाद उन्होंने मेरे सामने गान्धी जी को कहा कि उनको बिलकुल भूख नहीं लगती थी। खाने की इच्छा ही नहीं होती। लेकिन इन तीन दिनों में ही उनको ऐसी भूख लगने लगी कि वे आश्चर्य हो गये।

किंतु यह कभी नहीं समझना चाहिये कि प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के निदान की कोई आवश्यकता नहीं।

भिन्न-भिन्न रोगों में शरीर के अन्दर भिन्न-भिन्न अवस्थायें उत्पन्न होती हैं और प्रकृति देह-संचित विष को विभिन्न रोगों में विभिन्न प्रकार से निकाल देती है। इसलिए सारी चिकित्सा का उद्देश्य यद्यपि केवल शरीर को विषमुक्त करना है, तथापि हरेक रोग की विभिन्न

अवस्था के प्रति दृष्टि रखकर ही विभिन्न उपायों के द्वारा शरीर को भारमुक्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

रोगी के शरीर की अवस्था पर भी विशेष रूप से विचार करना आवश्यक होता है। किसी भी प्रक्रिया के शुरू करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि रोगी की वर्तमान अवस्था में यह प्रक्रिया चल सकती है या नहीं और रोगी उसे बर्दास्त कर सकता है या नहीं। जिस प्रकार यदि ज्वर एक सौ तीन-चार या पाँच डिग्री हो तो कभी भी वाष्पस्नान देना उचित नहीं। उसी प्रकार यदि शरीर की गर्मी ९५ डिग्री से कम हो तो हिपबाथ देना ठीक नहीं।

इसी कारण भिन्न-भिन्न रोगों में तथा रोग की विभिन्न अवस्था में रोग के विष खींच लेनेवाली विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण करना चाहिये।

[२]

किंतु स्नान (bath) आदि हमेशा ठीक पद्धति से लेना आवश्यक होती है। ऐसा नहीं करने से लाभ के बदले हानि होने की संभावना रहती है।

कटिस्नान या पूर्णस्नान आदि सभी प्रकार के ठंडे स्नान (cold bath) करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शरीर का चमड़ा गरम है या नहीं। यदि शरीर गरम न हो, तब किसी भी हालत में शीतल स्नान नहीं करना चाहिये। इस अवस्था में स्नान करके बहुतों ने जिन्दगी भर के लिए अपने शरीर को नष्ट कर दिया है। इसी कारण शरीर जब गरम रहे, शरीर का प्रत्येक रक्तबिन्दु ठंडे पानी के स्पर्श को चाह रहा हो, उसी समय शीतल जल में स्नान करने से सबसे अधिक लाभ होता है। शरीर गरम हो, तब यदि ठंडे पानी से स्नान किया जाय तो किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता। यहाँ तक कि शरीर से तरतर पसीना चू रहा हो, तो भी नुकसान नहीं होता

यदि स्नान या कटिस्नान आदि शीतल स्नान करते समय शरीर

गरम हो या न हो, तो शरीर को अच्छी तरह गरम कर लेने के बाद स्नान करना चाहिये। इसीलिये स्वस्थ शरीर में थोड़ी देर तक हल्की कसरत कर शरीर गरम होने के बाद स्नान किया जा सकता है कमजोर रोगी तीन से छः मिनट तक मृदु वाष्पस्नान के बाद यदि कटिस्नान ले तो बहुत ही लाभ होता है। या रोगी के सिर को छाया में रखकर अथवा सिर पर भींगी तौलिया रखकर पाँच से पन्द्रह मिनट तक धूप में रखकर शरीर में गर्मी पहुंचाने के बाद स्नान कराया जा सकता है। पर जिस समय धूप न हो उस समय शरीर को अच्छी तरह मालिश करके गर्मी पहुँचाने के बाद स्नान कराना चाहिये। यदि रोगी बिस्तर पर पड़ा रहने लायक हो तो पेड़ू में पन्द्रह मिनट तक सेंक देने के बाद स्नान (bath) करना जरूरी है स्वस्थ अवस्था में सबेरे टहलने के बाद शरीर गरम रहते ही स्नान करना सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है (J. P. Muller—My System, p. 18)। शरीर को एक बार गरम करके उसके ठंडा होने के पहले ही रोगी को हमेशा स्नान कराना चाहिये। जब शरीर स्वभावतः ही गरम हो तब साधारणतः किसी प्रकार से इसे गरम करने की आवश्यकता नहीं और स्वस्थ व्यक्ति तो शरीर के ठंडा न रहने पर ही सब प्रकार के स्नान ले सकता है। जिन रोगियों को बुखार हो, उनके शरीर को गरम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि उनके शरीर में उस समय काफी गर्मी रहती है। किंतु ज्वर की शीतल अवस्था (cold stage) में यानी जब कि रोगी को कँपकँपी और ठंढ लग रही हो उस समय किसी भी अवस्था में उसके लिए कटिस्नान या पूर्णस्नान आदि ठंडे स्नान की व्यवस्था नहीं करनी चाहिये।

स्नान के पहले जिस प्रकार शरीर को गरम कर लेना आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार स्नान करने के बाद तुरत ही फिर ठंडे चमड़े में गर्मी वापस कर लेनी आवश्यक है (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 9, p. 625, London, 1951)। स्नान के बाद कभी भी शरीर को ठंडी अवस्था में रहने

देना उचित नहीं। प्रायः स्नान के बाद रोगी पर स्नान का जो बुरा फल देखा जाता है उसका यही कारण है। इसी कारण स्नान के बाद सूखी तौलिया या साफ कपड़े से रोगियों के शरीर को खूब अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिये। इसके बाद ही उसके सारे शरीर को रगड़कर गरम कर लेना विशेष रूप से आवश्यक है। फिर रोगी को बिस्तरे पर लिटाकर गरदन तक कम्बल से ढककर गर्मी वापस कर लेनी चाहिये। यदि स्नान के बाद रोगी को कँपकँपी लगे तो रोगी को एक गिलास गरम पानी पिलाया जा सकता है। किंतु रोगी को कभी इतना स्नान करना ही नहीं चाहिये कि उसे कँपकँपी लग सके। इससे लाभ के बदले हानि ही हो सकती है।

किंतु रोगी का शरीर बहुत ज्यादा या काफी देर तक गरम करना भी उचित नहीं। ऐसा करने से स्नान की सारी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। मोटे तौर पर कटिस्नान, पूर्णस्नान आदि सभी प्रकार के ठंडे स्नानों (cold bath) के बाद ही चमड़े की गर्मी वापस कर लेनी उचित है। अतः आवश्यकता से न तो अधिक और न कम गर्मी पहुँचानी चाहिये।

स्नान के पहले और पीछे इस प्रकार शरीर को गरम कर लेने से शरीर का रक्त बार-बार चमड़े में आता और बार-बार भीतर चला जाता है। शरीर का रक्त इस प्रकार शरीर में चक्कर लगाकर शरीर के प्रत्येक भाग में देह गठन की सामग्री और पुष्टि पहुचा देता है और भीतर से वापस आते समय वहाँ की दूषित व बेकार चीजों को लाकर शरीर की मोरियों की राह बाहर निकाल देता है। खून के इस प्रकार आने-जाने से भीतर के यन्त्रों के भीतर भी एक प्रकार से पम्प का काम होता है। इसी प्रकार उचित विधि से स्नान करने पर सभी यंत्रों में काफी उद्दीपन होता है।

फिर गरम स्नान के बाद कभी भी पसीने की हालत में रोगी को नहीं छोड़ना चाहिये। उससे गर्मी की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप रोग को ठंड लग जाने का भय रहता है। इसी कारण वाष्पस्नान आदि के बाद घर्षणस्नान आदि से हमेशा रोगी को शीतल कर लेना चाहिये।

सभी प्रकार के गरम स्नानों से गर्मी को धीरे धीरे बढ़ाकर अन्त में क्रमशः कम करना आवश्यक होता है. ऐसा करने से सर्दी लगने का डर नहीं रहता।

जब कभी भी कोई स्नान करना हो, तो इस बात का खयाल रहना चाहिये कि उसकी गर्मी उतनी ही हो जितनी कि रोगी को प्रिय लगे। रोगी की हर चिकित्सा इस प्रकार की होनी चाहिये कि उसे वह कष्टकर न मालूम पड़े। प्रत्येक उपचार से उसे आराम मिलेगा और वह कब स्वस्थ हो उठेगा यह उसे स्वयं ही पता नहीं लगेगा। यदि ऐसा हो तभी समझना चाहिये कि चिकित्सा ठीक ठीक हुई है।

इस बात को कभी भी नहीं भूलना चाहिये कि काफी गरम स्नान केवल भोजन के तीन-चार घंटे पहले या पाँच-छः घंटे बाद ही लिया जा सकता है। इस नियम की कभी भी अवहेलना नहीं होनी चाहिये। किंतु हल्का उपचार जैसे सेंक, ढकी हुई पट्टी (heating compress) आदि भोजन के एक घंटे पहले या पीछे ली जा सकती है। हल्की सेंक या पेड़ू को छोड़कर अन्य स्थानों की लपेट हल्के भोजन के कुछ समय बाद ही लेने से भी कोई नुकसान नहीं होता। ठंडा स्नान भी भोजन के बाद तीन घंटे के अन्दर नहीं करना चाहिये तथा ऐसे ठंडे स्नान के बाद चमड़े में गर्मी आ जाने के पहले भोजन भी नहीं करना उचित है।

ये सब स्नान ऐसे स्थान में बैठकर लेने चाहिये जहाँ हवा का झोंका न आता हो। रोगी के शरीर में कभी भी हवा का झोंका लगना ठीक नहीं। पर दरवाजे या खिड़कियों को भी एकदम बन्द करके स्नान नहीं करना चाहिये। घर के एक दो जंगले स्नान करते समय अवश्य खुले रहें।

अत्यन्त शिशु वृद्ध या कमजोर रोगी को कभी अधिक गरम या अधिक शीतल चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगियों को हमेशा मृदु चिकित्सा करनी आवश्यक है। ऐसे रोगी को वाष्पस्नान के बदले उष्ण पादस्नान तथा कटिस्नान के स्थान पर भींगी कमरपट्टी देनी उचित है।

चाहे किसी भी प्रकार का स्नान क्यों न लिया जाये, पानी जितना संभव हो स्वच्छ होना उचित है। एक बार काम में लाये हुए पानी को फिर हरगिज काम में नहीं लाना चाहिये।

कपड़े आदि साबुन से खूब धोकर या गरम पानी में खौलाकर फिर दुबारा काम में लाना उचित है। इसी कारण रोगी के लिए दो तीन जोड़े कपड़े आदि रखना चाहिये। फ्लानेल आदि को कभी भी गरम पानी में खौलाना ठीक नहीं एक आदमी द्वारा व्यवहार किया हुआ फ्लानेल यदि दूसरे काम में लाना हो, तो उसे पहले चौबीस घंटे तक पानी में भिगोकर रीठा आदि से खूब धोकर फिर काम में लाया जा सकता है।

ठीक पद्धति से यदि चिकित्सा की जाये तो प्राकृतिक चिकित्सा से रोगी की हालत कभी भी खराब नहीं हो सकती यदि लपेट या स्नान आदि कभी रोगी को असुविधाजनक मालूम हों तो तुरन्त उन्हें कुछ समय के लिए बन्द रखना उचित है (F. E. Bliz—The Natural Method of Healing, p. 97)।

नये रोग में एक ही साथ अनेक उपचार शुरू करके रोगी को अस्थिर करना ठीक नहीं। एक उपचार का प्रभाव शरीर पर समाप्त होने के बाद ही रोगी को कुछ विश्राम देकर उसके बाद और कुछ करना उचित है। साधारण तौर पर दिन में दो-तीन प्रयोग ही काफी होते हैं। यह सदा याद रखना चाहिये कि प्रकृति से क्षमता से अधिक काम नहीं कराया जा सकता। परन्तु पुराने रोगों में रोगी को सारे दिन परेशान न करके शाम या सवेरे केवल एक समय रोगी पर मालिश, पेट पर गरम ठंडा और डूस वगैरह का प्रयोग करना चाहिये। साधारणतया इसमें दो घंटा समय आवश्यक होता है।

पहले छोटे-छोटे उपायों से रोग का कारण दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि सहज उपाय से रोग न जावे तो बड़े उपायों का अवलम्बन करना उचित है।

[३]

बहुधा रोगी की कितनी ही छिपी हुई बीमारियाँ प्राकृतिक चिकित्सा के समय प्रकट होने लगती हैं। पर इससे डरना नहीं चाहिये और नियमानुसार प्राकृतिक चिकित्सा जारी रखनी चाहिये। ये सब अप्रकट रोग क्रमशः प्रकट होकर बाहर हो जाते हैं इस चिकित्सा से जब रोगी की जीवनी शक्ति काफी बढ़ जाती है तब शरीर के अन्दर छिपी हुई व्याधियों को प्रकृति धीरे-धीरे प्रकट कर शरीर से बाहर कर देती है। इस अवस्था को आरोग्यमूलक सकट (curative crisis) कहते हैं। वास्तव में वे सभी रोग अपना-अपना रूप प्रकट करके धीरे-धीरे मालूम हुए बिना ही दूर हो जाते हैं। इसके बाद रोगी सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है।

बालीगज में एक लड़के को निकसारी हुइ इसके बन्द हो जाने के बाद उसे आँव पड़ने लगा उसके आँव की चिकित्सा करते समय एक दिन देखा कि उसे फिर निकसारी निकल आई। निकसारी दो दिन तक रही। उसके बाद आँव भी बन्द हो गया और निकसारी भी। एक समय एक सज्जन दमे का इलाज कराने आये। इन्हें पहले सूजाक हुआ था। विभिन्न दवाइयों से सूजाक का स्राव बन्द कर देने पर ही उन्हें दमा हुआ था। करीब एक महीना चिकित्सा कराने के बाद ही फिर उनका सूजाक उमड़ आया। करीब सात दिनों तक स्राव जारी रहा। इसके बाद सूजाक भी अच्छा हो गया और दमा भी अन्तर्हित हो गया।

दवा खाने को ही जनसाधारण चिकित्सा समझते हैं। पर शुश्रूषा ही रोग की प्रधान चिकित्सा है। रोगी की शुश्रूषा अच्छी होने पर रोग सहज ही में अच्छा हो जाता है।

यह भी देखना चाहिये कि रोगी भी झांसा देकर रोग से मुक्त होना तो नहीं चाहता। प्रकृति के नियमों की अवहेलना करने से ही रोग होते हैं। उपवास वगैरह से उस पाप का प्रायश्चित करने पर ही रोग से छुटकारा मिलता है। दवा खाकर, ओझा गुणी को बुलाकर और तंत्र-मंत्र आदि से प्रकृति के शासन को कभी झांसा नहीं दिया जा सकता।

वर्तमान में ठाट-बाट न होने पर कोई भी वस्तु जनता की श्रद्धा आकर्षित नहीं करती। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में भी लाखों रुपए के औजारों की आमदनी की गई है। परंतु आजकल जो औजारें प्राकृतिक चिकित्सा में उपयोग में लाये जा रहे हैं, फादर नीप (Kneipp) आदि के सहज सरल उपचारों से इन यंत्रों के व्यवहार का ही फल होता था (Otto Juettner, M. D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, pp. 205-6)। वास्तव में यूरोप तथा अमेरिका में प्रायः सभी प्राकृतिक चिकित्सालय से अभी विद्युत् चिकित्सा परित्यक्त हुआ है।

किन्तु इस बात को याद रखना चाहिये कि प्राकृतिक चिकित्सा एक सा गृह-चिकित्सा है। Be your own doctor—अपना चिकित्सक आप बनो, यही प्राकृतिक चिकित्सा की बड़ी बात है। प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार से होना चाहिये कि जिससे किसी मूल्यवान् औजार आदि की सहायता के बिना ही सुदूर गाँवों-देहातों में भी बिना खर्च अपनी चिकित्सा अपने-आप की जा सके।

प्राकृतिक चिकित्सा में कोई औषधि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। परंतु किसी भी चिकित्सा के साथ यह चल सकती है। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर भारमुक्त होने पर कई बार थोड़ी बहुत औषधि के प्रयोग से ही रोग अच्छा हुआ करता है।

————

बारहवाँ अध्याय

भोजन और स्वास्थ्य

[१]

हमारे शरीर को रूपांतरित खाद्य कहा जा सकता है। हमलोग जो कुछ भोजन करते हैं वह नाना रूपों में बदलकर हमारे शरीर का गठन करता है।

हमारे शरीर का गठन विभिन्न उपादानों से हुआ है। जिन रासायनिक उपादानों से हमारा शरीर निर्मित है उन सभी उपादानों को संग्रह करके हम शरीर के गठन में सहायता पहुंचाते हैं और शरीर के क्षय को रोक सकते हैं। ये उपादान हम प्रोटीन (protein) शर्करा (carbohydrate); चर्बी जातीय पदार्थ (fat), खनिज लवण (mineral salts), खाद्यप्राण (विटामिन) और जल में पाते हैं। इन्हीं सब खाद्य पदार्थों को बदल बदलकर खाने से ही शरीर गठन के उपयुक्त और सर्व गुण संयुक्त भोजन (balanced food) लेना हो जाता है।

किंतु ये सभी खाद्य प्रधानतः इस प्रकार के निर्दोष खाद्य में से चुनने चाहिये जिनके द्वारा स्वास्थ्य का निर्माण हो और जो रक्षाकारी खाद्य के अन्तर्गत हों। जो खाद्य शरीर को सर्वप्रकार पोषण देने के साथ-साथ उसको कूड़ा-कचरा से मुक्त करते हैं वे ही वास्तव में रक्षाकारी खाद्य हैं

खाद्य में प्रोटीन या आमिष जातीय खाद्य ही प्रधान है। क्योंकि प्रोटीन जाति के उपादानों से शरीर का प्रायः आधा भाग गठित हुआ है। दूध, छेना पनीर (cheese), मछली, मांस सोयाबीन, मुंगफली दाल, मटर आदि खाद्य प्रोटीन जातीय प्रधान खाद्य हैं। रोज जितने प्रोटीन की आवश्यकता होती है उसमें एक-तिहाई प्राणियों से उत्पन्न और दो-तिहाई उद्भिज होना चाहिये।

विभिन्न प्रोटीन खाद्य के अन्दर दुध और दुग्धजात वस्तु ही सर्व-श्रेष्ठ हैं। दूध के बने खाद्यों में भी दही से श्रेष्ठ खाद्य और कोई नहीं है। आँत के भीतर अवस्थित विभिन्न रोग-जीवाणुओं और आँत में उत्पन्न होनेवाले विभिन्न विषों को यह नष्ट करता है (E. W. H. Cruickshank, M.D., Ph.D., M.R.C.P.—Food and Nutrition, p. 264, Edinburgh, 1951)। यह देखा गया है कि विश्व के जिन देशों के लोग यथेष्ट परिमाण में दही खाते हैं, वे साधारणतः दीर्घ जीवन पाते हैं (Robert McCarrison, D.Sc., F.R C.P.—Food, p. 70, London, 1944)। सोयाबीन से भी सस्ते में दूध, दही छेना आदि बनाये जा सकते हैं। सोयाबीन का दही स्वास्थ्य की दृष्टि से गो-दुग्ध के दही से भी श्रेष्ठ हुआ करता है।

हमारे गरीब देश में दाल ही प्रधान प्रोटीन खाद्य है। उसे कम से कम एक घन्टा पकाना चाहिये नहीं तो वह अच्छी प्रकार शरीर के काम में नहीं आती और पेट की विभिन्न गड़बड़ी उपस्थित करती है।

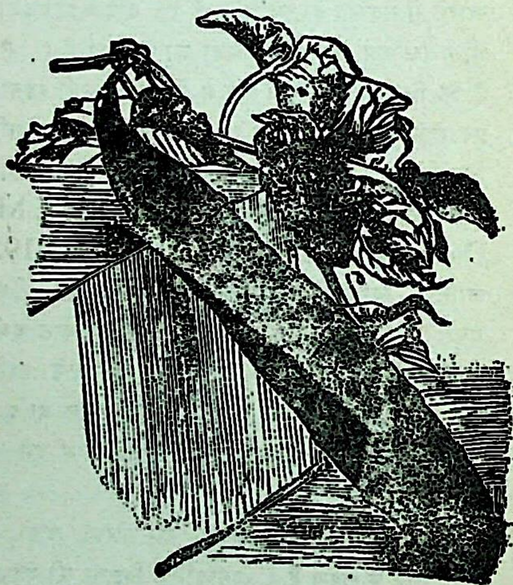
हमें प्रत्येक दिन कम से कम एक छटाक आमिष जातीय खाद्य लेना चाहिये और वह प्रतिदिन लेना आवश्यक है।

शर्करा जातीय खाद्य कहने से चीनी, गुड़ और मधु और आदि शर्करा (sugar), तथा भात, रोटी लाई चूड़ा और बार्ली आदि श्वेतसार (starch) जातीय पदार्थ समझे जाते हैं। शरीर में गर्मी और शक्ति उत्पन्न करना ही इनका प्रधान कार्य है शर्करा खाद्य ही मानव जाति का प्रधान भोजन है। प्रतिदिन हमें कम से कम छः छटाक शर्करा खाद्य ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु अत्यधिक मात्रा में अथवा बार बार कभी भी शर्करा खाद्य खाना उचित नहीं उससे मधुमेह आदि विभिन्न रोग उपस्थित हो सकते हैं। अत्यधिक मीठी वस्तु यथासंभव कम खाना चाहिये। चीनी में शर्करा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चीनी के बदले में गुड़, एवं यदि संभव हो तो यथेष्ट रूप से खजूर मधु, किशमिश और अच्छे पके हुए केले खाने चाहिए।

चर्बी जातीय खाद्य कहने से घी मक्खन, तेल, चर्बी, नारियल, बादाम, पनीर (cheese) मलाई और अंडे का पीला अंश समझे जाते हैं। चर्बी जातीय खाद्य के द्वारा शरीर में शर्करा और प्रोटीन खाद्यों से दुगुनी से भी अधिक गर्मी और शक्ति उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त कुछ विटामिन केवल चर्बी जातीय पदार्थों में ही घुलते हैं। इसीलिए प्रतिदिन कुछ चर्बी जातीय पदार्थ ग्रहण करना चाहिये। चर्बी जातीय खाद्यों में मक्खन ही सर्वश्रेष्ठ है। यदि कोष्ठबद्धता न हो तो विशुद्ध घी भी यथेष्ट रूप से ग्रहण किया जा सकता है। तेल का प्रधान दोष यही है कि किसी भी उद्भिज तेल में विटामिन नहीं रहता। किन्तु विभिन्न प्रकार से तेल खाकर उसके साथ टमाटर पालक, धनियाँ की पत्ती आदि विटामिन युक्त खाद्य ग्रहण करने से किसी भी कीमती चर्बी जातीय भोजन के समान लाभ होता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 142, Washington, 1923)। किन्तु चर्बी जाति के खाद्य को खाने के लिए यकृत का ठीक रहना आवश्यक है। यकृत ठीक न रहने की हालत में यदि यथेष्ट चर्बी जातीय पदार्थ खाये जावें तो उनसे फायदा तो होगा ही नहीं उल्टे हानि ही अधिक होगी। यदि यकृत खराब हो तो आलू और मीठे फल आदि निर्दोष शर्करा प्रधान खाद्य यथेष्ट मात्रा में खाकर चर्बी जातीय भोजन का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे शरीर में कैलशियम, फासफोरस, लोहा और आयोडीन आदि तरह तरह के लवण हैं। रासायनिक विज्ञान की भाषा में इन्हें खनिज लवण (mineral salts) कहते हैं। हमारे शरीर में खनिज लवण का वजन शरीर के वजन का चतुर्थांश है। शरीर में नये रक्त के निर्माण और नये नये तन्तुओं के गठन तथा हृदय और स्नायुओं आदि के परिचालन में इस खनिज लवण का होना नितान्त आवश्यक है यह हमारे शरीर के लिए इतना आवश्यक है कि यदि केवल उसे छोड़कर अन्य सभी कुछ खाया जाये तो तीस दिन से अधिक जीवन रक्षा नहीं हो

सकती (William Edward Fitch, M.D.—Diatotherapy, Vol. I, p. 255) अथवा बिना खाये आदमी जितने दिनों में उपवास से मरेगा उससे कहीं जल्दी उसकी मृत्यु हो जायेगी, यदि उसे बिलकुल खनिज लवण रहित भोजन दिया जाये (R. N. Chopra, M.D., M.R.C.P.—A Handbook of Tropical Therapeutics, p. 154, Calcutta, 1936)। कुछ कुत्तों को इस खनिज लवण से रहित भोजन खिलाकर देखा गया है कि छब्बीस से लेकर छत्तीस दिन के भीतर वे मर गये (Julius Friedenwald, M.D.—Diet in Health and Disease, p. 160, Philadelphia, 1926)। साधारणतया दूध; दूध से



खीरा

बने हुए पदार्थ, बादाम, अंजीर (fig), अखरोट, किशमिश, गीमा का साग, पोई का साग, पालक, विभिन्न प्रकार के सेम जाति के बीज, पपीता, फूलगोमी, भिंडी, करैला बैगन, कुम्हड़ा, तरोई, आलू, अंडे का पीला भाग और बकरे तथा मछली के यकृत से सभी आवश्यक खनिज लवण पाये जा सकते हैं। खाद्य-पदार्थों के चुनाव में हमेशा इन चीजों

पर ध्यान रखना चाहिये।

किंतु केवल प्रोटीन, शर्करा और लवण जाति के पदार्थों से ही जीवन नहीं चल सकता। इनके साथ विटामिन रहने पर ही ये शरीर के काम आते हैं, अन्यथा नहीं। खाद्य-पदार्थों में विटामिन कुछ अंशों में इंजिन में तेल के समान हैं। लाख रुपया खर्च करके हम इञ्जिन खरीद सकते हैं, किंतु उसमें यदि तेल न दिया जाये तो वह चल नहीं सकता खाद्य-पदार्थों में विटामिन ठीक वैसे ही हैं। हो सकता है कि विटामिन की मात्रा बहुत कम हो पर वे भोजन के प्राण हैं इसी कारण हिन्दी में विटामिन को खाद्यप्राण कहते हैं। बिना विटामिन के कोई भी भोजन निष्प्राण है।

बारी बारी से बहुत से चूहों को विटामिन रहित मांस आदि सभी प्रकार का भोजन खिलाकर देखा गया है कि खूब अच्छी तरह खाना खाकर भी क्रमशः वे सूखते गये और कुछ दिनों बाद मरते गये।

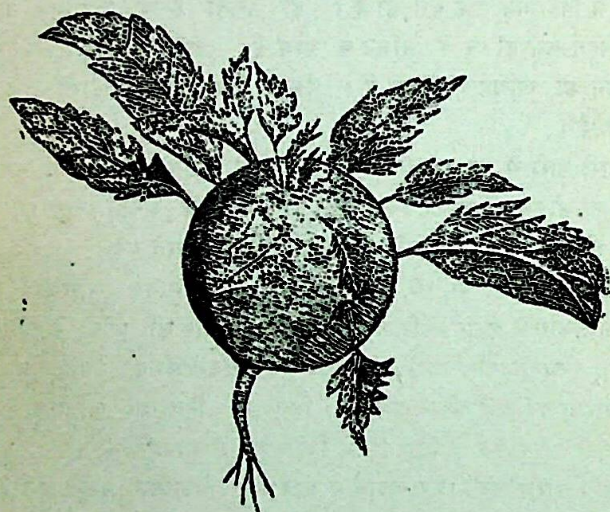
विटामिन के ए, बी, सी, डी ई, के, पी आदि नाना भाग हैं। ये विभिन्न प्रकार से शरीर के लिए उपयोगी हैं। शरीर की पुष्टि हड्डियों के निर्माण, बच्चों के दाँत गठन, भूख की वृद्धि, पाकस्थली को सबल रखना तथा नीरोग एवं दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिए ये नितान्त आवश्यक हैं देहयन्त्र के परिचालन के लिए भी ये विशेष रूप से आवश्यक हैं।

इसी कारण जब खाद्य-पदार्थ में आवश्यक विटामिन नहीं होते हैं। तब शरीर में एक प्रकार की विश्रृंङ्खलता आ जाती है, शरीर में तरह तरह के दूषित पदार्थ इकठ्ठे होने लगते हैं और इसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के रोग आ उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार आवश्यक विटामिन की कमी के कारण अ ंख की बीमारियाँ, श्वासनली और फेंफड़ें की पीड़ा, बेरी-बेरी, विकारयुक्त क्षत (scurvy), रिकेट (ricket), स्त्रियों का बांझपन, मंदाग्नि अजीर्ण, मूत्रयंत्र, आदि का पीड़ा, रतौंधी खून की कमी. मोतियाबिन्द आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

कई बार यह देखा गया है कि, जिन विटामिनों के अभाव में जो रोग होते हैं, उन्हें खिलाने से उस रोग से मुक्ति मिल जाती है और जिन लोगों को ये रोग होते हैं वे तुरंत ही इन रोगों से छुटकारा पाते हैं।

बेरो बेरी को पूर्वी देशों का रोग कहते हैं। जिन देशों के लोग मशीन से साफ किया हुआ चावल खाते हैं उन्हीं को यह रोग होता है।



ओल गोभी

पहले जापान में बेरी-बेरी खूब होता था। किंतु १९१८ साल में जब चावल का लाल पर्दा (rice polishings) सब कोई खाने लगा तब यह रोग सम्पूर्ण रूप से गायब हो गया (Leslie J. Harris, D.Sc.—Vitamins in Theory and Practice, pp. 46—51, Cambridge 1955)। क्योंकि चावल के ऊपरवाले पर्दे में बी-विटामिन रहते हैं। ऐसे सूखा रोग (rickets) में

डी विटामिन, स्कार्भि में सी-विटामिन एवं रातकाना रोग (night-blindness) में ए विटामिन बहुत लाभदायक साबित हुआ है ।

विभिन्न प्रकार के विटामिन शरीर में गृहीत हो सके इसके लिये प्रत्येक को ही यथेष्ट परिमाण में दूध सोयाबीन, टमाटर, संतरे, आँवला, अच्छे पके हुए केले, खजूर, मछली व जानवरों की कलेजी, मूंग व मसूर आदि दाल, धनियाँ की पत्ती, साग पालक मसूल में कूटे गये चावल का माड़ सहित मान और चोकर समेत आटा ग्रहण करना चाहिये ।

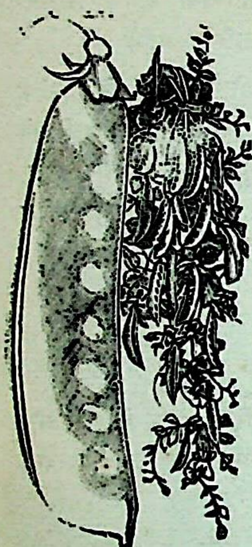
[२]

इन समस्त नितान्त अनिवार्य खाद्यों के अतिरिक्त भोजन के अंदर और भी कुछ वस्तुओं का रहना आवश्यक है । इनके अंदर सीठी जातीय वस्तु (roughage) एक प्रमुख वस्तु है ।

हम प्रोटीन शर्करा और चर्बी जातीय खाद्य आदि जो वस्तुओं का आहार करते हैं उनमें से ९२ से ९७ भाग ही शरीर में शोषित होते हैं । इसलिए हमारे भोजन के अंदर कुछ ऐसी वस्तुओं का होना आवश्यक है, जो हजम नहीं होते । इनके न होने से आँत के अंदर यथेष्ठ मल का निर्माण होना कठिन होता है । सीठी जाति के दार्थ आँत के अन्दर जाकर मल तैयार करने तथा मल के संचालन में विशेष रूप से सहायता करते हैं । इस लिए सीठी जातीय पदार्थों का कोई खाद्य-मूल्य न होने पर भी स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ये अत्यन्त अनिवार्य है ।

सीठी जाति के पदार्थ हम पाते हैं फल और साग-सब्जी में से । फल और साग सब्जी के रस को लेकर सीठी को फेंक देने से इस आवश्यकीय वस्तु से हम वंचित होते है । सेव, अंगूर और अलरूद आदि फलों के छिलके तथा आलू, कोंहरा, बैगन और परवल आदि के छिलके सहज ही चबाकर खाये जा सकते हैं । चोकर समेत आटे की रोटी खाने से

भी यथेष्ट सीठी जातीय पदार्थ ग्रहण किया जाता है। इन सभी खाद्यों को यथासंभव चबा लेने के बाद जब जीभ अनुमति देती है तब निगल जाना चाहिये। परन्तु अत्यधिक कर्कश खाद्य का सदैव परित्याग करना उचित है।



मटर की फली (छमी)

प्रतिदिन कुछ परिमाण में कच्चे खाद्य ग्रहण करना भी अत्यन्त आवश्यक है। कुछ विटामिन आग की गर्मी से नष्ट हो जाते हैं।

कच्चे ही खाने से सब विटामिन अटूट रहते हैं। इसके अलावा प्रकृति ने प्रत्येक वस्तु जिन उपादानों को जिस अनुपात और जिस भाव से मिलाकर रखा है, कच्चा खाकर बिलकुल अविकृत भाव से हम प्रकृति के हाथ से उसे ग्रहण करते हैं। इसी कारण आजकल सारे संसार में कची शाक-सब्जी का व्यंजन (salad) अत्यन्त जनप्रिय हो गया है। टमाटर, चुकन्दर, गाजर, खीरा, पालक, धनियाँ की पत्ती, पुदीना, अंकुरित मूंग, मूली, लेटूस का शाक और प्याज आदि के छोटे-छोटे टुकड़े कर और उसमें कुछ किशमिश, खजूर के टुकड़े, शहद और तेल मिलाकर सुन्दर सलाद बनाया जा सकता है। धारोष्ण दुग्ध भी यदि गरम ही पिया जाये, तो सबसे अधिक लाभ होता है (E. W. H. Cruickshank, M.D., D.Sc., M.R.C.P.—Food and Physical Fitness, p. 54)। आर्य ऋषि लोग इसे धारोष्ण दुग्ध कहा करते थे। यदि दूध ठंडा हो जाये तो एक गरम पानी के बर्तन में गिलास को रखकर गरम कर लिया जा सकता है। परंतु यदि कच्चा दूध पीना हो तो स्वस्थ गाय से यथासंभव स्वच्छता के

साथ दूध का संग्रह करना चाहिये।

इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि खाद्य का प्रतिशत ५२ अंश क्षारधर्मी (alkaline ash residue) होना चाहिये (Julius Friedenwald, M.D.—Diet in Health and Disease, P. 75)। रक्त की इस क्षार सम्पत्ति (alkaline reserve) के बढ़ाने का सबसे सुगम उपाय काफी मात्रा में क्षारधर्मी खाद्य ग्रहण करना ही हैं। यह याद रखना आवश्यक है कि विभिन्न ताजे एवं सूखे फल, शाक-सब्जी, दाल और सेम जाति के बीज एवं दूध मुख्य क्षारधर्मी खाद्य हैं। इनके अलावा भात, रोटी, मांस, मछली, अंडे आदि सभी अम्लधर्मी (acid ash residue) खाद्य हैं। किंतु यदि कोशिश की जाये तो रोज के भोजन को क्षारप्रधान बनाना मुश्किल नहीं है। भात रोटी की मात्रा कम करके उसके बदले में काफी आलू खाना ही खाद्य को क्षारधर्मी बनाने का एक सहज उपाय है। आलू के साथ काफी मात्रा में शाक-सब्जी लिए जायें तो खाद्य आसानी से क्षार-बहुल हो सकता है। इसके अलावा सुबह-शाम जलपान के समय केवल फल ग्रहण करना चाहिये। फल ही प्रकृति की सबसे बड़ी दान है। इसमें भी खट्टे जाति के फलों (citrus fruits) की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। नीबू, कमला नीबू और बिजौरा नीबू आदि इस श्रेणी में आते हैं। शरीर के अम्ल-विष का नाश करने और क्षार-सम्पद को बढ़ाने में इनसे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं। खट्टी जाति के फल मुँह में अम्ल होते हुए भी परिपाक के बाद क्षार जातीय पदार्थ के रूप में बदल जाते हैं (Nicholls, M,D.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 49, London, 1951) और खून के अम्ल-विष को नष्ठ कर देते हैं। फल खाते समय सलाद भी काफी मात्रा में ग्रहण किया जा सकता है।

[३]

किंतु खाद्य और पथ्य उसी अवस्था में लाभदायक होते हैं जब शरीर के लिये ग्रहणयोग्य बनाकर उन्हें लिया जाय। यथेष्ट रूप से चबाकर

खाद्य ग्रहण करने से ही वह हमारे शरीर के काम में आ सकता है।

भगवान ने हमारे मुँह में दांत इसलिए बनाये हैं कि हम चबाकर भोजन करें। बिना चबाये भोजन करने से किसी भी प्रकार का भोजन हमारे काम में नहीं आता। हमारी परिपाक क्रिया इसी चबाने पर ही निर्भर करती है।

अपने दाँतों को हम बाहरी यंत्र कह सकते हैं। तो भी शरीर के भीतर की पाकस्थली और यकृत आदि के साथ मशीन की तरह उनका सम्बन्ध है। जिस प्रकार विभिन्न वाद्य-यंत्र अलग-अलग होने पर भी ताल में मिलकर एक स्वर में बजते हैं, हमारे शरीर के विभिन्न यंत्र भी उसी प्रकार परस्पर अलग-अलग होकर भी आपस में एक ताल रखकर जीवन का गान गाते हैं।

किसी खाद्य-पदार्थ को चबाते समय मुँह की लार-ग्रन्थियों से काफी मात्रा में लार आकर भोजन के साथ मिल जाती है। मुह में लार के निकलते ही पाकस्थली से एक प्रकार का पाचक रस निकलकर खाये हुए पदार्थ के साथ मिल जाता है। वही बारम्बार यकृत, क्लोम और छोटी अंतरी से रस खींचकर लाता है। इसी कारण हमारे मुंह से ही परिपाक क्रिया आरम्भ होती है।

इन्हीं पाँच प्रकार के पाचक रसों से मिलकर खाद्य-पदार्थ लेई की तरह बन जाता है और ये सभी इस खाद्य-पदार्थ पर एक रासायनिक क्रिया उत्पन्न करते हैं। इसी से यह शरीर द्वारा ग्रहणयोग्य बनता है। इस रासायनिक क्रिया न होनेसे भोजन कितना ही कीमती क्यों न हों वह शरीर के किसी भी काम में नहीं आता।

भोजन के सम्बन्ध में हमेशा यह व्यवस्था करनी चाहिये कि प्रत्येक समय के भोजन का एक निश्चित समय रहे। रोज नियत समय पर खाने से पाचक रस काफी मात्रा में निकलता है। क्योंकि पाकस्थली भी इस सम्बन्ध में एक प्रकार से अभ्यस्त हो जाती है। समय बिताकर भोजन करने से भीतरी यंत्रों से काफी मात्रा में पाचक रस नहीं निकलता

और खाया हुआ पदार्थ अधिक समय तक पेठ में भार स्वरूप बना रहता है। फिर नियमित समय पर भोजन न करने से ठीक समय पर पाखाने का वेग भी नहीं होता। इसी कारण भोजन के समय के बारे में बहुत ही सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि हाथ में काफी काम हो तो भी उसे छोड़कर ठीक समय पर भोजन कर लेना चाहिये।

आमिष, शर्करा तथा चर्बी जातीय पदार्थ प्रतिदिन खाना अत्यन्त आवश्यक होने पर भी लगातार दिन पर दिन एक ही प्रकार का खाद्य नहीं लेना चाहिये। इससे भोजन में अरुचि आती है। दाल व तरकारी प्रतिदिन और सम्भव होने पर प्रति बार बदलनी चाहिये। प्रतिदिन नई-नई चीजें खाने से भोजन में नई-नई इच्छा पैदा होती है। उससे यथेष्ठ पाचक रस निकलता है, इसलिये खाद्य-पदार्थ सहज ही हजम होते हैं। अजीर्ण आदि रोगों में पथ्य का परिवर्तन हवा-बदल के समान ही लाभकारी है (G. N. Ganguly, B.Sc. M, B.—Dyspepsia, 104, Banaras, 1926)।

खाद्य-पदार्थ के साथ यथासंभव कम मसाले का प्रयोग करना चाहिये। मसाले में शरीर के लिए पुष्टिकारक कुछ भी नहीं है। अधिक मसाला डालकर हमलोग भोजन को बहुधा अत्यन्त दुष्पाच्य बना डालते हैं। सब प्रकार के गरम-मसाले शरीर के लिए विशेष हानिकार हैं। मिर्च आदि मसाले पाकस्थली में जलन पैदा करते हैं और अधिक दिनों तक मसाला खाने से यकृत में सूजन हो सकती है। पर भोजन को हर हालत में स्वादिष्ट बनाना ही चाहिये। अतः जो जितने हो कम मसाले के व्यवहार के साथ खाद्य को स्वादिष्ठ कर सके वह पाकशास्त्र का उतना ही बड़ा पारदर्शी है।

कभी भी पेंठ भरकर नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक बार इस प्रकार से भोजन करना चाहिये, जिससे अगले बार के भोजन के समय भूख लेकर खाया जाय। यह बात जाँचकर देखी गई है कि भूख के साथ खाने पर खाया हुआ पदार्थ सहज ही हजम होता है (Henry C. Sherman, Ph.D.—Chemistry of Food and Nutrition, p. 93, New York, 1952)। अधिक भोजन करने से खाया

हुआ पदार्थ पेट में हिल-डुल नहीं सकता और काफी देर तक पाकस्थली में रहने पर वह गरम हो जाता है। अधिक दिनों तक ज्यादा भोजन करने से पाकस्थली की संकुचित तथा प्रसारित होने की क्षमता कम हो जाती है, पाकस्थली से काफी रस नहीं निकलता, मंदाग्नि रोग उत्पन्न हो जाता है और पाकस्थली स्थायी रूप से बढ़ जाती है। जो जितना पचा सके, उसकी अपेक्षा उसे कम खाना चाहिये। किंतु अधिक तो कभी भी नहीं खाना उचित है। जितना हजम किया जा सके उससे एक ग्रास भी अधिक खाने से शरीर के लिए वह विष के समान हो जाता है। अजीर्ण, मधुमेह, ग्रन्थिवात, मूत्रग्रन्थि का रोग और अत्यधिक रक्तचाप आदि रोग अत्यधिक भोजन के कारण हुआ करते हैं। नेपोलियन ने कहा है, More people die from eating too much than from eating too little—कम खाकर जितने लोगों की मृत्यु होती है, उससे अधिक लोग ज्यादा खाकर मरते हैं। इसी कारण हमारे देश में कहा जाता है, "कम भात से दूना बल, अधिक भात से रसातल।"

यूरोप में भी कहा जाता है कि जो हम खाते हैं उसका एक तिहाई हिस्सा हमें बचाता है और दो-तिहाई डाक्टरों को बचा रखता है।

हमारे देश के ऋषि-मुनि दिन भर उपवास करके शाम को कन्दमूल आदि का आहार किया करते थे। उन्होंने ही उपनिषदों की रचना की थी। ग्रीस और रोम जब अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचे थे, उस समय उनके सैनिक दिन-रात में केवल एक बार शाम को भोजन किया करते थे। वे इतने भारी कवच और शस्त्रों का व्यवहार करके युद्ध किया करते थे कि आधुनिक युग के सैनिक उन्हें वहन करने की कल्पना भी नहीं कर सकते (Sir William Howard Hay, M.D.—Health via Food, p. 229.)।

एक बार पेट भर भोजन करने के बाद चार-पाँच घण्टे के पूर्व पाकस्थली खाली नहीं होती। खाली होने के बाद भी पाकस्थली को कुछ समय के लिए विश्राम देना आवश्यक है इसलिए दोपहर के भोजन के

पाँच-छः घण्टे के अन्दर पुनः कुछ नहीं खाना चाहिये। नाश्ता लेने पर भी दो घण्टे के अन्दर नया खाद्य ग्रहण करना उचित नहीं। दिन की अपेक्षा रात में पर्याप्त लघु भोजन करना उचित है।

भोजन की गर्मी के प्रति भी सदा ध्यान रखना आवश्यक है। बहुत ठंडा या गरम खाद्य सर्वदा वर्जनीय है। खाद्य-पदार्थ की तापमात्रा ९८° से १००° F. होने पर उसे आदर्श ताप के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। अत्यधिक गरम खाद्य खाने के फलस्वरूप अनेक बार पाकस्थली की श्लेष्मायुक्त अवस्था (gastric catarrh) और पाकस्थली का घाव उत्पन्न होता है (Julius Friedenwald. M. D.—Diet in Health and Disease, p. 43 Philadelphia, 1929)। इसके अतिरिक्त अत्यधिक दुष्पाच्य पदार्थ, ठंडा और बासी खाद्य, अनियमित समय पर भोजन, अत्यन्त द्रुत भोजन और अवसन्न शरीर में या शोकार्त अवस्था में भोजन का त्याग करना चाहिये।

भोजन के समय सदैव मन प्रसन्न रखना उचित है। एक्स रे की परीक्षा द्वारा देखा गया है कि प्रसन्नचित होकर भोजन करने से खाद्य पदार्थ सरलता के साथ पच जाते हैं और उद्वेग तथा क्रोध परिपाक के लिए प्रबल बाधा उत्पन्न करते हैं (H. C. Menkel M. D.—Eating for Health, p. 70)। खाते समय बिल्ली को चिढ़ाकर देखा गया है कि क्रोधित होते ही उसकी पाकस्थली की संकोचन-क्रिया बन्द हो जाती है (Geoffrey H. Bourne, D. Sc. How Your Body Works, p. 111, London, 1949)।

भोजन के ठीक पूर्व या पश्चात् कठिन शारीरिक या मानसिक परिश्रम करना उचित नहीं। उससे परिपाक क्रिया बेकार हो जाती है (V. H. Mottram, M. A—Human Nutrition P. 193, London 1954)। रोमन सम्राट द्वितीय फ्रेडरिक ने दो व्यक्तियों को पेट भर भोजन कराकर एक को परिश्रम और दूसरे को विश्राम करने दिया। उसके बाद क्रूरता के साथ दोनों की पाकस्थलियाँ काटकर बाहर निकाल लाई गई। तब देखा गया कि जिसने भोजन के बाद परिश्रम किया

था, उसका भोजन पेट के अंदर एक ही स्थिति में बना हुआ है (R. J. S McDowall, M. D. D. Sc.—Handbook of Physiology and Biochemistry, P. 457, London, 1946)।

भोजन के बाद ही विश्राम लेना चाहिये, किंतु सोना उचित नहीं है। भोजन के बाद नींद लेने से परिपाक की क्षमता शिथिल हो जाती है। रात का भोजन सायंकाल के बाद ही समाप्त कर लिया जाय तो बहुत अच्छा हो। फिर सोने के पहले ही भोजन हजम हो जा सकता है।

भोजन के सम्बन्ध में सुश्रुत ने कई महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं इतने वर्षों बाद वैज्ञानिकों की दृष्टि में भी ये बातें सर्वसम्मत हैं। सुश्रुत ने कहा है आसन पर बैठकर और शरीर को समान रखकर भोजन करना उचित है। भूख न लगने पर कभी भी नहीं खाना चाहिये। जब भूख लगे तब नियमित समय पर हल्का, स्निग्ध और ताजा भोजन मात्रानुसार करना चाहिये। कभी भी बहुत जल्दी जल्दी भोजन करना ठीक नहीं या घण्टों बैठकर खाना उचित नहीं। असमय में या नियमित समय बित जाने पर और कम या अधिक मात्रा में भोजन करना ठीक नहीं। मौके बेमौके शरीर भारी रहने पर भोजन करने से नाना प्रकार की बीमारियाँ आक्रमण करती हैं अथवा इससे मृत्यु तक हो सकती है। जूठा, बासी, बेस्वाद ठंडा या फिरसे गरम किया हुआ अन्न या खूब गरम भोजन नहीं खाना चाहिये। "भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमोगतः"—आहार के बाद जब तक भोजनजनित क्लान्ति दूर न हो, तब तक राजा की तरह आसन पर बैठे रहो (सूत्रस्थानम्, ४६।५१—५२७)।

चरक ने भी भोजन के सम्बन्ध में बहुत सी काम की बातें बताई हैं। चरक में लिखा है, "मात्राशी स्यात्"—परिमितभोजी बनो (सूत्रस्थानम् ५।१)। बिना नहाये, बिना कपड़ा निकाले, हाथ, पाँव, मुँह बिना धोये भोजन मत करो। सूखा या बासी अन्न मत खाओ (पुनः ८।१३)।

सुश्रुत और चरक के ये नियम भोजन के सम्बन्ध में पथप्रदर्शक माने जा सकते हैं।

तेरहवाँ अध्याय

वायुस्नान और आरोग्य

[१]

मनुष्य को जितनी बीमारियाँ होती है, जंगल के पशु-पक्षियों को उतनी बीमारी नहीं होती। जंगल के पशु-पक्षिगण जीवन के अन्तिम दिन तक यौवन-क्षमता अक्षुण्ण रखकर चले जाते हैं। जिन कारणों से वे स्वास्थ्य की इस संपदा को प्राप्त करते हैं, मुक्त प्रकृति की गोद में सब समय रहना ही उसका एक प्रधान कारण है।

मनुष्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि Man is the sickest animal in the world—दुनिया में मनुष्य ही सबसे बीमार प्राणी है। यह भी देखा गया है कि सभ्य मनुष्य की अपेक्षा आदिम मनुष्यों के अन्दर पुरानी बीमारियों का प्रादुर्भाव बहुत कम है। सभ्य समाज में मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है, उसका एक प्रधान कारण यही है कि वे प्रधानतः बन्द हवा में रहते हैं।

बन्द हवा में निवास के कारण दो प्रकार से शरीर खराब होता है। प्रथमतः रक्त दूषित होने के कारण होता है और द्वितीयतः शरीर के अन्दर गर्मी बन्द होने के फलस्वरूप श्रान्ति (exhaustion) आने के कारण।

हमारे शरीर के किले में प्रवेश करने के केवल दो ही राजमार्ग है। इसमें से एक है मुँह और दूसरी नाक। बुरे भोजन से जिस प्रकार शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं, दूषित वायु ग्रहण करने से भी उसी प्रकार रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

हम जितने ही बार प्रश्वास वायु ग्रहण करते हैं, उतनी ही बार शरीर का रक्त बाहर की वायु के संस्पर्श में आता है। यदि वायु दूषित हो, तब जिस रास्ते से रक्त आक्सिजेन ग्रहण करता है, वायु का दूषित अंश

भी उसी रास्ते से रक्त के अन्दर संक्रामित होता है।

जिस कमरे में लोग निवास करते हैं, उस कमरे की वायु शरीर से निकले हुए भाप, घर और घर में संचित विभिन्न पदार्थों से निकले हुए गैस, जीवाणु, पानी का भाप और गर्मी से भाराकान्त हो उठती है। घनी बस्तीवाले स्थानों में यक्ष्मा का प्रकोप अधिक होता है, यह सभी मानते हैं।

अनेक अवस्थाओं में गन्दी नाली और पाखाने के दुर्गन्धपूर्ण गैस कमरे के अन्दर प्रवेश कर घर की वायु को ही विषाक्त कर डालते हैं। इस प्रकार दूषित गैस कुछ दिनों तक ग्रहण करने से रक्तदोष के कारण विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

धूल और धूआँ आदि हवा के अन्दर रहने पर भी श्वास-प्रश्वास यंत्र की पर्याप्त हानि होती है।

वर्तमान में निश्वास वायु के अस्वास्थ्यकर प्रभाव के ऊपर उतना महत्व नहीं दिया जाता है। फिर भी किसी-किसी अवस्था में निश्वास वायु अत्यधिक हानि का कारण होती है, इसमें किंचित्मात्र संदेह नहीं।

श्वास के साथ जो यांत्रिक विष निकलता है, वह इतना अधिक विषाक्त होता है कि वह एक ही बार में बहुत-से स्थान तक को विषाक्त कर देता है। फ्रांस के प्रतिष्ठावान् चिकित्सक डा० ब्राउन सिक्वर्ड (Dr. Brown Siquard) ने परीक्षा करके कहा है कि वह विष अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में क्षुद्र-क्षुद्र जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करा देने से प्रायः तुरन्त ही उनकी मृत्यु हो जाती है। वायु ग्रहण करते समय उसमें कार्बन डाई-ऑक्साईड रहता है सैकड़ा ०.०४ भाग। परन्तु जब निश्वास वायु लौट आती है तब उसमें रहती है सैकड़ा ४.४१ भाग (W. M. Frazer, M.D., M.Sc—Text-book of Public Health, p. 68, London, 1953)। इसके अतिरिक्त इसमें जलीय पदार्थ और असंख्य जीवाणु होते हैं।

बहुत लोग जाड़े को रात में कम्बल सिर से ओढ़कर सोते हैं। शरीर

के लिए यह अत्यन्त हानिकारक है। प्रति घण्टे में प्रत्येक व्यक्ति प्रायः आठ गैलन विषाक्त कार्बोनिक एसिड श्वास के साथ बाहर निकाल देता है। कम्बल के नीचे उन विषाक्त एसिडों को रोककर वे पुनः पुनः प्रश्वास के साथ उन्हें ग्रहण करते हैं। इससे रक्त दूषित हुए बिना नहीं रह सकता।

किंतु बन्द कमरे में वास करने से जो अनिष्ट हुआ करता है, वह प्रधानतः शरीर के अन्दर गर्मी रुक जाने के फलस्वरूप होता है (Harry S. Mustard, M.D.—An Introduction to Public Health, p. 213, New York, 1950)।

हमारे देह में सर्वदा ही गर्मी उत्पन्न हो रही है। शरीर की गर्मी को समान रखने के लिए इस गर्मी को सदा शरीर से बाहर निकाल देना चाहिये। नहीं तो स्वास्थ्य नष्ट होता है और विभिन्न रोग-लक्षण उत्पन्न हुआ करते हैं। ठण्डी हवा यदि देह को स्पर्श करे तो देह की गर्मी से वह गरम होती है और शरीर की गर्मी लेकर चली जाती है। वायु जितनी शीतल और शुष्क होती है तथा उसमें जलीय अंश जितनी कम होता है, यह उद्देश्य उतना अधिक पूरा होता है। इसलिए आधुनिक वायु-चलाचल विज्ञान में अवसे अधिक जोर दिया जाता है वायु की शीतलता, गति और शुष्क अवस्था के ऊपर।

यदि बाहर की हवा शीतल, शुष्क और सचल न हो तो केवल विशुद्ध हवा ग्रहण से कोई लाभ नहीं होता। कुछ लोगों को एक बन्द कोठरी के भीतर रखकर देखा गया है कि बेचैनी शुरू होने के बाद यदि पंखा चला दिया जाय, तो उनकी बेचैनी शीघ्र दूर हो जाती है। फिर उनके शरीरों को शीतल, शुष्क और चलती हुई हवा में रखकर बन्द वायु ग्रहण कर देने पर भी दीर्घ समय तक वे कोई असुविधा का अनुभव नहीं करते (W. M. Frazer, M.D., M.Sc.—Text-book of Public Health p. 60, Lodon, 1953)।

इसलिए जिस स्थान की हवा ठण्डी, सूखी, चलती हुई तथा विशुद्ध

होती है, वही यथार्थ में स्वास्थ्यकर है। घर के अन्दर भी हवा ऐसी रहे, इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

हवा गरम होने पर शरीर की गर्मी शरीर में से बाहर नहीं निकल पाती। यदि इसके ऊपर वह वायु जलयुक्त हो और सचल न हो तो शरीर की गर्मी का बाहर निकलना असंभव हो जाता है। शरीर के अन्दर गर्मी इस प्रकार बन्द होने पर शरीर गरम हो उठता है, हृदय की गति बढ़ जाती है, शरीर में श्रान्ति (exhaustion) आती है. कभी-कभी मनुष्य बेहोश हो जाता है और किसी-किसी समय मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

बहुत दिनों तक बन्द हवायुक्त कमरे में रहने पर स्वास्थ्य एकदम टूट जाती है। इस अवस्था में शरीर के अन्दर रासायनिक परिवर्तन (metabolism) धीमा पड़ जाता है, हाजमा शक्ति नष्ट होती है, भूख कम हो जाती है, प्रायः ही सिरदर्द का उपद्रव होता है, शरीर विवर्ण हो जाता है. अवसाद. क्लान्ति तथा उद्यमहीनता आदि लक्षण प्रकट होते हैं और शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है। Practically all diseases are aggravated by lack of sufficient air—वास्तव में यथेष्ट नई हवा की कमी से सारे रोग बढ़ते हैं (Ibid., p. 70)।

दूसरी ओर शीतल, शुष्क व चलन्त वायु के स्पर्श से चमड़े के स्नायुओं को एक नई उद्दीपना प्राप्त होती है। स्नायुओं के द्वारा वह उद्दीपना शरीर के भीतर प्रविष्ट होने के कारण अन्दर सभी यन्त्र उत्तेजित हो उठते हैं। इसके फलस्वरूप शरीर का निर्माण द्रुत होता है, स्नायु स्वस्थ और सबल होते हैं और अच्छी नींद होती है (Francis Marion Potenger, M.D.—Tuberculosis in the Child and the Adult, pp. 293-4)। स्नायु ही शरीर के प्रधान संचालक हैं। नई हवा के स्पर्श से शरीर के स्नायु जब शांत तथा उद्दीपित होते हैं, तब देह के समस्त यन्त्रों के कार्य ही अच्छी प्रकार चलते हैं।

ताजी हवा जो उत्तेजनात्मक प्रभाव डालती है, उसके फलस्वरूप रक्त-चलाचल तथा देह में रासायनिक परिवर्तन (metabolism) यथेष्ट रूप से बढ़ते हैं (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 1987, London, 1952)।

इधर युद्ध जहाजों और बैरकों आदि में लोगों की अधिकता कम करके तथा वायु-चलाचल की अच्छी व्यवस्था करते हुए यक्ष्मा और मैनिनजायटिस तथा अन्यान्य संक्रामक व्याधियों की संख्या बहुत कम कर दी गई है।

यह देखा गया है कि उत्तरी ध्रुव के अभियात्रियों, समुद्री प्रकाश गृहों में रहनेवालों अथवा दीर्घ समुद्र-यात्रा में जो नाविक का कार्य करते हैं, उन्हें कभी सर्दी नहीं लगती अथवा इन्फ्लूयेंजा नहीं होता (W.M. Frazer, M.D., M.Sc.—Text-book of Public Health, p. 69, London, 1953)।

हवा के इस स्वास्थ्यकर प्रभाव को चिकित्सा के कार्य में लगाया जा सकता है। यथासम्भव खुले शरीर पर मुक्त वायु का स्पर्श लेने से यह लाभ प्राप्त होता है। इसे वायुस्नान (air bath) कहते हैं।

वायुस्नान का प्रधान और प्रथम लाभ यही है कि इससे भूख और हाजमा शक्ति बढ़ती है। जब हम खुली हवा से दूर बन्द कमरे में निवास करते हैं, तब हमारी भूख बिना तेल की बत्ती के समान मन्द हो जाती है।

इसके विपरीत जब हम गाँव की खुली हवा में घूम आते हैं या बगीचे आदि में जाकर टहलते हैं तो हमारी जठराग्नि धूँ धूँ कर अग्निकुण्ड की तरह प्रज्वलित हो उठती है। इसलिए भूख बढ़ाने का एक प्रधान उपाय है खुली हवा में घूमना।

वायुस्नान के फलस्वरूप स्नायु शांत हो जाने पर विचारशक्ति भी बढ़ जाती है। कई ऐसे लोग हैं जो अपनी जटिल समस्याओं के हल के लिए निर्जन स्थान में भ्रमण करते हैं। उससे अपने आप ही समाधान निकल

आता है। अमेरिका में एक साहित्यिक थे। उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। वे जंगल में घूमते-घूमते अपनी कहानियों के छोटे से छोटे भाग पर विचार कर लिया करते थे। उसके बाद अपने पुस्तकालय में लौट आकर बड़ी जल्दी अपने ग्रन्थों की रचना कर डालते थे (Bernarr Macfadden—Home Health Library, Vol. I, p. 453)।

यह देखा गया है कि वायुस्नान लेने से गलग्रन्थि (thyroid) और एड्रिनल (adrinal) ग्रन्थि का स्राव बढ़ जाता है (Doghles Hay Scot, M. B, Ch. B.—The New People's Physician, Vol. IV, p, 1354)। उसके फलस्वरूप शरीर के विभिन्न यंत्र उद्दीपित होते हैं, बुढ़ापा दूर हट जाता है, एवं शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है।

पहले ऐसा समझा जाता था कि खुली हवा में रहने से अधिक ऑक्सिजेन और घर के अंदर रहने से ज्यादा कार्वन डाई-ऑक्साईड शरीर में ग्रहीत होता हैं। किंतु वर्तमान में यह निश्चित रूप से प्रमाणित हुआ है कि साधारण अवस्था में घर के अदर ऑक्सिजेन कभी कम नहीं होता और कार्वन डाई-ऑक्साईड की मात्रा भी बढ़ नहीं पाती। वास्तव में वायुस्नान से जो लाभ होता है, वह फेंफड़े की सहायता से ऑक्सिजेन ग्रहण करने के लिए उतना नहीं जितना कि चमड़े के ऊपर हवा के प्रभाव से हुआ करता है (Fredrick Tice M. D.—Practice of Medicine, Vol. VI, p. 494)।

[२]

वायुस्नान लेने का नियम यही है कि यथासंभव नग्न देह पर यह लिया जावे। एक हल्का गमछा पहन कर भी यह लिया जा सकता है।

बाहर की वायु जब गतियुक्त, शुष्क और शरीर की अपेक्षा शीतल रही है, केवल तभी वायुस्नान लेना चाहिये।

किंतु यह स्नान लेते समय शरीर हमेशा गरम रहे एव शरीर में रक्त का आवागमन ठीक रहे, इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। यदि ऐसे समय ठंड लगे अथवा शरीर ठंडा हो तो बिना किसी बिलम्ब के हाथ से जल्दी-जल्दी शरीर को रगड़ना आवश्यक है। इस प्रकार रगड़ने से अत्यन्त ठण्डी हवा भी ठण्डी नहीं लगेगी या ठण्डी हवा से शरीर का कुछ भी अनिष्ट नहीं होता (S. P. Muller—My Sun-bathing and Fresh Air System, p. 57)। इसे चर्म घर्षण व्यायाम (skin rubbing exercise) कहते हैं। वायुस्नान के साथ चर्म घर्षण व्यायाम स्वास्थ्यरक्षा का एक श्रेष्ठ उपाय है।

साधारणतया प्रतिदिन आधे घण्टे तक वायुस्नान करना काफी है। किंतु असलियत तो यह है कि इसका कोई निश्चित समय नहीं है जितनी देर तक खुली हवा में रहा जा सके उतना ही अच्छा है। गर्मी-प्रधान देशों में रात-दिन सारे समय शरीर का ऊपरी भाग नंगे रखकर आंशिक रूप में वायुस्नान लिया जा सकता है। जहाँ हवा न चल रही हो वहाँ कुछ अंशों में पखे से भी वही काम होता है।

खुले बदन रहना हमेशा सम्भव न होने पर पतला कुरता आदि पहनकर काफी समय तक खुली हवा में रहा जा सकता है। उससे भी काफी लाभ होता है। इच्छा होने पर घर के बरामदे में लिखने-पढ़ने का काम या विश्राम कर सकते हैं। रात को भी खुले बरामदे में सोया जा सकता है। गर्मी के दिनों में खुले आकाश के नीचे सोने से कोई नुकसान नहीं होता। पश्चिम के लोग ऐसा ही करते हैं। पहले पहल खुली हवा में सोने से सर्दी-सी अनुभव हो सकती है किंतु धीरे-धीरे बाहर सोने का अभ्यास हो जाने पर सर्दी लगना कठिन हो जावेगा। बहुत पुरानी और असाध्य सर्दी केवल बाहर सोने से ही ठीक हो सकती है। किंतु सब लोगों को बाहर या बरामदे में सोने की सुविधा नहीं होती। जिन्हें यह सुविधा न हो, उन्हें घर की खिड़कियों को खोलकर सोना चाहिये।

घर में यथासम्भव कम कपड़ों का उपयोग करना उचित है। हो सकता

है हर समय कमीज या कुरता छोड़कर रहना सम्भव न हो। स्त्रियाँ नंगे बदन नहीं रह सकतीं। किंतु घर में रहते वक्त बहुत ज्यादा बस्त्रों में लिपटी रहने की कोई आवश्यकता नहीं। पहनने के कपड़े काफी पतले ओर छिद्रयुक्त होने आवश्यक हैं ताकि उनसे हवा का आवागमन हो सके। घर में रहने को हालत में इस प्रकार के कपड़े पहनने का अभ्यास करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। रात में सोते समय पतली लूँगी आदि पहनकर सोना चाहिये।

वायुस्नान जिस प्रकार स्वास्थ्यरक्षा का एक प्रधान उपाय है उसी प्रकार रोग की हालत में भी यह फलप्रद है

रोगी को खुले बरामदे आदि में रखने की व्यवस्था करने से अधिकांश रूप में रोगी की हालत तेजी से सुधरती है। बहुधा रोगी को बाहर लाने के कुछ क्षणों बाद ही श्वास-प्रश्वास गम्भीर हो जाता है, चेहरे की सुस्ती जाती रहती है, अस्थिरता दूर हो जाती है एवं रोगी प्रायः सो जाता है। वास्तव में रोग जितना अधिक, हो, उतनी ही अधिक रोगी को खुली हवा की आवश्यकता होती है। किंतु अस्वस्थ शरीर पर वायुस्नान का प्रयोग विशेष सावधानी के साथ करना चाहिये।

नये रोगों में साधारणतया रोगी को गले तक ढककर खुले बरामदे में रखना आवश्यक है। गर्मी के दिनों में रोगी जितना अपना शरीर ढकना चाहे, केवल उतना ही उसे ढका जा सकता है। कई लोग ठण्ड लग जाने के भय से रोगी को हमेशा ढके रखते हैं। रोगी जब गर्मी से छटपटावे तब उसे ढके रहने से उसको काफी नुकसान होता है। इससे अंदर की गर्मी बाहर आने नहीं पाती है और बहुधा यह गर्मी रोगी के शरीर में ही रह जाने पर रोगी की मृत्यु को बुला लाती है

जब रोगी शरीर पर किसी प्रकार का आवरण नहीं चाहता तब उसके शरीर से आवरण हटा देना ही उचित है।

अन्दरूनी गर्मी के कारण जब रोगी इस प्रकार बेचैन हो उठे तब उसे बाहर की ठण्डी खुली हवा में लाने से काफी लाभ होता है।

जितने समय तक रोगी को अच्छा मालूम हो, उतने समय ही उसे बाहर रखा जा सकता है। रोगी यदि अपने को अस्वस्थ अनुभव न करे तो उसे सारी रात और दिन बाहर रखना उचित है। किंतु जिस दिन बादल हो रहे हों या बाहर बहुत अधिक सर्दी हो तो रोगी को घर में ही इस प्रकार रखना चाहिये कि घर में काफी हवा आ सके या रोगी के शरीर पर हवा का झोंका न लगे। अत्यन्त दुर्बल रोगी को यदि बहुत अधिक समय तक या अत्यन्त ठण्डी हवा में रखा जावे तो शरीर अत्यधिक ठण्डा होने के फलस्वरूप रोगी को काफी नुकसान पहुंच सकता है। वायुस्नान की प्रधान रीति यह है कि इसके लेने के बाद सारा सरीर उद्दीपित हो उठे। यदि उसके बदले शरीर ठण्डा हो जावे एवं अस्वस्थता के साथ-साथ ठण्ड लगे तो लाभ के बदले हानि ही होती है। खुली हवा में रहना एक प्रकार का हल्का स्नान है। बहुत अधिक ठण्ड लगने के पहले ही जिस प्रकार स्नान समाप्त करना आवश्यक है वायुस्नान में भी उसी प्रकार करना चाहिये। स्नान के बाद शरीर फिर से गरम कर लेने का नियम है। वायुस्नान के बाद भी शरीर की गर्मी की सदैव जाँच कर लेनी चाहिये और शरीर जरा भी ठण्डा होने पर रगड़कर फिर गरम कर लेना उचित है।

वायुस्नान की उपयोगिता काफी बढ़ सकती है यदि उस समय श्वास-प्रश्वास का व्यायाम भी उसके साथ-साथ किया जावे। खुली हवा में कुछ दिनों श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने पर सारे शरीर में आश्चर्यजनक स्फुर्ति आ जाती है और शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता काफी बढ़ जाती है। वायुस्नान के समय ऊँचे स्वर से गाना गाने पर भी समान लाभ होता है (Dr. M. Phaundler, University, of Munich The Diseases of Children, Vol. I, p. 124)।

वायु से सबसे अधिक लाभ तो तब होता है, जब बीच-बीच में हवा बदली जावे। यहाँ तक की रोग की हालत में एक घर से दूसरे घर जाने पर भी रोगी काफी स्वस्थ अनुभव करता है। बहुधा केवल वायु परिवर्तन के कारण ही शरीर का क्षय तथा गठन करने का काम (metabolism),

बढ़ जाता है एवं कई रोग ठीक हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर के साथ दीर्घ जीवन पाने का एक प्रधान उपाय यह है कि प्रति वर्ष कम से कम एक मास किसी स्वास्थ्यकर स्थान पर निवास करे।

पुराने रोगों में धीरे-धीरे वायुस्नान का आदी हो जाना आवश्यक है। पहले-पहल थोड़ी देर के लिए खुली हवा में रहकर धीरे-धीरे वायुस्नान बढ़ाना चाहिये। अंत में यह स्नान लेते-लेते चमड़े की हालत इतनी सुधर जाती है कि ज्यादा ठण्ड लगाने पर भी कोई नुकसान नहीं होता।

[३]

वर्तमान समय में पश्चिमी देशों के विभिन्न स्थानों में खुली हवा में छात्र-छात्राओं को पढ़ाने की व्यवस्था हुई है। इन्हें मुक्त वायु विद्यालय (open air schools) कहा जाता है। मानसिक रोगों के लिए भी विभिन्न स्थानों में रोगियों को खुली हवा में रखकर चिकित्सा (open air treatment) करने की व्यवस्था हुई है। विभिन्न स्थानों में रात्रिकालीन शिविर (night camps) विशेष लोकप्रिय हो रहे हैं। इन संस्थाओं में जो आश्चर्यजनक सफलता मिली है, विशेष रूप से खुली हवा में उद्दीपक गुणों के कारण ही ऐसा हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आजकल यूरोप के कई स्थानों में फेंफड़े सम्बन्धी विभिन्न रोगियों को खुली हवा में रखा दिया जाता है। पहले न्यूमोनिया के रोगियों को हर तरह से खुली हवा से बचाकर रखा जाता था। अब इस प्रकार के रोगी को कई स्थानों में शीत, ग्रीष्म आदि सब ऋतुओं में खुली जगह में रखने की व्यवस्था है। इन्फ्लूएंजा बुखार में भी ऐसा ही किया जाता है। इससे रोग सहज में ही दूर हो जाता है।

यक्ष्मा रोग में खुली हवा से अत्यन्त लाभ होता है। आजकल पृथ्वी के सभी स्थानों के यक्ष्मा अस्पतालों में रोगियों को यथासंभव खुली हवा में

रखने की व्यवस्था की जाती है। इसके अलावा इङ्गलैण्ड के युवकों को जब यक्ष्मा रोग होता है तब रोग के प्रथम लक्षण प्रकट होते ही वे खेतों में काम करने चले जाते हैं। इससे वे अपने जीवन में श्रम के साथ खुली हवा का सेवन करते हैं और कई वर्षों तक कृषिकार्य करने से वे रोगमुक्त हो जाते हैं।

सभी प्रकार के फेफड़ों से रोगों में शीतल एवं शुद्ध हवा विशेष रूप से लाभदायक है। खाँसी उठते ही यदि कमीज छोड़कर खुली हवा में घूमा जावे तो छाती ठंडी होने पर खाँसी कम हो जाती है। दमा में जब दम बन्द हो जावे, तब खुली हवा में टहलने से रोगी काफी स्वस्थ हो जाता है। कुकुर खाँसी (whooping cough) की प्रारम्भिक अवस्था में जितनी ही देर तक खुली हवा में रहा जावे उतना ही खाँसी का जोर कम हो जाता है। किंतु हर हालत में हवा ठंडी व शुष्क होनी आवश्यक है। गरम हवा फेफड़ों को कमजोर बनाती है एवं यक्ष्मा रोग के आक्रमण के अनुकूल अवस्था उत्पन्न करती है।

जो स्नायविक रोग से पीड़ित हों उनके लिए वायुस्नान के समान हितकर और कुछ नहीं है। स्नायविक दुर्बलता (neurasthenia) आदि रोगों में काफी समय तक वायुस्नान से आश्चर्यजनक फल देता है (Macfadden's Encyclopaedia of Physical Culture. p. 1418)। अनिद्रा रोग के लिए भी वायुस्नान रामबाण है।

इस प्रकार सब रोगों में वायुस्नान से काफी लाभ होता है। मियादी बुखार और हैजा आदि रोग ठीक करने में शुद्ध हवा काफी सहायता करती है (Adolph Just—Return to Nature, p 67)।

डिप्थीरिया रोग में बच्चों को जब खूली हवा में रखना हो तब उन्हें सबसे अधिक लाभ होता है। माता रोग में भी यह समान रूप से गुणकारी है।

इन सब कारणों से भारत में कहावत है, "सौ दवा एक हवा" सौ दवा से जो लाभ होता है, एक हवा से ही वह उपकार होता है।

चौदहवाँ अध्याय

धूपस्नान (Sun-bath)

[१]

ऋग्वेद ने कहा है, सूर्य ही स्थावर जंगम सब के अंदर का वास्तव जीवन है (१।११५।१)।

पृथ्वी तथा विभिन्न ग्रह-उपग्रह में जितने जीव हैं, उन सब के जीवन का मूल सोता ही सूर्य है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रत्येक प्राणी का जीवन ही सूर्य-रश्मि के ऊपर निर्भरशील है।

हैनेल (Charles F. Hannel) ने कहा है, विश्व में जितनी भी शक्तियों का विकास देखा जाता है, वे सभी सूर्य से ही आई हैं। जलप्रवाह और वायु का वेग, जीवजंतुओं की वृद्धि, कोयला तथा लकड़ी की ज्वलन शक्ति आदि सभी पृथ्वी पर सूर्य की शक्ति के विभिन्न रूप मात्र हैं।

सूर्य किरणें जिसके ऊपर पड़ती हैं, उसके ऊपर ही वे एक हितकर प्रभाव डालती हैं। जो शाक-शब्जियाँ प्रकाश के अन्दर उत्पन्न होती हैं, और जिन्हें प्रकाश नहीं मिलता उनका भेद देखते ही पता लग जाता है। प्रकाश के अन्दर उत्पन्न शाक-सब्जी सदैव अन्धकार में उत्पन्न शाक-सब्जी से अधिक लाभकारी होती हैं। यह देखा गया है कि जो फल धूप के अन्दर पकते हैं, पत्तियों से ढके हुए फलों की अपेक्षा उनके अन्दर अधिक 'सी'-विटामिन उत्पन्न होते हैं (E. M. Mrak and George F. Stewart—Advances in Food Research, p. 301, New York, 1948)। पेड़ की हरी पत्तियाँ धूप में से जो शक्ति प्राप्त करती हैं, वही विभिन्न फसलों में संचित होती है। मनुष्य आदि सभी जीवजन्तु इन्हीं फसलों में से शक्ति

ग्रहण करते हैं। यहाँ तक कि मांसभक्षी जानवरगण भी शाकभोजी जानवरों के मांस में से ही शक्ति प्राप्त करते हैं। इसीलिए कहा जाता है food is simply sun-light in cold storage— खाद्य-पदार्थ शीतल आधार में रक्षित सूर्य किरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 29, Washington, 1923)।

जिन गायों को बाहर नहीं जाने दिया जाता और दिनभर घर के अन्दर ही रखकर खिलाया जाता है, उन गायों के दूध में पर्याप्त परिमाण में विटामिन डो नहीं होता। इस विटामिन के अभाव से ही बच्चों की शारीरिक वृद्धि का अभाव होता है और सूखा रोग (ricket) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। गाय के दूध में यथेष्ट विटामिन उत्पन्न करने के लिए गायों को धूप में खुले मैदान के अन्दर छोड़कर घास खिलाना चाहिये।

सूर्य की किरणें शरीर के ऊपर पड़ने से सदैव शरीर का असीम कल्याण होता है। सूर्य-किरणें केवल चर्म पर ही प्रभाव डालती हैं, ऐसी बात नहीं। डा० सोनी (Sonne) ने यह प्रमाणित किया है कि सूर्य की रश्मियाँ (visible rays) चर्म के भीतर से शरीर की गहराई में प्रवेश करती हैं और वहाँ रक्त के द्वारा शोषित होती हैं। उसके फलस्वरूप समस्त जीवकोष और तंतु उद्दीपित हो उठते हैं, शरीर के निर्माण का कार्य (metabolism) ठीक ढंग से चलता है और देह की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है।

नियमित रूप से सूर्य-किरण ग्रहण करने पर रक्त के अन्दर लाल और सफेद कणों की संख्या बढ़ जाती है और रक्त की जीवाणु-ध्वंस की क्षमता बढ़ती है। रक्त के अन्दर जो विष इकट्ठा होता है, सूर्य-किरण-संजीवित रक्त उसका विध्वंस करने में समर्थ होता है।

इससे चमड़े में अधिक रक्त प्रवाहित होता है तथा पुराने रोगों में यकृत व पाकस्थली आदि विभिन्न यंत्रों में साधारणतः जो रक्तबद्धता

(congestion) रहती है, वह आप ही दूर हो जाती है। इसके फलस्वरूप शरीर का प्रत्येक यंत्र ही अच्छे प्रकार कार्य करने में समर्थ हुआ करता है। कुछ दिनों तक दिन-प्रतिदिन चर्म के ऊपर सूर्य की किरणें ली जाने पर रक्त स्थायी रूप से चर्म में आकर स्थित हो जाता है। इसलिए धूपस्नान लेने से शरीर की बेचैनी कम हो जाती है, अनिद्रा दूर होती है, भूख बढ़ती है और साधारण स्वास्थ्य की ही उन्नति होती है।

सूर्य-ताप लेने से शरीर की समस्त स्नायु ही सतेज हो उठती है और उसके फलस्वरूप शरीर का सारा काम ही अच्छे प्रकार चलता रहता है।

यह शरीर के लिए जिस प्रकार लाभकारी है, उसी प्रकार मानसिक शक्ति की वृद्धि के लिए भी सहायक है। यह विशेष रूपसे मन को प्रसन्न करता है, इसके द्वारा मन अधिक सप्रतिभ होता है और मानसिक कार्य-क्षमता बढ़ती है।

खूले चमड़े के ऊपर सूर्य की किरणें लेने से रक्त के अन्दर विटामिन डी उत्पन्न होता है (The British Encyclopdæia of Medical Practice, Vol. 7, p. 113, London, 1951)। सभी जीवजन्तुओं के चमड़े के ऊपर एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ (sterol) रहता है। सूर्य की किरणें चमड़े पर पड़ने से उनके अंदर विटामिन डी उत्पन्न होता है और रक्त उसे ग्रहण कर शरीर के सब अंशों में उसे काम में लगाता है। हमारे बहुत कम ही भोजन में विटामिन डी है। हमारे शरीर के लिए जितना विटामिन डी आवश्यक है, उसका अधिकांश या प्रायः पूरा ही सूर्य की किरणों में से लिया जा सकता है (U. S. A. Department of Agriculture—Food and Life, p. 259, Washington, 1939)।

यह देखा गया है कि धूप ग्रहण करने पर रक्त के अन्दर कैलशियम, फासफोरस तथा लोहे की मात्रा बढ़ती है।

सूर्य की किरणों के अन्दर यथेष्ट जीवाणु-ध्वंस की शक्ति भी है।

एक डाक्टर (Dr. Aufrecht) ने एक बार नाना जातीय

जीवजन्तुओं के भीतर डिप्थीरिया तथा यक्ष्मा के जीवाणू इंजेक्ट कर दिये। उनमें से कुछ को प्रकाश के अंदर और कुछ को अन्धेरे में रखा गया। जिन जानवरों को अन्धेरे में रखा गया था, दो-तीन दिनों के अन्दर ही वे मर गये, और जिन्हें प्रकाश के अन्दर रखा गया था, देखा गया कि उनमें से प्रायः सभी अच्छे हो गये हैं (Otto Juettner, M.D., Ph.D.—Physical Therapeutic Methods, p. 190)।

जीवाणु नष्ट करने की यह क्षमता सूर्य की किरणें अपने अन्दर स्थित अल्ट्रा-वायोलेठ रश्मियों (ultra-violet rays) में से ही प्राप्त होती हैं (W. M. Frazer, M.D., M.Sc.—Text-book of Public Health, p. 404, London, 1953)। आंशिक रूप से सूर्य की किरणें लेने पर भी सम्पूर्ण देह के लिए यह लाभ प्राप्त होता है।

सूर्य की किरणों के अन्दर जो अधिक आवश्यकीय वस्तु है, वह है अल्ट्रा-वायोलेट रश्मि। सूर्य की किरणों में जो सात रंग हैं, उन्हें यदि अलग-अलग कर पर्दे पर डाला जाय, तो उसका पहला रंग लाल पड़ता है और अन्तिम रंग पड़ता है बैगनी। यह सात रश्मियाँ आँखों से दीख पड़ती हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त दो और रश्मियाँ पड़ती हैं, जो आँखों से दीख नहीं पड़तीं। इनमें से एक पड़ती है लाल से भी पहले और दूसरी पड़ती है बैगनी से भी बाद में। Ultra-violet का अर्थ है beyond violet अर्थात् बैगनी रंग की रश्मि के भी बाद की रश्मि। यही विटामिन डी का अकृत्रिम उद्गम स्थल है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि धूल, धूंआ, कोहरा और बादल के रहने से यथेष्ट अल्ट्रा-वायोलेठ रश्मियाँ पृथ्वी पर पहुँच नहीं पातीं। चिकागो के स्वास्थ्य-विभाग ने प्रकट किया है कि शहरों में जितने परिमाण में यह मिलती हैं, उससे दुगुनी गाँवों में मिलती है। यह भी देखा गया है कि समुद्र से जितना ऊपर उठा जाय, सूर्य-किरण के भीतर अल्ट्रा-वायोलेट रश्मि उतनी ही वृद्धि पाती है। इसीलिए पहाड़ के ऊपर इसे

यथेष्ट रूप में ग्रहण किया जा सकता है। नदी या समुद्र के किनारे में सूर्य किरण ग्रहण करने से मैदान से दुगुनी अल्ट्रा-वायोलेट रश्मि मिलती है (Otto Glasser, Ph.D.—Medical Physics, p. 593, Chicago, 1951)। क्योंकि पानी से यह रश्मि प्रतिफलित होती है।

हमारे पहनने के कपड़े बहुत-सी अल्ट्रा-वायोलेट रश्मि रोक देते हैं। काले रंग के कपड़े, ऊनी और रेशमी कपड़ों को भेद कर भी ये रश्मियाँ शरीर में पहुंच नहीं पातीं। इसलिए पहनने के कपड़े यथासंभव छिद्रयुक्त होने चाहिये।

सूर्य की किरणों के समान दुर्गन्ध-नाशकारी भी बहुत कम वस्तु हैं। ऐसा कहा गया है कि सूर्य के अतिरिक्त नदी के जल का इस प्रकार साफ रहने की बात हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सूर्य की किरणें जहाँ पड़ती हैं, उस स्थान का ही दुर्गन्ध नष्ट कर देती हैं। इसीलिए मकान के अन्दर जिस स्थान पर गन्दगी इकट्ठी होने की संभावना अधिक है, वहाँ धूप पहुँच सके, सदैव इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

मकान की इस प्रकार से निर्माण करना चाहिये कि मकान के अन्दर अच्छी प्रकार से धूप पहुँच सके। मकान में पेड़-पौधों को इस पद्धति से सजाना चाहिये कि जिससे धूप के पहुँचने में कोई बाधा न मिले। बहुत मूल्यवान वृक्ष होने पर भी मकान के पूर्व की ओर उसे नहीं उगने देना चाहिये।

[२]

धूपस्नान लेने की पद्धति

भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक किरणों के ग्रहण से जो लाभ होता है केवल धूपस्नान से वही लाभ होता है (J H. Kellogg, M.D.—Light Therapeutics, p. 74)। किन्तु जैसे जैसे धूप में घूमने से लाभ नहीं होता। धूपस्नान की एक विशेष पद्धति है। इसी विधि से

सूर्य की किरणों के ग्रहण करने से ही लाभ होता है।

रोगी को पहले ही दिन अधिक देर तक धूप में हरगिज नहीं रखना चाहिये। दिन पर दिन क्रमशः धूपस्नान के समय को बढ़ाते जाकर धीरे धीरे रोगी को इसका आदी बना लेना उचित है। पहले ही उसके संपूर्ण शरीर को एक साथ धूप के अन्दर नहीं रखना चाहिये। पहले कुछ दिनों तक केवल उसके दोनों पैर कुछ मिनटों के लिए धूप मे रखे जा सकते हैं। कुछ दिनों बाद उसकी दोनों भुजाओं को धूप में रखना चाहिये। इसके बाद गले तक सारी देह और अन्त में दो सप्ताह के अन्दर सम्पूर्ण देह को ही धूप के अन्दर रखा जा सकता है। बहुत दुर्बल रोगियों को और ग्रीष्म-प्रधान देशों में तथा गर्मी के दिनों में सदा ऐसा करना उचित है। धूप ग्रहण करने का समय मौसम पर विशेष रूप से निर्भर करता है। जाड़े के दिनों में शुरू में ही कुछ अधिक समय के लिए धूप में रहा जा सकता है। गर्मी के दिनों में बहुत धीरे-धीरे समय बढ़ाना चाहिये। यदि रोज धूपस्नान किया जाये और क्रमशः समय बढ़ाते-बढ़ाते तीस मिनट से एक घण्टे तक धूप में रहा जाये, तो उससे सबसे अधिक लाभ होता है। कुछ दिनों तक सूर्य-किरणें लेने से चमड़ा सामयिक रूप से काला हो जाता है। तब दीर्घ समय तक सूर्य-किरणें लेने पर भी कोई हानि नहीं होती। किसी-किसी रोग में दैनिक तीन-चार घंटे के लिये भी सूर्य-किरणें ली जाती हैं पर इस बात को हमेशा याद रखना चाहिये, so long as the sun feels good it will do you good—जब तक धूप अच्छी लगे तभी तक यह लाभदायक है (Macfadden's Encyclopaedia of Physical Culture, p. 1488)। धूपस्नान में यह कोई आवश्यक नहीं कि हर अवस्था में रोगी को पसीना आ जाये। रोगी का शरीर गरम होने पर ही उससे लाभ होता है।

ग्रीष्मप्रधान देशों में हमेशा प्रातःकाल के समय ही धूपस्नान लेना चाहिये। किंतु शीतप्रधान देशों में दिन के ११ बजे के बाद धूपस्नान न लेने से सूर्य-किरणें सीधी आकर शरीर पर नहीं पड़तीं।

साधारणतया रोगी घर के बाहर खाट या अन्य किसी चीज पर बैठकर धूप ले सकते हैं। सबल रोगी धूप में टहलकर या खेलकर धूपस्नान ग्रहण करें तो कोई आपत्ति नहीं। बल्कि विश्राम न लेते हुए धूप के अन्दर टहलने से धूप अधिक सही जा सकती है। इसी कारण धूप के अन्दर व्यायाम करना और खेलना सूर्य-किरण लेने की एक अति श्रेष्ठ पद्धति है। चर्बी बढ़ने या मधुमेह (diabetes) के रोगी के लिए इस प्रकार का खेल विशेष लाभदायक है (Dr. Wilhelm Winternitz—A System of Physiologic Therapeutics, Vol. IX, pp 215-6। किंतु कमजोर रोगी को घर के भीतर या बाहर बिस्तर पर लिटाकर धूपस्नान कराना चाहिये।

धूपस्नान ग्रहण करते समय यथासंभव रोगी का शरीर खुला रहना उचित है। जब सूर्य की किरणें सीधी चमड़े पर पड़ती हैं, तभी उससे लाभ होता है। असलियत यह है कि if the sun-beams are not falling upon the naked skin then it is no sun-bath— यदि धूप खुले चमड़े पर न पड़े तो वह धूपस्नान है ही नहीं (J. P. Muller—My Sun-bathing and Fresh Air System. p. 44, London, 1923)।

किंतु पैर आदि शरीर के किसी अंग को धूप के अन्दर रखने से भी कुछ अंशों में एक ही प्रकार का लाभ होता है। क्योंकि खुले चर्म में जो विटामिन उत्पन्न होता है, रक्त उसे संपूर्ण शरीर में पहुँचा देता है।

धूपस्नान करते समय हमेशा सिर और दोनों आंखों को धूप से बचाना चाहिये और यदि धूप तेज हो तो हमेशा काला चश्मा पहन लेना चाहिये। जब सारे शरीर को धूप में रखना हो, तो धूप में जाने के पहले सिर मुँह और गरदन अच्छी तरह धोकर एक गीली तौलिया से इन सभी स्थानों को अच्छी तरह ढक लेना उचित है। इस तौलिया को एक और काले रंग के कपड़े से यदि ढक लिया जाये तो बहुत अच्छा हो। भींगी तौलिया जब सूख जाय या गरम हो उठे तो उसे बार-बार बदलते जाना

चाहिये। अथवा सिर पर एक गीली तौलिया रखकर तथा एक छाता लगाकर सिर और मुँह ढक लेने से काम चल सकता है मतलब यह कि ऐसी व्यवस्था करनो परमावश्यक है जिससे कि सिर ठंडा रहे। क्योंकि सिर में यदि धूप लगे तो धूपस्नान के बाद विभिन्न हानिकर परिणाम हो सकते हैं (Dr. Wilhelm Winternitz—A System of Physiologic Therapeutics, Vol. IX, pp. 213-5)।

धूप लेते समय हमेशा शरीर के ताप पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सूर्य की गर्मी से शरीर बहुत गरम हो जाने पर रोगी को एक गिलास ठंडा पानी पीने देना जरूरी है। इससे शरीर के कुछ अधिक गरम हो जाने पर भी उतनी हानि नहीं होती। मधुमेह आदि के रोगो जिन्हें साधारणतया पसीना नहीं होता उन्हें तो बार-बार पानी पीते जाना उचित है। यदि धूप में रहते समय अधिक पसीना आये तो शरीर के अधिक गरम हो जाने पर भी विशेष हानि की संभावना नहीं रहती। बहुत कमजोर रोगी का शरीर अधिक गरम हो जाने पर उसे शीघ्र ही धूप से हटा लेना चाहिये। यदि हृदय कमजोर हो तो बहुत देर तक धूपस्नान से शरीर के गरम हो जाने पर हृदय पर हमेशा एक भींगी तौलिया रख लेना उचित है।

रोगी को इस प्रकार से धूपस्नान लेना चाहिये कि शरीर अत्यधिक गरम न हो उठे। साथ ही बाहर की ठंडी हवा से शरीर ठंडा न हो जाय, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है।

कई लोग ऐसे हैं जो धूप सह नहीं सकते। धूपस्नान लेते समय वे शरीर पर तेल की मालिश कर ले सकते हैं सूर्य किरणों के अन्दर जो अनिष्टकारी रश्मियां हैं, इस व्यवस्था के द्वारा उन्हें रोक दिया जा सकता है। इसलिए शिशुओं को धूप में रखते समय हमेशा तेल की मालिश कर लेनी चाहिये।

हर बार धूपस्नान ग्रहण करते समय और उसके बाद रोगी को काफी आराम मालूम पड़ता है। यदि धूपस्नान के बाद रोगी को थकावट और

अनिद्रा हो, सिर दर्द शुरू हो जाये सिर में चक्कर आवे अथवा रोगी के शरीर में खूब उत्तेजना उत्पन्न हो तो समझना चाहिये कि रोगी को अधिक समय तक धूप में रखा गया है या पद्धति के अनुसार धूपस्नान नहीं दिया गया है (A. Rollier, M.D.—Heliotherapy, p. 621)। ऐसा होने से कुछ भी लाभ नहीं होता। क्योंकि जब सूर्य की किरणों का ठीक तौर से प्रयोग किया जाये तभी वे निरोग होने में मदद पहुँचा सकती है। इसी कारण पहले पहल हमेशा थोड़े समय के लिए धूप लेकर क्रमशः समय बढ़ाते जाना चाहिये।

निश्चित समय तक धूपस्नान करने के बाद सारे शरीर को एक गीली तौलिया से पोंछ डालना चाहिये। इसके बाद शरीर के गरम रहते ही स्नान कर लेना उचित है। बहुत कमजोर रोगी को स्नान के बदले में गले तक कम्बल से ढके हुए ही घर्षण-स्नान का प्रयोग करना चाहिये। धूपस्नान करने के बाद इस प्रकार शरीर को शीतल न करने से बहुत बड़ी क्षति हो सकती है। स्नान के बाद सूखी मालिश, व्यायाम अथवा गले तक सारे शरीर को कम्बल से ढककर फिर शरीर की गर्मी को लौटा लेना जरूरी है।

[३]

अति प्राचीन काल से सूर्य-किरणों के स्वास्थ्यकर प्रभाव को रोग आरोग्य के कार्य में नियुक्त किया गया है। भारतवर्ष में सूर्योपासना प्रचलित है, यह रोग आरोग्य की एक प्रकार की व्यवस्था है। धूप में खड़े रहकर सूर्य के मंत्र पढ़ने की व्यवस्था कर हमारे पूर्वजों ने धर्म के साथ स्वास्थ्य-विधि को एक सूत्र में गूंथ दिया है।

कुछ दिनों से वैज्ञानिक उपाय द्वारा सूर्यताप लेने की पद्धति प्रवर्तित हुई है और प्रधानतः सूर्य की किरणों द्वारा विभिन्न रोगों के आरोग्य की व्यवस्था की गई है।

जिन रोगों में शरीर का निर्माण (matabolism) तथा दह -क्षमता क्षीण हो जाती है, देखा गया है कि उन रोगों में धूपस्नान

से अत्यधिक लाभ होता है। इसलिए मधुमेह, स्थूलता, वात-व्याधि तथा ग्रंथि-वात में यह अत्यन्त हितकारी है।

साधारण दुर्बलता में धूपस्नान अत्यन्त लाभदायक है। शरीर में वृद्धि का अभाव तथा मांसपेशी की दुर्बलता रहने पर सूर्य किरणों का प्रयोग सफलता के साथ किया जा सकता है।

बहुत दिनों तक अजीर्ण रोग से पीड़ित रहने के कारण जिनका चर्म शुष्क, कठिन और मृनवत् हो गया हो, प्रतिदिन सूर्यताप लेने से उनका चर्म पुनः सिक्त, कोमल और सतेज हो उठता है। सूर्य-किरणों के प्रयोग से खुरखुरा, सिकुड़ा हुआ तथा दागयुक्त चर्म क्रमशः नरम, निर्मल और स्वाभाविक हो जाता है।

एकजिमा तथा सोरायसिस (psoriasis) आदि रोगों में सूर्यताप लेने से अत्यन्त लाभ होता है।

सूर्य-किरणों के प्रयोग से पुराना फोड़ा सूख जाता है और सूजा हुआ घाव भी संकुचित होता अथवा बिना चीर-फाड़ के फूट जाता है। हड्डी या गाँठ से सम्बन्धित अन्दरूनी घाव भी इससे अच्छा होता है और साथ ही मूल रोग भी दूर हो जाता है (Douglas Hay Scott, M. B, Ch.B—The New Peoples' Physician, Vol. 2, p. 49)।

धुपस्नान से व्याधिग्रस्त जोड़, प्लूरा तथा आँतों की ऊपरी झिल्ली (peritonium) के दूषित रस (exudates) शरीर में शोषित होते हैं उसके फलस्वरूप दर्द कम होता है तथा जोड़ और हड्डी आदि यंत्रों के भीतर जो जीर्ण अवस्था रहती है, स्वयं ही उसका सुधार होता में (E. K. Ledermann, M. D.—Natural Therapy, p. 50, London, 1953)। अस्थि, संधि तथा ग्रंथि के टी० बी० रोग में अत्यन्त लाभदायक है।

सड़े घाव के ऊपर सूर्य-किरणों के प्रयोग से वह थोड़े समय के अन्दर सूख जाता है और घाव का दर्द शीघ्र दूर हो जाता है। इसमें संदेह नहीं

कि सूर्य-किरणों के जीवाणु-विध्वंशी गुणों के कारण ही ऐसा होता है।

परंतु शरीर के तथाकथित विभिन्न आंशिक रोगों में धूप का प्रयोग केवल उस निर्दिष्ट अंग पर न करते हुए सारे शरीर पर करना चाहिये। संपूर्ण देह पर सूर्य-किरणों के पड़ने से शरीर के समस्त यंत्रों की क्षमता हो बढ़ती है। इससे शरीर के अंशविशेष का रोग भी अच्छा होता है। किंतु असाध्य घाव आदि द्वारा जब शरीर का कोई अङ्ग आक्रान्त होता हैं, तब संपूर्ण शरीर पर धूपस्नान लेने पर भी बीच-बीच में उस विशेष अंग पर ही केवल धूप लेनी चाहिये। उस अवस्था में आक्रांत अंग को खुला छोड़कर उसके चारों ओर कपड़े से ढक लेना चाहिये।

सभी प्रकार की रक्तशून्यता में इससे अत्यन्त लाभ होता है क्योंकि शरीर के अन्दर रक्त निर्माण की जो व्यवस्था है, इसके द्वारा उस व्यवस्था की ही उन्नति होती है। इसके अतिरिक्त धूपस्नान से शरीर का रक्त विशुद्ध तथा रक्त अपेक्षाकृत उन्नत होता है।

स्नायविक कारणों से उत्पन्न दमा में भी इससे बहुत लाभ हुआ करता है।

रिकेट रोग में धूपस्नान ही प्रधान चिकित्सा है। अस्थि के रोगों में सूर्य किरणों से जो विशेष लाभ होता है, उसीसे पता चलता है कि सूर्य-किरणें लेने पर रक्त में कैलशियम और फासफोरस की मात्रा बढ़ती है और हड्डी में अधिक मात्रा में उनका संचय हुआ करता है। धूपस्नान से शरीर में जो विटामिन डी जाता है, उसीके फलस्वरूप यह संभव होता है।

परंतु सभी रोगों में धूपस्नान नहीं लेना चाहिये। सर्व प्रकार के ज्वर रोगों में यह सम्पूर्णरूपेण बर्जनीय है। यदि धुपस्नान लेने के बाद ज्वर बढ़े तो कुछ दिनों के लिए यह बन्द रखना आवश्यक है। यदि स्नायविक उत्तेजना तथा अनिद्रा रहे तो भी धूपस्नान का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

पन्द्रहवाँ अध्याय

गरम और शीतल जल की समस्या

प्राकृतिक चिकित्सा में कभी शरीर को गरम करना होता है तो कभी शीतल। कभी शरीर पर गरम जल का प्रयोग करना आवश्यक होता है, तो कभी शीतल जल का। कभी ठण्डी मिट्टी की पुलटिस दी जाती हैं तो कभी गरम जल में फ्लानेल भिगोंकर सेंक देना होता है। अतः कब गरम और कब शीतल प्रयोग करना होगा, यही प्राकृतिक चिकित्सा में एक बड़ी समस्या है।

किंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि गरम जल अथवा उष्ण प्रयोग से जो काम होता है शीतल जल से भी ठीक वही काम हो सकता है।

गरम पानी का प्रयोग करने से खून अपने स्थान पर चला आता है। रक्त जहाँ जाता है वहाँ शरीर गठन की सामग्री और कीटाणु आदि के साथ युद्ध करने के लिए श्वेत कणों को ले जाता है। खून जब चमड़े तक फैल जाता है, तो लोमकूपों की राह शरीर के विभिन्न दूषित पदार्थ भी निकल जाते हैं और अन्दरूनी रक्त की अधिकता तथा दर्द आदि को वह क्षणभर में दूर कर देता है। इसलिए गरम प्रयोग से रोग अच्छा हो जाता है।

ठंडे पानी के प्रयोग से यद्यपि पहले खून भीतर चला जाता है, पर क्षणभर बाद ही उस शीतल स्थान को गरम करने के लिए दौड़ा चला आता है। तब संकुचित रक्तनालियाँ फैल जाती हैं और शरीर का विष प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पसीने और गैस के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसलिए गरम पानी से जो लाभ होता है ठंडे पानी से भी ठीक वही लाभ हो सकता है।

यद्यपि शीतल जल के प्रयोग से गरम प्रयोग का सारा लाभ होता है,

तथापि गरम प्रयोग का दोष उसमें नाममात्र भी नहीं होता। ठण्डे पानी के व्यवहार का फल कुछ क्षण के लिए खराब मालूम होने पर भी उसका परिणाम उसके बाद हमेशा ही अत्यन्त लाभदायक होता है। इसके प्रतिकूल गरम पानी का प्रयोग करने से यद्यपि तुरन्त लाभ होता है, परन्तु उसका अन्तिम फल कभी-कभी हानिकर भी होता है।

ठण्डे जल का प्रयोग करने से पहले शिरायें संकुचित होती हैं और थोड़े काल के लिए खून भीतर चला जाता है। किंतु शीतल जल चमड़े पर पड़ते ही स्नायु तुरन्त मस्तिष्क को फोन करती हैं कि शरीर शीतलता द्वारा आक्रान्त हुआ है मस्तिष्क उसी समय उस स्थान पर खून की धारा भेजता है। हो सकता है संकुचित शिराओं को ठेलकर रक्त शीघ्रता से वहाँ पहुँच नहीं पावे किंतु धीरे-धीरे रक्त फैलकर सारे चमड़े को खून से भर देता है। उस समय संकुचित शिराएँ पहले की अपेक्षा अधिक फैल जाती हैं, नीले रक्तहीन चमड़े पर गुलाबी आभा झलकने लगती है, शीतल चमड़ा उत्तप्त हो उठता है और लोमकूप खुल जाते हैं। यह परिणाम बहुत समय तक रहता है।

इसके विपरीत गरम पानी बहुत ही कम समय में रक्त को खींचकर चमड़े के ऊपर ला देता है और पसीना उत्पन्न कर देता हैं। परन्तु खून जितनी जल्दी आता है, उतनी ही शीघ्रता से वह भीतर चला भी जाता है तब बाहर की ओर रक्त ले जानेवाली शिराएँ पहले की अपेक्षा अधिक संकुचित हो जाती है, लोमकूप बन्द हो जाते हैं, चमड़ा शीतल खून रहित और नीले रंग का हो जाता है तथा बाहर की चमड़े की हालत ऐसी हो जाती है कि किसी भी समय ठण्डक लगने से बीमारी हो सकती है।

इसी कारण शीतल जल स्वाभाविक रूप से शरीर को गरम करता है और गरम पानी शरीर को ठण्डा करता है।

गरम पानी की तरह कमजोर बनानेवाला और कुछ भी नहीं है। इससे क्षनिक लाभ तो होता है, परन्तु इसका अन्तिम परिणाम अत्यन्त हानिकारक होता है। गरम पानी का बाहरी उपयोग जिस तरह ऊपरी

भाग को कमजोर करता है, इसका अन्दरूनी प्रयोग भी उसी प्रकार पाकस्थली आदि को कमजोर बनाता है। ठण्डा पानी जिस तरह बाहरी प्रयोग में होता है, ठीक उसी प्रकार अन्दरूनी पान के लिए भी यह पृथ्वी पर सबसे अधिक बलकारक औषधि (टानिक) है।

शरीर में किसी स्थान पर सूजन होने पर कोई-कोई लगातार गरम पानी की सेंक की व्यवस्था करते हैं। इससे बहुत बड़ी हानि होने की संभावना रहती है। सूजन की जगह को अधिक समय तक सेंकने से प्रायः वह पक जाती है। कई बार आँतें, डिम्बकोष और मोच तथा चोट लगने के स्थान पर बहुत अधिक गरम सेंक देने के कारण वह स्थान पक जाता है। इसके बदले यदि उन स्थानों पर ढकी पट्टी (heating compress) का प्रयोग किया जाय तो दर्द और सूजन दोनों ही मिट जायें। पट्टी के नीचे जो हल्की गरमी उत्पन्न होती है वह दर्द कम करती है और पट्टी की शीतलता सूजन को नष्ट करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में वाष्पस्नान आदि की व्यवस्था है। किंतु वाष्पस्नान के बाद ठण्डे पानी से स्नान करने से कोई भी बुरा परिणाम नहीं होता। गरम जल से सेंक देने के बाद भी सेंके हुए स्थान को हमेशा ही ठण्डे पानी से पोंछ डालना चाहिये। यदि कोई वाष्पस्नान आदि ले और उसके बाद ठण्ड के डर से स्नान आदि न करे तो चमड़े के छेद उत्ताप की प्रतिक्रिया से इस प्रकार बन्द हो जाते हैं कि रोगी की हालत पहले से भी अधिक खराब हो जाती है।

परन्तु शीतल जल का प्रयोग करने की भी एक सीमा होती है। साधारणतया ठण्डा पानी थोड़ी देर के लिए ही काम में लाना चाहिये। थोड़ी देर तक शीतल जल से स्नान करने अथवा किसी दूसरी विधि से उसका शरीर पर प्रयोग करने से शीत की प्रतिक्रिया के कारण शरीर में एक प्रकार को स्फुर्ति-सी (stimulating effect) मालूम होती है। किंतु सूजन और दर्द आदि में काफी देर तक शीतल जल का व्यवहार करना आवश्यक होता हैं। क्योंकि उस अवस्था में एक प्रकार की शांति-

कारक प्रभाव (sedative effect) पैदा करना जरूर होता है। परंतु अत्यधिक समय तक शीतल पट्टी के व्यवहार से भी शरीर के उस हिस्से में एक प्रकार का अवसाद (depression) आ सकता है। इसीलिए नई सूजन आदि में पाँच-छः घंटे तक शीतल पट्टी चलाकर उसके बाद बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए सेंक देना आवश्यक होता है।

किंतु रोग और स्वस्थ अवस्था में शीतल जल अत्यन्त फलप्रद होने पर भी रोग की किसी-किसी अवस्था में गरम पानी का प्रयोग करना आवश्यक होता है। रोगी के शरीर में जब ठंड तथा कँपकँपी हो, तब रोगी को कभी भी ठंडा पानी पीने को नहीं देना चाहिये और न उसे शीतल जल का बाथ ही देना चाहिये। उस अवस्था में उसे हमेशा गरम पानी ही पिलाना आवश्यक है और वाष्पस्नान आदि के प्रयोग के लिए यही सबसे अच्छा समय है। 'शीतलावस्था' के बाद जब 'गरम अवस्था आती है तब पानी के ताप को क्रमशः कम करके रोगी को ठंडा पानी पिलाना चाहिये या अन्य प्रकार से शीतल जल काम में लाने के लिए देना चाहिये।

यद्यपि रोग की हालत में, कभी कभी गरम पानी इस्तेमाल किया जाता है, तो भी हमेशा याद रखना चाहिये कि रोगी जिससे जल्दी ही ठंडा पानी के अभ्यस्त हो जाय, क्योंकि ठंडा पानी की तरह जीवनी-शक्ति का उद्दीपक और कुछ नहीं है।

———

सोलहवाँ अध्याय

उपवास और आरोग्य

[१]

आयुर्वेद ने कहा है, आहारं पचति शिखि दोषानाहारवर्जितः—अग्नि भोजन को पचाती है, और जब शरीर में खाद्य नहीं रहता, तब वह दोषों को पचाती है।

हम जो खाते हैं, श्वास वायु के साथ गृहीत ऑक्सिजन के संयोग से वह हल्के रूप से जलकर हमारे शरीर के काम में आता है। जब हम उपवास करते हैं तब शरीर में जो ऑक्सिजन ग्रहीत होता है, वह नये खाद्य के अभाव में पुराने खाद्य के अवशेष को तथा शरीर के दूषित पदार्थों को धीरे-धीरे जला डालता है (डा० चुनीलाल बसु, एम० बी०—खाद्य, पृष्ठ १५३)।

इसके अतिरिक्त उपवास से लाभ होता है इस कारण से कि यह शरीर के भिन्न-भिन्न यंत्रों को साफ करने का अवसर देता है। हम जो खाते हैं, उसे हजम करने के लिए शरीर को यथेष्ठ शक्ति लगानी पड़ती है। जब हम भोजन बन्द करते हैं, तब वह शक्ति शरीर को दोषमुक्त करने के काम में लग जाती है। कभी-कभी केवल एक दिन उपवास करके रहने से मुँह और श्वास दुर्गन्धयुक्त हो उठता है। प्रकृति शरीर के कोने-कोने से समस्त कूड़ा कचरा बाहर निकाल लाती है, इसीलिए ऐसा हुआ करता है।

इस प्रकार उपवास से एक ओर से जैसा शरीर का दूषित संचय कोष तथा तंतुओं के पिंजरे से मुक्त होता है, वैसे ही वह अपने-आप ही शरीर के अन्दर जल भी जाता है।

इसीलिए दीर्घ उपवास से रक्त विशुद्ध होता है, शरीर का विष

जलकर खाक हो जाता है और शरीर के विभिन्न यंत्र नूतन तैयार हो जाते हैं।

उपवास के फलस्वरूप पाकस्थली विशेष रूप से शक्ति प्राप्त करती है. पाकस्थली के अन्दर कोई सूजन रहने से वह सूख जाता है, पाकस्थली यदि बड़ी हो गई हो तो वह पुनः संकुचित होता है और यदि झूल गई हो तो फिर से अपने स्थान पर वापस आ जाती है।

इसके द्वारा दुर्बल यकृत और मूलयंत्र का स्वास्थ्य वापस आ जाता है, उसके फलस्वरूप शरीर का स्वास्थ्य हो सुधर जाता है।

विधिपूर्वक उपवास करने से आँखों को दृष्टिशक्ति तथा कानों को श्रवण शक्ति भी बढ़ती है।

आश्चर्य की बात यह है कि वजन बढ़ाने का यह एक श्रेष्ठ उपाय है। जो लोग बहुत दुर्बल होते हैं, वे साधारणतः बहुत अधिक खाते हैं। किंतु उससे उन्हें कोई लाभ नहीं होता। उपवास से शरीर के परिपाक, परिशोषण तथा देहात्मीकरण की क्षमता बढ़ती है। इसी कारण उपवास के बाद खाद्य ग्रहण करने के साथ ही साथ धीरे-धीरे वजन बढ़ता है और अन्त में शरीर को उचित वजन प्राप्त होता हैं।

उपवास के फलस्वरूप समस्त स्नायु एवं स्नायु केन्द्र नवजीवन प्राप्त करते है। उसके कारण से मानसिक क्षमता, स्मरण-शक्ति तथा बुद्धि-वृत्ति की उन्नति होती है और चित्त ही विशुद्ध होता है। इसीलिए विश्व के समस्त धर्मों में उपवास को तपश्चर्या का एक अनिवार्य अङ्ग के रूप में माना जाता है।

इसके द्वारा जिस प्रकार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उन्नति होती है, उसी प्रकार विभिन्न रोग भी अच्छे होते हैं।

प्लूटार्च (Plutarch) ने कहा है, Instead of using medicine, rather fast a day—औषधि का उपयोग करने के बदले एक दिन उपवास करो।

प्रकृति में हम देखते हैं कि पशु-पक्षियों को कोई रोग होते ही के

उपवास करते हैं। उपवास के द्वारा ही वे आरोग्य लाभ करते हैं। वास्तव में संसार में मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों की एकमात्र चिकित्सा उपवास ही है। इसलिए यही प्रकृति की निजी चिकित्सा-विधि है।

साधारण छोटी व्याधियाँ दो-तीन दिन के उपवास से ही अधिकांश क्षेत्रों में अंकुर में ही विनष्ट हो जाते हैं। जो रोग दो तीन दिनों के उपवास से आरोग्य होने को नहीं, उपवास से उनकी प्रबलता अत्यन्त कम हो जाती है और पद्धति के अनुसार उपवास चलाते रहने पर जो रोग अन्य किसी प्रकार अच्छे नहीं होते, अनेक अवस्थाओं में वे अच्छे हो जाते हैं। वातव्याधि, अजीर्ण, यकृत-रोग, पथरी, दमा और चर्मरोग आदि में मनुष्य जीवन भर कष्ट पाता है। किंतु पद्धति के अनुसार उपवास ग्रहण करने से इन सारी असाध्य व्याधियों से आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है (Upton Sinclair—The Fasting Cure, p. 64)।

रक्तचाप संधि-प्रदाह, एपेंडिसायटिस्. मूत्रग्रन्थि प्रदाह और स्थूलता आदि में भी उपवास के द्वारा आरोग्य प्राप्त किया जाता है। वास्तव में प्रायः सभी असाध्य रोग में ही उपवास से लाभ होता है। क्योंकि हमें जो कोइ भी बिमारी होती हो, देह-सञ्चित, विभिन्न विष और कचरा ही उसका प्रधान कारण है। जब दीर्घ उपवास से यह विष जल जाता है, तब सभी रोग अच्छे हो जाते हैं।

[२]

नये रोगों में एक बार मात्र उपवास करना ही पर्याप्त होता है और वह भी बहुत अधिक दिनों तक करने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु पुरानी व्याधियों में सदैव दीर्घ उपवास की आवश्यकता हुआ करती है।

कितने दिनों तक उपवास करना आवश्यक है, सदैव ही वह रोगी और रोग की अवस्था पर निर्भर करता है। साधारणतः असाध्य व्याधियों में दीर्घ उपवास की आवश्यकता होती है। जब एक साथ दस दिन या उससे अधिक उपवास किया जाता है तब उसे दीर्घ उपवास कहा जाता

है। और उपवास यदि तीन से सात दिनों तक किया जाय, तो उसे अल्प उपवास (short fast) कहा जा सकता है।

नये रोगो में रोग के प्रकट होते ही उपवास शुरू करना चाहिये। किंतु पुराने रोगों में दीर्घ उपवास के लिए सदैव धीरे-धीरे तैयार होना चाहिये।

पहले बीच-बीच में फल, फल का रस, बारह घंटे भिगोई हुई किशमिश का पानी, कच्चे साग और तरकारी का रस, सलाद और तरकारी का सूप लेकर तीन-चार दिनों तक अर्ध-उपवास में रहा जा सकता है। इससे शरीर और मन दीर्घ उपवास के लिये तैयार होता है।

इसके पश्चात् उपवास करने के पूर्व एक दिन एक समय भात या रोटी और दूसरे समय फल आदि खाकर रहना चाहिये। दूसरे दिन दोनों समय फल, सलाद आदि खाकर और तीसरे दिन केवल फल का रस पीकर चौथे दिन से उपवास शुरू किया जा सकता है।

मैकफाडेन का कहना है कि केवल एक से तीन दिनों तक खट्टा जातीय फल या फल का रस लेकर रहने से ही उपवास आरम्भ करने के लिए जो कुछ करना आवश्यक है, वह हो जाता है (Fasting for Health, p. 124, New York, 1946)।

उपवास आरंभ करते ही आँत के अन्दर मल सूखकर एकदम काला हो जाता है। इसलिए उपवास आरंभ करने के पहले दिन त्रिफला आदि के द्वारा केवल एक दिन के लिये पेट को साफ कर लेने से अत्यन्त लाभ होता है।

लम्बे उपवास में जो कुछ कष्ट होता है वह साधारणतया दो-तीन दिनों तक ही रहता है। इसके बाद यह कम हो जाता है। इन्हीं कई दिनों तक भोजन ग्रहण करने की इच्छा बहुत कष्ट देती है। किन्तु प्रारम्भिक कई दिनों तक भोजन करने के नियत समय के पहले यदि काफी मात्रा में पानी पी लिया जाये तो भूख की तीव्रता उतनी अधिक नहीं सतावेगी।

बहुतों की यह धारणा है कि उपवास निर्जला होना चाहिये। इससे

बढ़कर और कोई गलती हो ही नहीं सकतो। सभी प्रकार के उपवासों में नीबू के रस के साथ काफो पानी पीना चाहिये। उपवास से जो विकार शरीर में जलता है, पानी उसे धो बहाता है। पर एक साथ कभी भी अधिक पानी नहीं पीना चाहिये। बल्कि बार-बार यहाँ तक कि प्रति घंटे नीबू के रस के साथ एक गिलास पानी पीया जा सकता है।

भोजन बन्द करने के साथ-साथ प्रायः हमेशा स्वाभाविक पाखाना होना बन्द हो जाता है। किन्तु जिस नाबदान से शरीर का अधिकांश विकार बाहर हुआ करता है, यदि वही बन्द हो जाय तो उपवास से लाभ पाना मुश्किल हो जाय। इसी कारण लम्बे उपवासों में प्रतिदिन रोगो को डूस देकर उसके कोष्ठ का साफ कर देना चाहिये। फिर भोजन प्रारम्भ करने के बाद भी कई एक दिनों तक डूस लेने की आवश्यकता पड़ती है।

उपवास के कारण जो विकार शरीर में भस्म होता है, खून उसे विभिन्न मार्गों से शरीर से बाहर निकाल देता है। इसी कारण सामयिक रूप से रक्त में विकार रहने के कारण इस समय शरीर में कितने रोगों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस समय जिसके अन्दर जितना अधिक रोग-लक्षण प्रकट होता है, समझना चाहिये कि उसके लिए उतने दीर्घ उपवास की आवश्यकता है।

इस अवस्था में कभी-कभा रोगी के सिर में दर्द होता है, पेट फूलता है, सिर घूमता है, अनिद्रा प्रकट होतो हैं अथवा ज्वर-सा मालूम पड़ता है। इन अवस्थाओं में प्रतिदिन डूस लेने से नोबू के रस के साथ काफी मात्रा में पानी पोने से, दिन में तीन बार सिर धोकर भींगे गमछे के द्वारा समस्त शरीर पोंछ डालने से और यथेष्ट रूप में विश्राम लेने से थोड़े समय में ही ये सब रोग-लक्षण अन्तर्हित होते हैं। किंतु जो लोग धीरे-धीरे उपवास में अभ्यस्त होते हैं, उनके अन्दर प्रायः ही ये लक्षण प्रकट नहीं होते।

उपवास की प्रारम्भिक अवस्था में थोड़ा हल्का परिश्रम करना आवश्यक है। इस समय का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम टहलना ही है। इच्छा होने

से रोगी घरेलू काम भी कर सकता है। किन्तु जिस प्रकार उपवास की अवधि बढ़ती जाय, परिश्रम भी उसी मात्रा में कम करते जाना चाहिये। यदि रोगी खूब कमजोर महसूस करे तब उसे पूरा विश्राम करना जरूरी है। यथासंभव रोगी को खुली जगह में लम्बी अवधि तक रहना चाहिये और प्रतिदिन श्वास-प्रश्वास का व्यायाम लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त दैनिक स्नान करना आवश्यक है।

साधारणतया उपवास करने के दो-एक दिनों में ही जीभ पर लेप सा चढ़ जाता है और श्वास-प्रश्वास तथा मुंह से दुर्गन्ध निकलने लगती है। ये सभी लक्षण यह प्रमाणित करते हैं कि शरीर में काफी मात्रा में दूषित पदार्थ का संचय हो रहा था और उपवास का सुयोग पाकर पद्धति सभी उपायों से इसे निकाल बाहर करने की चेष्टा कर रही है। इस प्रकार के लक्षणों को देखकर समझना चाहिये कि रोगी के लिए यह उपवास नितांत आवश्यक था। जब तक शरीर निर्दोष नहीं होता तब तक यही अवस्था चलती रहती है। उसके बाद कुछ दिनों तक उपवास करने के बाद जैसे जैसे शरीर विकार-रहित हो जाता है जीभ भी उसी तरह गुलाबी होती जाती हैं, श्वास-प्रश्वास भी उतना ही निर्मल होता जाता है, नाड़ी तथा शरीर का ताप स्वाभाविक हो जाता है और प्रभात के प्रकाश की तरह क्षुधा की एक प्रकार की अनिर्वचनीय मधुर अनुभूति जग उठती है। तब समझना चाहिये कि शरीर विकार-रहित हो गया और उपवास तोड़ा जा सकता है।

उपवास भंग करने से पहले इस अवस्था का आना अत्यन्त आवश्यक है। इस अवस्था के आने के पहले उपवास तोड़ने पर उसका असली फल नहीं मिलता। केवल व्यर्थ का कष्ट होता है।

पर कृत्रिम भूख को स्वाभाविक भूख समझने की भूल नहीं करनी चाहिये। क्षुधा एक दुर्लभ अनुभूति है। बहुत लोग जिन्दगी भर उसे जानने का सुयोग नहीं पाते कि भूख क्या चीज है। हर रोज भोजन के निश्चित समय पर खाने की जो इच्छा हो जाती है परन्तु भूख नहीं

रहती, हम लोग भ्रम से उसे ही क्षुधा मान बैठते हैं। उपवास में इस प्रकार की कृत्रिम भूख लगने पर पानी पीकर या दूसरी ओर मन लगाकर इस इच्छा को रोकना आवश्यक है। जीभ आदि के साफ हो जाने के बाद जो असली भूख लगती है केवल उसी को क्षुधा समझना उचित है।

[३]

लम्बा उपवास आरम्भ करना तो बहुत ही आसन है, पर उपवास तोड़ना कठिन है। यदि ठीक प्रकार से उपवास न भंग किया जाय तो उपवास के समस्त उपकार नष्ट हो जा सकते हैं तथा उपकार के बदले अनिष्ट हो सकता है (Henry Lindlahr, M.D. -The Practice of Nature-cure, p. 129 Poona, 1954)।

अधिक दिनों तक काम करने के कारण लम्बे उपवास के अन्त में पाकस्थली सामयिक रूप से बड़ी हो जाती है इस अवस्था में पहले ही पहल अधिक पथ्य दे देने से कोई भी तकलीफ हो सकतो है। इसी कारण पाकस्थली को धीरे-धीरे फिर से भोजन ग्रहण का आदी बना लेना उचित है।

.उपवास के बाद पहले कई दिनों तक केवल तरल पथ्य ही ग्रहण करना उचित है। पहले दिन थोड़ा गरम पानी फल के रस के साथ मिलाकर पीकर उपवास भंग करना चाहिये। उपवास तोड़ने के समय पहले केवल कमला नीबू, मौसंबी आदि फलों का एक छटाक रस गरम जल में मिलाकर लेना उचित है। पहले दिन इसे दिन में तीन-चार बार लेना चाहिये। एक तृतीयांश जल में मिलाकर कमला नीबू का रस उपवास तोड़ने के लिए सर्वश्रेष्ठ है (Bernarr Macfadden—Fasting for Health, p, 150, New York, 1946)। यदि फल का रस न मिले तो परबल, नेनुआ, धनियाँ की पत्ती आदि पकाकर उनका सूप दिया जा सकता है। इसके अलावा अन्य दिनों की तरह रोगी को नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। दूसरे दिन फल के रस के साथ

एक या दो कमला नीबू खाये जा सकते हैं। तीसरे दिन सबेरे धारोष्ण या खौलाया हुआ एक छटाँक दूध और दो कमला नीबू, मौसंबी या टमाटर, दोपहर में आधा गिलास फल का रस या तरकारी का सूप तथा शाम को तीन छटाँक रस लेना उचित है। चौथे दिन इन सब पथ्यों के साथ आधा सेव या अन्य फल खाया जा सकता है। पाँचवें दिन एक टुकड़ा रोटी या आधी मुट्ठी पुराना चावल, दिन में एक बार तरकारी के सूप के साथ लिये जा सकते हैं। उसके बाद बहुत धीर-धीरे रोगी का पथ्य बढ़ाना चाहिये।

किन्तु उपवास तोड़ने के समय जल्दी में दुष्पाच्य भोजन या अति-भोजन करने से कोई भी नुकसान हो सकता। एक आदमी ने सात दिन का उपवास करने के बाद पहले ही दिन खजूर खाकर उपवास तोड़ा। उसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई (Prof. Arnold Ehret—Rational Fasting p. 46, Los Angelos, 1926)। बंगाल के गत अकाल में बहुत दिनों तक भूखे रहने के बाद सरकारी दातव्यशाला जब खुली तो भूखी जनता ने पहले ही दिन पेट भरकर भोजन किया। उसके परिणामस्वरूप जिन्होंने सरकारी दाल भात खाया था, उसमें से बहुत-से लोग सात दिन से अधिक जीवित नहीं रह सके।

इसलिए पहले ही दिन अति-भोजन या दुष्पाच्य भोजन करके उपवास तोड़ना उचित नहीं। अथवा उपवास तोड़ने के बाद भी कुछ दिनों तक एक साथ अति भोजन करना अनुचित है। बल्कि पहले कुछ दिनों तक हर बार थोड़-थोड़ा करके आहार करना चाहिये।

यदि केवल सात दिनों का ही उपवास किया गया हो तो पन्द्रह दिनों तक संयमित भोजन करना चाहिये। यदि तीन दिन का उपवास हो तो अगले और पिछले सात दिनों तक कम आहार करना उचित है। जो तीन सप्ताह का उपवास करते हैं उन्हें स्वाभाविक भोजन पर लौट आने में तीन सप्ताह से जरा भी कम समय लगाना उचित नहीं है।

उपवास के समय जिस प्रकार काफी पानी पीना आवश्यक है उसी प्रकार उपवास तोड़ते समय भी कुछ दिनों तक काफी पानी पीना उचित है। लम्बा उपवास करने के बाद दो-तीन महीनों तक खूब प्यास लगती है। ऐसी हालत में नीबू के रस के साथ पानी, फल का रस और डाब का पानी काफी परिमाण में पीना चाहिये।

[४]

तो भी हर किसी को उपवास नहीं करना चाहिये। बहुत बूढ़े, गर्भवती स्त्री और रक्तहीन रोगी को लम्बा उपवास कराना भी ठीक नहीं।

किंतु ये रोगी आंशिक उपवास (partial fast) करके पूर्ण उपवास का लाभ उठा सकते हैं। केवल फल, फल का रस, कच्ची शाक-सब्जी, तरकारी का रस, सलाद, पकी तरकारी का सूप और हल्का मट्ठा खाकर रहने से अर्धोपवास हो जाता है। यदि फल और फल का रस खाकर रहा जावे तो सबसे अधिक लाभ होता है। क्योंकि fruit is the most natural healing remedy—फल ही प्रकृति की सबसे अधिक आरोग्यकारी औषधि है। इस अवस्था में हर दिन छः से आठ कमला नीबू या मौसम्बी हर समय दो दो करके दिन में तीन चार बार लिये जा सकते हैं। जो लोग फल खरीदने में समर्थ नहीं हैं वे खीरा गाजर, टमाटर, लेटूस शालगम, चिचिंगा, तरोई व लेटूस, चौलाई तथा धनियाँ की पत्ती का रस दिन में तीन-चार बार ६ से ८ औंस तक पी सकते हैं खीरा, लेटूस मूली, टमाटर, धनियाँ की पत्ती आदि भी कच्ची अवस्था में सलाद के रूप में खाई जा सकती हैं। जिन लोगों की हाजमाशक्ति अत्यन्त कमजोर है वे झींगा तथा परवल आदि रसयुक्त साग-सब्जी सीझोकर उसका सूप पान कर सकते हैं।

इस प्रकार का हल्का व अपनयममूलक खाद्य ग्रहण करने पर भी यथेष्ट उपकार मिलता है।

सत्रहवाँ अध्याय

व्यायाम और स्वास्थ्य

[१]

व्यायाम सब के लिये आवश्यक है। यह सिर्फ हमारे मनुष्य शरीर के लिए लाभकारी है ऐसा नहीं, बल्कि तमाम जीव-जन्तु यहाँ तक कि वृक्ष-लता को इसकी समान रूप से आवश्यकता है।

जीव जन्तुओं का आहार खोजने, क्रीड़ा, आक्रमण एवं आत्मरक्षा के लिए परिश्रम करना पड़ता है। वही परिश्रम उनके लिए व्यायाम होता हैं। हवा तथा वर्षा में वृक्ष-लताओं आदि का हिलना डोलना उनके लिए एक प्रकार का व्यायाम है।

व्यायाम एक प्रकार का नाशकारी कार्य है। हम जब अपनी किसी मांशपेशी को संकुचित करते हैं तब तमाम अनुपयोगी जीवकोष एवं दूषित विकार खून के साथ बाहर हो जाते हैं। फिर जब हम उन मांसपेशियों को फैलाते हैं तब खून अपने साथ शरीर गठन की नई सामग्री लेता आता है। हमारे शरीर में सृष्टि और विनाश का कार्य हमेशा चलता रहता है। मृत जीवकोष शरीर से बाहर हो जाने पर ही नया जीवकोष वहाँ पर अपना स्थान बना सकते हैं। इसलिए हम देखते हैं कि हाथ से काम करनेवालों के हाथ और साइकिल चलानेवालों से पाँव और जाँघें विशेष पुष्ट रहती है। सारे शरीर का व्यायाम करने से सारा शरोर पुष्ट हो सकता है।

व्यायाम करते समय शरीर के तमाम स्थानों, अनु-परमाणुओं तक खून का संचार होता है। जहाँ खून जाता है, वहीं पर नये जीवन का प्रारम्भ होता है। इसलिए व्यायाम द्वारा मरा हुआ चमड़ा जीवित हो उठता है तथा शिथिल मांशपेशियाँ सबल और पुष्ट हो जाती हैं। शरीर

के भीतरी यंत्र भी इससे शक्ति एवं पुष्टि पाते हैं। व्यायाम के समय खून पाकस्थली, यकृत, छोटी आँत व हृद्पिण्ड आदि यंत्रों में विशेष रूप से पहुंचता है एवं इन तमाम अवयवों को शक्तिशाली बनाता है। इसलिए नियमित व्यायाम द्वारा कमजोर पाकस्थली सबल हो जाती है, मंद यकृत अधिक काम करने लगता है, हृद्पिण्ड मजबूत हो जाता है एवं छोटी आँत की भोजन से रस खींचने की शक्ति बढ़ जाती है।

व्यायाम के सम्बन्ध में आयुर्वेद ने कहा है, व्यायाम करने से शरीर हल्का होता है, कार्य शक्ति बढ़ती है, गात्र दृढ़ और सुविभक्त होता है तथा अग्नि की वृद्धि होती है व्यायाम द्वारा शरीर दृढ़ होने पर जल्दी कोई रोग नहीं होता। व्यायामकारी व्यक्ति का भोजन विरुद्ध हो या विदग्ध हो वह शीघ्र ही परिपाक प्राप्त होता है। उसकी देह में शीघ्र शिथिलता आदि नहीं उत्पन्न होती और ज्वर उसे सहसा आक्रमण नहीं कर सकता (भावप्रकाश—दिनचर्याप्रकरण, ५६—६४)

[२]

साधारणतया व्यायाम दो तरह से किया जाता है। एक ओर यह खाली हाथ किया जाता है तो दूसरी ओर यन्त्रों की सहायता से। दंड बैठक आदि को हम खाली हाथ का व्यायाम कह सकते हैं खाली हाथ का व्यायाम करने में सुविधा यही है कि यह कहीं भी किसी हालत में किया जा सकता है। किंतु जो चाहें वे यंत्र लेकर व्यायाम कर सकते हैं। इसलिए साधारणतः डम्बेल या पैरेलल बार आदि किये जा सकते हैं।

किंतु दंड, बैठक और डम्बेल आदि ही व्यायाम है ऐसी बात नहीं खुली हवा में जो खेल खेले जाते हैं वे सब व्यायाम के ही अन्तर्गत हैं। इनमें कुश्ती तैरना, जूझना डांड़ से खेना, लाठी चलाना, फुटबाल, कबड्डी, क्रिकेट, टेनिस, हाकी, रस्सा खींचना इत्यादि काफी अच्छे व्यायाम हैं, अथवा ये व्यायाम से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि इन तमाम व्यायामों में खुली हवा और परिश्रम का योग होता है एवं साथ ही साथ आनन्द भी। सिर्फ

व्यायाम से ही शरीर सुगठित होता है ऐसी बात नहीं है। किंतु आनन्द भी शरीर गठन की एक प्रधान सामग्री है। इसलिए खेल सबसे अच्छे व्यायाम हैं। कई बार इन खेलों में ही व्यायाम का काम होता है। किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता। क्योंकि अधिकतर खेलों में शरीर का व्यायाम एक सीमा तक ही होता है। ऐसी हालत में एक वक्त व्यायाम और दूसरी बार खेला जा सकता है, या पूर्ति की दृष्टि से एक-दो व्यायाम विशेष भी चुनकर किये जा सकते हैं।

[३]

व्यायाम पहली बार शुरू करने पर हमेशा धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना जरूरी है। पहले हल्का व्यायाम करके धीरे-धीरे व्यायाम की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिये। कमजोर आदमी को पहले एक-दो दंड और तीन-चार बैठक से व्यायाम प्रारम्भ करना उचित है। जो एकदम कमजोर हैं वे अपने हाथों को सीधा एवं मोड़कर व्यायाम शुरू कर सकते हैं। उसके बाद क्रमशः अभ्यास होने पर बहुत धीरे-धीरे व्यायाम की मात्रा में वृद्धि की जानी चाहिये। ऐसी कहावत है कि बछिया उठाने का अभ्यास करने से अन्त में गाय भी उठायी जा सकती है। व्यायाम करते-करते शरीर क्रमशः अधिक सबल हो जाता है तब तीन चार महीने बाद और कठिन व्यायाम किया जा सकता है। लेकिन पहले ही बहुत दंड बैठक लगाने से अथवा अत्यधिक वजन उठाने का प्रयत्न करने से भयानक रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रतिदिन का व्यायाम भी शुरू में बहुत हल्के दंड आदि से शुरू करना चाहिये एवं क्रमशः कठिन व्यायाम करके अन्त में फिर कोई हल्की-हल्की कसरत करके व्यायाम समाप्त करना जरूरी है।

थकावट होने के पहले ही हमेशा व्यायाम समाप्त कर देना उचित है। कभी भी अधिक व्यायाम न किया जावे। इस ढङ्ग से व्यायाम करना चाहिये कि व्यायाम के बाद शरीर में नये बल का सञ्चार हो। कभी भी

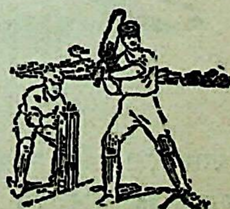
ऐसा नहीं होना चाहिये कि व्यायाम के बाद कमजोरी या थकावट मालूम हो। सुश्रुत में कहा गया है कि प्रत्येक आत्महितैषी व्यक्ति हमेशा यही चेष्टा करेंगे कि अपनी ताकत से आधा ही व्यायाम करें। किन्तु उससे अधिक व्यायाम करने पर कमजोरी ही होगी (चिकित्सित—स्थानम्, २४।२६—२७)।

व्यायाम जहाँ तक सम्भव हो हमेशा खुली हवा में ही करना चाहिये। बाहर व्यायाम करने की सुविधा न होने पर घर की तमाम खिड़कियों को खोलकर व्यायाम करना उचित है। व्यायाम करते समय जब सुविधा मिले तभी श्वास का व्यायाम करना चाहिये। जिस व्यायाम के करने में कुछ समय लगता है वही श्वास-प्रश्वास व्यायाम के लिए सबसे अधिक उपयोगी है।


टेनिस

यदि व्यायाम करते समय शरीर में जरा भी दर्द मालूम पड़े तो समझना चाहिये कि व्यायाम में क्रमशः वृद्धि (graduated) नहीं की गई है। ऐसी हालत में व्यायाम को बहुत कम कर देना चाहिये और धीरे-धीरे फिर बढ़ाना चाहिये। किंतु व्यायाम पहले पहल शुरू करने पर शरीर में कुछ वेदना तो जरूर ही होगी। उसपर ध्यान नहीं देना ही उचित है। क्योंकि व्यायाम करते-करते यह आप-से-आप चली जाती है।

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि व्यायाम बूढ़े लोगों के लिए नहीं है। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। युवक की तरह बूढ़ों के लिए भी व्यायाम समान रूप से उपयोगी है। लेकिन बूढ़े लोगों का व्यायाम उनकी ताकत के मुताबिक हल्का होना


क्रिकेट

चाहिये। वास्तव में जिस व्यायाम में शीघ्रता और तत्परता का जितना कम काम पड़ता हो तथा जिसमें धैर्य की जितनी अधिक आवश्यकता हो वह व्यायाम बूढ़ों के लिए उतना ही उपयोगी है। इसीलिए बूढ़ों के लिए टहलना ही सबसे अच्छा व्यायाम हैं और इसके विपरीत जितने भी व्यायाम हैं बच्चों के लिए वही उपयोगी हैं। इसीलिए बच्चे हमेशा भागना, दौड़ना आदि पसन्द करते हैं। प्रौढ़ लोगों को युवक लोगों की तरह ही व्यायाम करना उचित है।



फुटबॉल

स्वास्थ्यरक्षा के लिए व्यायाम जैसा प्रयोजनीय है वैसा ही रोगों में भी व्यायाम बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। वातरोग में क्रमवर्धमान व्यायाम हमेशा ही उपकारी होता है। मधुमेह रोग में परिमित व्यायाम

ग्रहण करने से पेशी के भीतर चीनी दग्ध होती है एवं स्थूलता में भी चर्बी दग्ध होती है ।

शरीर के भीतर कलेस्टरोल का सञ्चय और वृद्धि रक्तचाप रोग का एक कारण समझा जाता है। कैन्ट विश्वविद्यालय में डा० लारेन्स ने बत्तीस रोगियों पर परीक्षा करके दिखाया है कि सिर्फ एक व्यायाम से ही कालेस्टरोल का परिमाण सैकड़ा ३२ भाग घटाया जा सकता है ।

किन्तु व्यायाम अत्यन्त उपयोगी होने पर जो अत्यन्त रुग्ण हैं उन्हें व्यायाम का परित्याग करना ही उचित है। बुखार और सब प्रकार के नये रोगों में विश्राम ही सबसे बड़ी चिकित्सा है। बुखार इत्यादि रोगों में व्यायाम करने से हमेशा बुखार और अधिक बढ़ जाता है। किंतु स्वाभाविक हालत में पुराने रोगियों को हलका व्यायाम अवश्य करना चाहिये। बूढ़े लोगों की तरह ही कमजोर रोगियों के लिए भी टहलना सबसे अच्छा व्यायाम है।

अठारहवाँ अध्याय

मालिश और आरोग्य

[१]

चिरकाल से पृथ्वी के विभिन्न देशों में मालिश का उपयोग होता चला आ रहा है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि हजारों वर्ष पहले भी इसका प्रचलन था भारतवर्ष और चीन देश के निवासी कई हजार वर्षों पहले मालिश का उपयोग जानते थे। मिश्र फारस और टर्की में भी बहुत ही प्राचीनकाल से यह प्रचलित है। इस बात के बहुत-से उल्लेख हैं कि पुराने जमाने में ग्रीस तथा रोम देश के लोग इसका व्यवहार जानते थे। प्राचीन ग्रीस के लोग इसको यथेष्ट महत्व देते थे (F. B. Krumbhaar, M.D., Ph.D.—A History of Medicine, p. 197, London, 1944)। इस देश में यह एक तरफ तो आरोग्यमूलक उपचार था और दुसरी ओर विलासिता में भी समाविष्ट थी। प्राचीन रोम में भी इसका यथेष्ट प्रचलन था। रोमन सम्राट जुलियस सीजर (ई० पू० १००) के वारे में कहा जाता है कि वह स्नायुशूल के लिए रोज मालिश कराया करता था। उसके पहले भी यूरोपीय चिकित्सा प्रणाली के प्रवर्तक हिपोक्रोटस बहुत से रोगों में मालिश की व्यवस्था कर गये हैं।

इस प्रकार पुराने जमाने में पृथ्वी के सभी देशों में कम या अधिक मात्रा में यह प्रचलित थी। इसके बाद सोलहवीं शताब्दी में शरीर-विज्ञान के सम्बध में लोगों की धारणा जब उन्नति हुई तब इसका यथार्थ वैज्ञानिक मूल उन्होंने समझा। सत्रहवीं शताब्दी में जब रक्त के आवागमन सम्बन्धी खोज हुई तब मालिश की महत्ता में और भी वृद्धि हुई। आधुनिक युग में

मालिश पृथ्वी के सभी सभ्य देशों में एक प्रधान वैज्ञानिक चिकत्सा प्रणाली के रूप में स्वीकृत हुई है।

बीमारियों में तथा स्वास्थ्य के लिये मालिश इसी कारण लाभप्रद है कि इसके द्वारा शरीर में इकट्ठा विकार (foreign or pathological deposits) टूट जाते हैं और वहाँ से विदा होते हैं (Otto Glasser, Ph. D.—Medical Physics, p. 701, Chicago, 1951) तथा इसके साथ ही साथ शरीर के आत्मरक्षा सम्बन्धी यंत्र भी संजीव हो उठते हैं। मालिश के फलस्वरूप 'सारे शरीर में खून दौड़ने लगता है। रक्त जहाँ जाता है वहाँ नवजीवन लिये जाता है और लौटते समय शरीर के विभिन्न स्थानों से विकार को समेट लाकर बाहर निकाल फेंकता है। इसी कारण मालिश के फलस्वरूप यथार्थ लाभ होता हैं। यह लाभ केवल सामयिक ही नहीं होता। कुछ दिनों तक नियमित रूप से मालिश कराने से सारे शरीर में समान रूप से रक्त का आवागमन (equal distribution) स्थायी बन जाता है (Geo. A. Taylor, M.D.—Massage, p, 114)।

प्रकृति जिन यंत्रों की सहायता से शरीर के विकार को इससे बाहर निकाल फेंकती है, यदि नियमित रुप से मालिश की जाये तो उसके प्रत्येक यन्त्र सबल हो उठते हैं। कुछ दिनों तक मालिश करने से दोनों आंतों में इस प्रकार ताकत आती है कि वे ठीक समय पर शरीर से मल बाहर निकालने में सक्षम होती हैं। इसलिए मालिश कराने से कोष्ठ की सफाई के बारे में प्रायः कभी भी सोचना नहीं पड़ता। मालिश से दोनों गुर्दे (kidneys) विशेष रूप से सबल हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप वे खून से प्रतिदिन काफी मात्रा में विष छानकर शरीर से बाहर निकालने में समर्थ होते हैं। इससे पेशाब की मात्रा भी हमेशा बढ़ जाती है। यूरिक एसिड आदि विष जो पेशाब के साथ शरीर से बाहर निकलता है, उसकी भी मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

मालिश से शरीर में आक्सिजेन का ग्रहण (oxygen consumption) तथा कार्बन डाई-आक्साईड का वर्जन दोनों ही बढ़ जाते हैं।

सारे शरीर की मालिश तो बड़ी बात है। ऐसा कि सिर्फ पेट की मालिश लेने से ही १० से १५ प्रतिशत आक्सिजेन शरीर में अधिक ग्रहीत होता है और उतना अधिक कार्बन डाई-आक्साईड शरीर से बाहर निकल जाता है (William Bierman, M.D., and Sidney Licht, M D.—Physical Medicine in General Practice, p. 298 New York, 1952)।

चमड़े की राह जो जलीय पदार्थ बाहर निकलता है उसके साथ भी शरीर के अनेक विष बाहर निकला करते हैं। मालिश के परिणामस्वरूप रोमकूपों द्वारा इस जल को निकालने की क्षमता ६० प्रतिशत बढ़ जाती है (Otto Juettner, M.D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 269)। इसके अलावा मालिश के फलस्वरूप चमड़े का स्वास्थ्य विशेष रूप से उन्नत होता है और अचानक ठंड लग जाने से रोग होना असंभव हो जाता है।

शरीर के आत्मरक्षा और गठनमूलक यन्त्र इसके प्रभाव से विशेष रूप से सबल हो उठते हैं। केवल खून ही रोगों से बचाने में हमारा प्रधान सहायक है। नियमित रूप से मालिश करने से खून के सफेद और लाल रक्तकण दोनों की ही वृद्धि होती है और शरीर में खून पैदा करने की जो व्यवस्था है वह उद्दीप्त हो उठती है। मालिश के फलस्वरूप शरीर के परिपाक करनेवाले यन्त्र काफी मात्रा में पाचक रस उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। इस कारण से मालिश से पाचनशक्ति बढ़ जाती है। इसके द्वारा आँतो और शरीर के सभी यन्त्रों की पुष्टि ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इसलिए नियमित रूप से मालिश कराने से सारा शरीर ही पुष्ट हो उठता है।

यकृत की काम करने की शक्ति बढ़ाने में मालिश एक प्रधान उपाय है।

विभिन्न रूपों में यकृत शरीर की जो नियमित सेवा किया करता है, मालिश से उस क्षमता में वृद्धि हो जाती हैं। मालिश से हृदय बड़ी तेजी से सबल हो उठता है और साथ ही साथ कमजोर नाड़ियाँ पूर्णता प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार मालिश के फलस्वरूप जिस प्रकार शरीर का विकार बाहर निकाल फेंकनेवाले यन्त्र उदीप्त हो उठते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर शरीर के आत्मरक्षा और गठनमूलक यन्त्र भी सबल हो जाते हैं। इसी कारण मालिश कराने के परिणामस्वरूप रोगों के प्रतिरोध करने की शरीर की क्षमता बढ़ जाती है, बहुत-से रोग ठीक हो जाते हैं, जवानी अधिक दिनों तक बनी रहती है, बुढ़ापा रुका रहता है और लम्बी उम्र प्राप्त होती है।

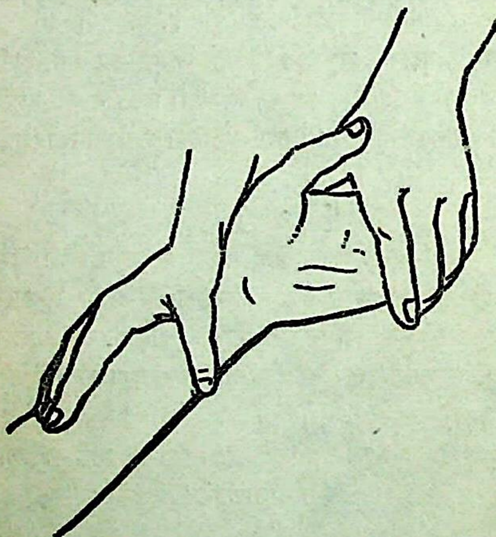
इन सब कारणों से हिन्दी में कहावत है, "सौ लड़त न एक मलत"—अर्थात् सैकड़ों पहलवान एक मालिश करानेवाले का मुकाबला नहीं कर सकते।

[२]

शरीर की मांसपेशियों के साथ खेल करने का नाम ही मालिश है। किंतु यह एक ही तरह से नहीं होता। भिन्न-भिन्न प्रकार से शरीर को थपथपाकर और चमड़े पर विभिन्न तरीकों से हाथ फेरकर मालिश की जाती है। कभी चमड़े पर केवल हाथों को रगड़ना होता है तो कभी इसपर केवल कम्पन उत्पन्न करना होता है। कभी हल्के हाथों थपथपाना होता है। इन सभी विभिन्न प्रणालियों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति की चेष्टा की जाती है और इसी प्रणाली-भेद के कारण इसके अलग अलग नाम हैं।

किंतु मालिश के असंख्य भेद होते पर भी इसे हम मुख्य पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं। मालिश को इन विभिन्न विधियों का नाम घर्षण (friction), दलन (kneading), कम्पन (vibration), थपकी (Percussion) और संधिसंचालन (joint movement) है।

मालिश की इन विभिन्न प्रणालियों में घर्षण ही सर्वश्रेष्ठ विधि है। एक ही रोगी को विभिन्न प्रकार से मालिश करने पर हरेक प्रकार की मालिश के बाद एक बार घर्षण (रगड़) कर लेना आवश्यक है। एक या दोनों हाथों को किसी अंग पर रखकर चमड़े पर जरा दबाकर इसे सामने की तरफ रगड़ने को घर्षण कहते हैं। इस प्रकार हाथ चलाते समय हमेशा हाथ को घुमाते-घुमाते आगे बढ़ाना चाहिये। इसकी गति कुछ अंशों में पृथ्वी की गति की तरह होनी जरूरी है। पृथ्वी जिस प्रकार चक्कर काटते-काटते आगे बढ़ती है ठीक उसी प्रकार हाथ को भी घुमाते-घुमाते

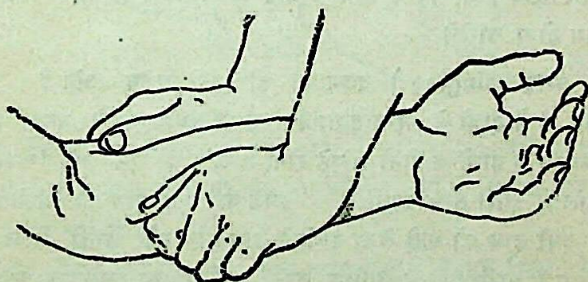


घर्षण (friction)

ऊपर की तरफ ले जाना चाहिये। घर्षण करते समय हमेशा इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि मानो इस घर्षण द्वारा खून को ठेलकर नीचे से हृदय की ओर भेजा जा रहा हो। घर्षण के अन्त में हमेशा हाथ का जोर जरा बढ़ जाना उचित है। पर घर्षण कभी भी बहुत जोर से नहीं होना

चाहिये तो भी घर्षण करते समय हमेशा ही हाथ की गति तेज होनी उचित है। किसी अंग का घर्षण करते समय एक या दोनों हाथ रोगी के शरीर के साथ लगे रहने चाहिये। पर हड्डियों आदि को पार करते समय रोगी को तकलीफ न पहुँचे व सावधानी से शरीर का हल्का स्पर्श हो इस ओर भी ध्यान देना उचित है। हर वार के घर्षण के अन्त में हाथ जब अंग की अन्तिम सीमा पर पहुँच जाय, तो हाथ को फिर उल्टा न घुमाकर उसे शून्य में ले जाकर फिर घर्षण शुरू करना चाहिये। जिस किसी अवस्था मे ही मालिश करनी हो, उसी में ही घर्षण का प्रयोग किया जा सकता है। तो भी गठिया, ग्रंथिवात (gout) लकवा (Paralysis), अंगों का सूख जाना (atrophy), गाँठों की सूजन और स्नायुशूल आदि में घर्षण से बहुत ही लाभ होता है।

घर्षण के बाद ही दलन (kneading) को स्थान दिया जा सकता है। शरीर की विभिन्न मांसपेशियों को पकड़कर दबाने का नाम



गभीर दलन (deep kneading)

ही दलन है। यह अगभीर और गभीर दो तरह का हो सकता है। इसके दहन में दोनों हाथों की उँगलियों से किसी स्थान के केवल चमड़े को उठाकर व पकड़कर उँगलियों को चलाना होता है। इसे अगभीर दलन (superficial kneading) कहा जा सकता है। इसमें ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, वृत्ताकार ढंग से और कभी कभी पास पास से कोण,

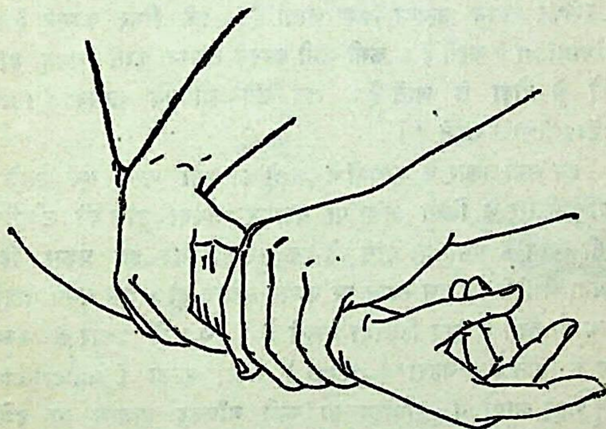
बनाते हुए जाना होता है। पीलिया और शोथ रोगों में इसके प्रयोग से विशेष लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

गंभीर दलन कई प्रकार का होता है। हाथ-पाँव के दबाने को भी इसी के अन्तर्गत रख सकते हैं। दोनों हाथों से हाथ या पाँव आदि की मांसपेशियों को खींचकर पकड़ करके दबाने को गंभीर दलन (deep kneading) कहते हैं। घर में सभी हाथ पाँव दबवाते हैं। किन्तु नियमानुसार इसी को करने के लिये मांसपेशियों को दोनों हाथों से पहले मुट्ठी में पकड़कर जोर से दबाना होता है। इसके बाद खींचकर प्रसारित करने की चेष्टा करनी होती है। जब कभी इसका प्रयोग हड्डी पर करना होता है, तब हड्डी से मांस अलग करने की सी चेष्टा करनी होती है। इसी प्रकार हरेक स्थान को धीरे-धीरे तीन से चार बार तक दबाकर उसके बाद उसके पास के दूसरे स्थान की मांसपेशी को खींचना चाहिये। किंतु दलन के समाप्त होने के साथ ही उस अंगविशेष पर दो-तीन बार घर्षण (friction) का प्रयोग करने के बाद अन्य अंग पर इस प्रक्रिया का प्रयोग होना चाहिये।

मरोड़ (ringing) दलन का ही एक विशेष अंग है। इसका प्रयोग दोनों हाथों से करना होता है। इसका प्रयोग करते समय मालिश करनेवाले के हाथों के दोनों अंगूठे रोगी के अंग के एक ओर तथा अन्य उँगलियाँ दूसरी तरफ रहती हैं। इसके बाद एक हाथ को आगे बढ़ाकर और दूसरे हाथ को पीछे लेकर रोगी के हाथ-पाँव और छाती आदि अंगों को क्रमशः बारी-बारी से मालिश करना चाहिये। साधारणतया इसे बगल या उरुसंधि से आरंभ करके हाथ या पैरों की एड़ी तक चलाना होता है। किंतु नीचे से ऊपर की ओर इसका प्रयोग करने में कोई आपत्ति नहीं। मरोड़ का प्रयोग कभी भी जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। इस बात का ध्यान रहना जरूरी है कि इस प्रकार अंग दबाते समय रोगी को कोई कष्ट न होने पावे।

पीसने (rolling) को भी दलन की ही श्रेणी में रख सकते हैं।

इसका प्रयोग साधारणतया हाथ और पैरों पर ही किया जाता है। रोगी के हाथों को कंधे पर रखकर या किसी प्रकार ऊँचा करके पकड़कर बगल से कुहिनी की ओर आरम्भ करना होता है। हाथ की उँगलियों का सीधा रखकर उनके द्वारा मांसपेशी के ऊपर से हड्डियों को दबाना होता है। इसके बाद दोनों हाथों को एक ही साथ आगे या पीछे करके साथ-साथ



रोड़म (ringing)

ऊपर से नीचे की ओर हिलाना-डुलाना होता है। सभी प्रकार की मालिशों की तरह ही इसके अन्त में भी दो-तीन बार नीचे से ऊपर की तरफ घर्षण का प्रयोग करना चाहिये।

घर्षण की तरह ही दलन भी बहुत अवस्थाओं में व्यवहृत किया जाता है। तो भी स्नायविक दुर्बलता, अंगों के सूखने, लकवा, चर्बी की अधिकता, कोष्ठबद्धता, गठिया, स्नायुशूल, साइटिका आदि में दलन से विशेष लाभ पहुँचता है।

मर्दन-चिकित्सा में कम्प (vibration) का एक विशिष्ट स्थान है। उँगलियों, हथेली या सारे हाथ से शरीर के विभिन्न स्थानों में कम्पन उत्पन्न किया जाता है। जब केवल उँगलियों से ही कम्पन उत्पन्न किया

जाता है, तब उसे उँगली कम्पन (point vibration) कहते हैं। जब हथेली से यह प्रयोग किया जाता है, तब हाथ कंपन (flat handed vibration) कहते हैं। कभी-कभी हाथ की मुट्ठी से शरीर के विभिन्न भाग को पकड़कर दवा करके कम्पन उत्पन्न किया जाता है। इसे डोलन (shaking) कहते हैं। कभी-कभी हाथ को एक ही स्थान पर रखकर कम्पन उत्पन्न किया जाता है। इसे स्थिर कम्पन (static vibration) कहते हैं। कभी-कभी कम्पन उत्पन्न करते समय हाथ को तेजी से दौड़ा ले जाते हैं। तब उसे गतिमय कम्पन (running vibration) कहते हैं।

इन सभी प्रकार के कम्पनों में हथेली को कड़ा करके एवं उसके द्वारा रोगी के शरीर के किसी अंश पर दबाकर अथवा हाथ की उँगलियों से किसी स्थान के चमड़े या मांस को पकड़कर हाथ को इस प्रकार हिलाना डुलाना चाहिये कि उस स्थान पर कम्पन उत्पन्न हो। ऐसे समय जहाँ तक संभव हो तेजी से हाथ हिलाना जरूरी है। ये सभी प्रकार के कम्पन दो तरह के होते हैं—गहरा (deep) और हल्का (superficial)। किंतु गहरे कम्पन में साधारणतया मुठ्ठी बाँधकर हाथ से या हथेली से शरीर के किसी अंश को विशेष रूप से खींच और पकड़ करके जोर से कम्पन उत्पन्न करना होता है।

स्नायुओं को उद्दीप्त करने में गहरा कम्पन विशेष सहायता पहुँचाता है। इसी कारण स्नायविक दुर्बलता की यह एक प्रधान चिकित्सा है। भीतर के विभिन्न यंत्रों पर इसके प्रयोग से ये यंत्र विशेष रूप से उद्दीप्त हो उठते हैं। इसी कारण छाती, पेट पाकस्थली और यकृत आदि यंत्रों पर विशेष रूप से इसका प्रयोग किया जाता है। रक्त हीनता में हाथ और पाँव पर इसका प्रयोग आवश्यक है। इससे अस्थिमज्जा के भीतर रक्त उत्पन्न करने की व्यवस्था में उन्नति होती है। हल्का कम्पन उत्तेजना के स्थान पर स्नायुओं को स्निग्ध करता है। इसी कारण स्नायुशूल आदि में इसका उपयोग करना होता है। पेट फूलना रोकने का यह एक उत्तम

साधन है (Mary V. Lace—Massage and Medical Gymnastics, pp. 29—31)।

थपकी (percussion) भी एक प्रकार की उत्तम मालिश है। मालिश की इस विधि पर हमेशा ही जोर देना चाहिये। दोनों हाथों या उँगलियों से आरामप्रद ढङ्ग से शरीर के विभिन्न स्थानों को थपथपाने को

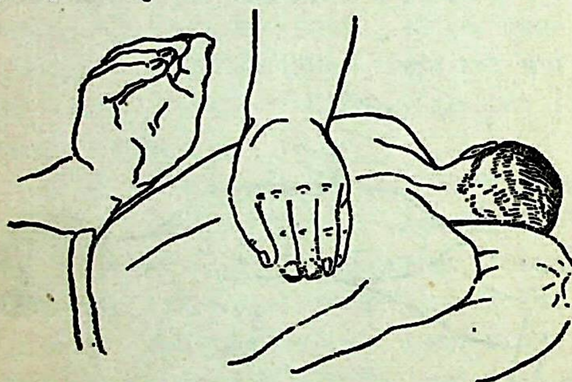


खड़ी थपकी (hacking)

थपकी कहते हैं। इसके कई भेद होते हैं। हाथ को फैलाकर तथा उसे कड़ा करके उसके द्वारा बहुधा शरीर के मांसल स्थान के ऊपर थपथपाते हैं। इसे थपकी (spatting) कहते हैं। स्नान करने के बाद शरीर को शीघ्र गरम करने के लिए नितम्ब आदि स्थानों पर इसका प्रयोग करने से शरीर शीघ्र गरम हो उठता है।

कभी-कभी दोनों हाथों को सीधा खड़ा करके उनके दोनों बगल से थपथपाया जाता है। तब इसे खड़ी थपकी (hacking) कहते हैं। इसका प्रयोग करते समय एक प्रकार का मधुर शब्द होता है। हड्डी पर इसका कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

कभी-कभी दोनों हाथों को कटोरे की तरह करके थपथपाया जाता है। तब उसे कटोरी थपकी (clapping) कहते हैं। इसमें दोनों हाथों को एक साथ चलाना होता है। एक हाथ के गिरने के साथ ही साथ दूसरा हाथ उठ जाता है। इसका प्रयोग साधारणतया मांसल स्थानों पर होता है। किन्तु अजीर्ण रोग में पेट पर इसका प्रयोग करने से बहुत



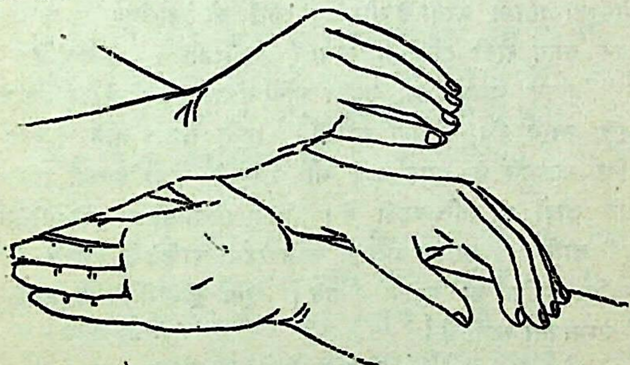
कटोरी थपकी (clapping)

लाभ होता हैं। अमेरिका के एक डाक्टर अजीर्ण के रोगियों को गारन्टी देकर चंगा किया करते थे। रोगियों से वे प्रतिज्ञा करा लिया करते थे कि उनकी चिकित्सा पद्धति की बात वे किसी से कभी भी नहीं कह सकेंगे। उनकी चिकित्सा से बहुतों का लाभ हुआ और इस चिकित्सा से उन्होंने बहुत धन कमाया। अन्त में एक दिन यमराज के यहाँ से उनका बुलावा आया। तब मरने के पहले वे कहते गये कि उनकी चिकित्सा और कुछ नहीं केवल सुबह-शाम प्रतिदिन पेट पर कटोरी थपकी का प्रयोग मात्र थी (Alac—Everyday Ailments and Their Treatment at Home p. 51)।

कभी-कभी दोनों हाथों को पंजे की तरह करके उंगलियों के द्वारा शरीर पर आघात किया जाता है। इसे ठोकना (tapping) कहते

हैं। इसका प्रयोग करते समय दोनों हाथों को एक साथ चलाना आवश्यक है तथा दोनों हाथों को आगे और पीछे संचालन करने के साथ साथ हाथ के दोनों पंजों को बार-बार उठाना और गिराना चाहिये।

मुक्की (beating) थपकी का एक प्रकार भेद मात्र है। इसमें दोनों हाथों की आधी मुट्ठी बाँधकर उससे शरीर के मांसल स्थान पर आघात करना होता है। इस समय दोनों हाथों को ऊँचा करके रखना चाहिये।



ठोकना (tapping)

दोनों हाथों को खड़ा रखकर जब उनसे मुक्की मारी जाती है तब इसे खड़ी मुक्की (pounding) कहते हैं। इसमें दोनों हाथों की मुट्ठी नहीं बंधी होनी चाहिये, अधखुली अवस्था में रखना ठीक होता है।

इन विभिन्न प्रकारों की थपकी के प्रयोग से शरीर को तरह-तरह से लाभ पहुंचता है। खासकर पीलिया रोग, पुराना स्नायुशूल, पाकस्थली की कमजोरी, कोष्ठबद्धता, स्त्रियों की मासिक रुकावट, पुरानी ब्रोंकाइटीज एवं मूत्राशय तथा प्रजनन यन्त्रों की कमजोरी आदि में इस प्रकार की मालिश से विशेष रूप से लाभ पहुंचता है। नितम्ब पर मुक्की और थपकी के प्रयोग से कमजोर प्रजनन यन्त्रादि विशेष रूप से बलवान हो उठते हैं। इसी कारण पुराने रोमवासी स्त्रियों का बन्ध्यापन और पुरुषों की

जननेन्द्रिय की अक्षमता को दूर करने के लिये नितम्ब पर मुकी का प्रयोग किया करते थे (J. H. Kellogg, M.D.—The Art of Massage, p. 93)।

संधि सन्चालन (joint movement) भी मालिश का एक प्रधान अंग है। साधारणतया इसका दो तरह से प्रयोग किया जाता है कभी-कभी मालिश करनेवाला रोगी के विभिन्न जोड़ों को इच्छानुसार टेढ़ा और खींचातानी करता है और कभी अंगों को टेढ़ा-मेढ़ा या खींचातानी करते समय रोगी हल्की-सी वाधा (resistance) डालता है। जो रोगी बिल्कुल कमजोर हों, उनका सन्धि संचालन (जोड़ों का चलाचल) पहले बताये ढंग से होना चाहिये। किन्तु ताकत आने के साथ-साथ सन्धि सञ्चालन के समय उन्हें भी धीरे-धीरे बाधा डालना उचित है। इससे जोड़ों की शक्ति बढ़ती है। किन्तु हमेशा ही यह धीरे-धीरे बढ़ायी जानी चाहिये। पर इस बात पर ध्यान रहना चाहिये कि रोगी कभी भी अत्यधिक शक्ति का प्रयोग न पावे। ऐसा होने से विशेष हानि होने की सम्भावना रहती है।

मालिश की अन्यान्य विधियों की तरह सन्धि सञ्चालन भी विभिन्न प्रकार से किया जाता है। इनमें सन्धि घुर्णन (गाँठ घुमाना—rotation), सन्धि प्रसारण (stretching) और सन्धिभंग (flexion), मुख्य हैं। हाथ और पैरों की अंगुलियों के जोड़ों को मालिश से पहले ही कई वार घुमाने-फिराने के वाद उन्हें खींचना चाहिये और दूसरे बड़े-बड़े जोड़ों को भी साधारणतः मालिश के अन्त में घुमाना-फिराना तथा खींचना होता है। कलाई, कुहनी, हाथ के जोड़, पैरों के जोड़, उरुसंधि जानुसन्धि आदि को सञ्चालन करना होता है। संधि सञ्चालन के समय विभिन्न जोड़ों को बहुत धीरे धीरे खींचना चाहिये। किन्तु खींचने के बाद ही तुरन्त जोड़ों को छोड़ दिया जाता है। कलाई, कुहनी और पैरों के घुटने तथा उरुसंधि हमेशा मालिश के वाद मोड़ लेने चाहिये। मोड़ने के पहले उन्हें खींचकर फैलाकर मोड़ना उचित है। जोड़ों को मोड़ते समय

रोगी चाहे तो बाधा (resistance) डाल सकता है। संधि संचालन हमेशा जोड़ों के स्वास्थ्य को उन्नत करता है। विभिन्न पुराने रोगों में जब जोड़ों के हिलने-डुलने में कष्ट होता है, तब संधि संचालन से बड़ा लाभ होता है। इसी कारण वातरोग और ग्रन्थिवात आदि में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। परंतु बहुत अधिक कमजोरी होने पर जोड़ों की नई सूजन में, कठिन हृदय रोग या रक्तचाप में संधि सचालन के समय रोगी द्वारा किसी प्रकार की बाधा डालना उचित नहीं।

[२]

मालिश आरंभ करते समय सर्वप्रथम हाथ और पैरों की मालिश करनी चाहिये। उसके बाद धीरे-धीरे धड़ (trunk) की ओर बढ़ना उचित है। हाथ और पैरों की मालिश समाप्त हो जाने पर छाती, पेट, यकृत, पैरों का पिछला भाग, नितम्ब और पीठ की बारी-बारी से मालिश होनी चाहिये।

इन सभी अंगों की मालिश करते समय जिस स्थान पर जिस प्रयोग की सुविधा हो उसी का उस स्थान पर प्रयोग करना जरूरी है। हाथों की मालिश में पहले हथेली की मालिश करनी होती है। पहले हरेक अंगुलि को दो तीन बार घुमा-फिराकर उसे दो-तीन बार खींचना चाहिये। इसके बाद मणिबन्ध (कलाई) को तीन-चार बार चारों ओर घुमाकर तीन-चार बार खींचा जाना उचित है और इसके बाद तीन-चार बार आगे पीछे मोड़ना चाहिये। उसके बाद रोगी की सभी उँगलियों को एक साथ पकड़कर पंजे पर सुखप्रद ढंग से दो-तीन बार दबाना चाहिये। इसके बाद रोगी के हथेली को फैलाकर उसके दोनों ओर दोनों हाथ रखकर कुछ क्षण तक उसको घर्षण करने से ही पंजे की मालिश की समाप्ति हो जाती है।

इसके बाद बाहु की मालिश शुरू करनी चाहिये। इस समय पहले कलाई से कंधे तक नीचे से ऊपर की ओर कई बार घर्षण करना उचित है। उसके बाद इस भाग पर अगभीर दबाव (superficial

kneading), ठोकर (tapping), कम्पन (vibration), गभीर दबाव (deep kneading), खड़ी मुक्की (pounding), पीसन (rolling), मरोड़ (ringing) खड़ी थपकी (hacking) और सधि संचालन (joint movement) का बारी-बारो से प्रयोग होना चाहिये। किंतु एक ही समय विभिन्न प्रकार की मालिश करते समय हर नये प्रकार का प्रयोग करने के बाद दो तीन बार उस अग का घर्षण करके दूसरा प्रयोग आरंभ करना उचित है।

इसी प्रकार बारी-बारी से दोनों हाथों की मालिश करने के बाद पैरों की मालिश करनी होती है। पैरों की मालिश भी ठीक हाथों की मालिश के समान ही होनी चाहिये।

छाती की मालिश करते समय भो अन्य स्थानों ही की तरह घर्षण के साथ मालिश आरंभ करनी होती है। छाती की मालिश की एक विशेष पद्धति है। रोगी की छाती के बगल में दाहिनी ओर खड़े होकर छाती का घर्षण करना होता है। पहले रोगी की छाती पर दोनों हाथ रखकर एक हाथ बगल में जहाँ तक आये वहाँ तक दबाये हुए फैलानो चाहिये और दूसरे हाथ से पीछे की तरफ जितना जा सके उतनी दूर तक ले जाना चाहिये। फिर हाथों को बिना उठाये ही प्रत्येक हाथ को फिर छाती के एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाना चाहिये। इसो प्रकार गले से लेकर हड्डियों के अन्तिम सिरे तक बार-बार घर्षन करना आवश्यक है। उसके बाद रोगी की छाती पर अंगुलियों का दवाव, थपकी, कम्पन खड़ी थपकी आदि का व्यवहार करना चाहिये। किंतु रोगी का वक्षस्थल बहुत मांसल होने पर ही विभिन्न प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती है और सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार की मालिश इस ढंग से होनी चाहिये कि रोगी के शरीर में किसी प्रकार का आघात न लगे।

छाती के बाद पेट की मालिश होनी चाहिये। पेट को मालिश करने का यह नियम है कि वह भोजन के कम से कम तीन घंटे बाद की जाये। इस समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि मूत्राशय

खाली रहे। रोगी की दोनों जांघों के नीचे एक तकिया रखकर दोनों पावों को ऊँचा करके यह मालिश करना उचित है। इस मालिश के पहले रोगी को चाहिये कि वह कई बार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम कर ले। पेट की मालिश घर्षण से आरम्भ होनी चाहिये। पहले ही पेट की दाहिनी ओर के नीचे से आरम्भ करके हाथ को घुमाते हुए नाभी के चारों ओर घर्षण करना आवश्यक है। साधारणतया जिस मार्ग से बड़ी आँत (colon) गई है, उसी मार्ग का अनुसरण कर घर्षण करना चाहिये। किन्तु ऐसा करते समय हाथ की उँगलियों को इस प्रकार इधर-उधर सञ्चालित करना होता है कि जिससे रोगी के पेट के सारे भाग के ऊपर ही हाथ चला जाता है। घर्षण करने के बाद रोगी के पेट पर उँगलियों का दबाव, ठोकर, कम्पन, गहरा दलन, खड़ी मुक्की, कटोरी थपकी और खड़ी थपकी आदि का प्रयोग करना चाहिये। पेट पर गहरे दलन का प्रयोग करते समय आटा जिस प्रकार गूंधा जाता है, ठीक उसी भाँति सारे पेट की मालिश होनी चाहिये। पर यह आरामदेह होना जरूरी है। दाग्नि (slow digestion) और कोष्ठबद्धता को दूर करने का यह आश्चर्यजनक उपाय है।

किन्तु साधारणतः पेट पर कभी भी जोर से मालिश करना उचित नहीं। जोर लगाकर मालिश करने से अधिक लाभ होगा ऐसा सोचना गलत है। क्योंकि पेट पर मालिश करने से जो लाभ होता है वह प्रायः सम्पूर्ण रूप से स्नायविक प्रतिक्रिया (reflex action) से होता है। (James B. Mennell, M.A., M.D., B.C.—Physical Treatment by Movement, Manipulation and Massage, p. 7)। पेट के भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थिर कम्पन के प्रयोग से भी बहुत लाभ पहुंचता है। पेट के वायु विकार को दूर करने का यह बड़ा ही अच्छा उपचार है। इसके अलावा पेट की उपरोक्त सभी मर्दन-विधियाँ आँतों को परिपाक और परिशोधन की क्षमता में वृद्धि करती हैं। किंतु कई अवस्थाओं में पेट की

मालिश बिलकुल मना है। पतले दस्त, आँव गिरने, पाकस्थली के घाव रक्तचाप में अत्यधिक वृद्धि होने पर, अन्त्रपुच्छ की सूजन (appendicitis), पेट में किसी प्रकार की गांठ (tumour) होने, हार्निया रोग और स्त्रियों के रजःस्वला होने तथा गर्भ की अवस्था में पेट की मालिश वर्जित है।

यकृत की मालिश आरम्भ करने के पहले भी पांच-छः बार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम कर लेना जरूरी है। उसके बाद यकृत पर हाथ घुमा-घुमाकर घर्षण करना चाहिये। पेट की मालिश से ही यकृत की कुछ अंशों में मालिश हो जाती है। तो भी यकृत को पूरी तरह से प्रभावित करने के लिए यकृत के चारों ओर और पीठ के कुछ भाग तक मालिश करनी जरूरी है। अन्य स्थानों की मालिश की ही भाँति यकृत पर घर्षण के बीच-बीच में थपकी, उँगलियों का दबाव, कम्पन, खड़ी मुक्की और खड़ी थपकी आदि का प्रयोग करते जाना चाहिये। यकृत की मालिश के समय दोनों पैरों को उठाकर सिर को एक उँचे तकिये पर रखना चाहिये। नियमानुसार यकृत की मालिश करने से पतलापन, खून की कमी, पुराना पीलिया रोग और यकृत की कमजोरी आदि में बहुत ही लाभ पहुँचता है। किंतु यकृत के फौड़ा या यकृत के कैन्सर में इसका प्रयोग बिलकुल नहीं होना चाहिये।

सामने की मालिश समाप्त हो जाने के बाद रोगी को उलटा लिटा देना जरूरी है। तब दोनों पैरों के पिछले भाग पर भी ठीक सामने की ही तरह मालिश करके नितम्ब (loins) की मालिश आरम्भ करनी चाहिये। पहले ही नितम्ब पर घर्षण का प्रयोग होना उचित है। इस समय दोनों नितम्बों पर दोनों हाथों को रखकर हाथ घुमा-घुमाकर इस प्रकार रगड़ना चाहिये कि समस्त नितम्ब लाल और गरम हो उठे। दूसरे अंगों की मालिश के ही समान घर्षण के साथ-साथ उस पर थपकी आदि सारे प्रयोगों का व्यवहार होना जरूरी है। इसके आलावा मुक्की आदि प्रबल मालिश के लिए यह सबसे अधिक उपयुक्त अंग है। नितम्ब और जांघों की

मालिश में काफी जोर लगाना चाहिये।

पिछले भाग की मालिश में घर्षण का प्रयोग विशेष स्थान रखता है। पीठ की मालिश में यह हमेशा ऊपर से नीचे की ओर होना चाहिये। सबसे पहले रोगी के पैरों की ओर मुँह करके खड़े होकर मष्तिस्क के नीचे से आरम्भ करके मेरुदण्ड के ऊपर से इसके अन्तिम भाग तक कई बार हाथ चलाना (stroke देना) चाहिये। हाथों को बार-बार शून्य में उठाकर उनके द्वारा दबाव के साथ क्षण भर के लिये ऊपर से नीचे की ओर घर्षण करने से ही यह प्रयोग हो जाता है। यह भी एक प्रकार के मालिश ही है। आघात के समाप्त करने के बाद मेरुदण्ड के पास दोनों हाथों को रखकर दोनों हाथों को घुमाते हुए कंधे के पास से नितम्ब तक बराबर चलाना चाहिये। उसके बाद रोगी के दोनों पंजरों के दोनों ओर हाथ रखना होता है। पीछे दोनों हाथों को घुमाते हुए पञ्जरों की गति का अनुसरण करके मेरुदण्ड के पास तक लाकर समाप्त करना उचित है। इसी प्रकार नितम्ब तक दोनों हाथों को चलाना चाहिऐ। इसके बाद तर्जनी और मध्यमा दोनों उँगलियों को मष्तिस्क के नीचे रखकर गरदन के पिछले भाग से मेरुदण्ड के अन्तिम भाग तक बार-बार खींचना होता है। इस समय मेरुदन्ड के दोनों ओर उँगलियों से जरा जोर से दबाना चाहिये। इसके साथ रोगी के पिछले भाग पर थपकी, उँगलियों का दबाव, कम्पन, गहरा दलन, मुक्की और खड़ी थपकी आदि का व्यवहार करना आवश्यक है (J. H. Kellogg, M.D.—Art of Massage, pp, 120—7)।

साधारण अवस्था में इन सभी अङ्गों की मालिश को ही सारे शरीर की मालिश कहते हैं।

[४]

किंतु यह बात भी नहीं है कि नियमानुसार मालिश करने से ही हमेशा लाभ होगा। मालिश करते-करते हाथों के अभ्यस्त हो जाने पर ही मालिश से असली लाभ हो पाता है

मालिश करनेवाले का स्वास्थ्य बहुत अच्छा होना आवश्यक है। किसी रोगी द्वारा मालिश कराने से किसी नये रोग उत्पन्न हो जाने की भी संभावना रहती है। जिनके हाथों से स्वभावतः अधिक पसीना आया करता हो वे मालिश कराने योग्य नहीं। मालिश करानेवाले का हाथ यदि कोमल, सूखा, और समशीतोष्ण हो तो उसे आदर्श हाथ कह सकते हैं।

नये मालिश करनेवाले लोग मालिश करते समय साधारणतया अत्यधिक जोर दिया करते हैं। यह मालिश का एक दोष है। मालिश करते समय कभी भी अत्यधिक शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो मालिश करने में पटु हैं वे मालिश करते समय कभी भी अधिक जोर नहीं लगाते और बहुत ही कम शक्ति खर्च करते हैं (Goe. H. Taylor, M.D.—Massage, p. 257)।

सभी रोगियों को भी एक समान जोर देकर मालिश नहीं की जा सकती। कमजोर रोगी की मालिश हमेशा खूब हल्के हाथ से होनी चाहिए। जिन रोगियों की मालिश पहले पहल की जावे उन्हें भी दो-एक दिन तक हल्की मालिश ही लेनी चाहिये। इसके बाद मालिश का अभ्यास बढ़ जाने के बाद नियमानुसार मालिश होनी उचित है।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार अधिक मालिश भी उचित नहीं। मालिश हमेशा लाभदायक होने पर भी इसका अत्यधिक प्रयोग कभी भी अच्छा नहीं। बच्चों और बूढ़ों का शरीर जल्दी ही गरम हो उठता है। इसी कारण बच्चे और बूढ़ों की बहुत थोड़े समय तक मालिश करनी चाहिये। सबल व्यक्तियों की मालिश भी अधिक नहीं होनी चाहिये। उनका चमड़ा उससे उत्तेजित (irritated) हो सकता है। साधारणतया यकृत या पेट आदि केवल एक अङ्ग की मालिश दश से पन्द्रह मिनट तक की ही होनी उचित है। परन्तु सारे देह की मालिश के लिए आधे घंटे से एक घन्टे तक समय की आवश्यकता पड़ती है (Otto Juettner, M.D. Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 270)।

मालिश के समय रोगी के शरीर को बिलकुल ढीला कर लेना आवश्यक है (American Medical Association—Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 152, Philadelphia, 1950)। इसी कारण सारे शरीर को ढीला करके बिस्तरे पर पड़े रहना चाहिये। मालिश के समय शरीर को ढीला कर लेने से बहुत ही अधिक लाभ पहुँचता है।

साधारणतया सूखे हाथों से मालिश किया जाता है। परन्तु यदि रोगी बहुत ही कमजोर हो या उसका चमड़ा खुरदरा हो अथवा रोगी शिशु या अत्यन्त वृद्ध हो तो उनकी मालिश तेल से की जा सकती है। इससे शरीर बड़ी फुरती से पुष्ट होता हैं। हम जो भोजन करते हैं वह जिस प्रकार हमारे शरीर के काम आता है उसी प्रकार चमड़े पर तेल मालिश भी बहुत कुछ शरीर के काम आती है। जिन लोगों का यकृत खराब हो, उन्हें कभी भी काफी मात्रा में तैल जातीय पदार्थ खाना उचित नहीं। पर रोजाना शरीर में तेल की मालिश करके वे बहुत ही लाभ उठा सकते हैं। इससे परिपाक यंत्रों को परिश्रम नहीं करना पड़ता परन्तु शरीर को आवश्यक चर्बी प्राप्त हो जाती है। हमारे आयुर्वेद में लिखा है, 'घृतात् अष्ट गुणं तेलं, मर्दनात् न तु भक्षणात्"—घी से तेल आठ गुणा लाभदायक है, किंतु उसे खाने से नहीं, मालिश करने से होता है। साधारणतया बच्चों और क्षीण शरीरवाले व्यक्तियों को तेल की मालिश से अधिक लाभ पहुंचती है। किंतु मालिश में तेल का इस्तेमाल करना हो पड़ेगा ऐसी कोई बात नहीं (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 8, p. 376, London, 1951)।

मालिश के लिये साधारणतया जैतून का तेल, सरसों का तेल, तिल का तेल या कोकोजेम का व्यवहार किया जाता हैं। इनमें जैतून का तेल सबसे बढ़िया होता है। यदि रोगी कफ जातीय रोग का शिकार हो तो उसके शरीर में कभी कोकोजेम का व्यवहार नहीं होना चाहिये, बल्कि उसके बदले सरसों या काड लिवर ऑयल का व्यवहार होना आवश्यक है।

किन्तु कड़े मिजाजवाले लोगों को कोकोजेम की मालिश से ही लाभ पहुंचता है।

किसी किसी अवस्था में मालिश के लिए पाउडर का व्यवहार किया जाता है, किंतु इससे लोमकूपों के बन्द हो जाने से लाभ के बदले हानी ही होती है (Beatrice M. Goodall Copestake—The Theory and Practice of Medical Gymnastics, p 7)। यदि रोगी को बहुत पसीना आता हो तो गीला किया हुआ परन्तु खुब अच्छी तरह निचोड़े हुए गमछे से शरीर को खूब पोंछकर मालिश की जा सकती है ।

मालिश करते समय हमेशा रोगी के शरीर को गरम रखने की आवश्यकता है। इसी कारण गर्मी के दिनों को छोड़कर अन्य दिनों में रोगी के गले तक सारे शरीर को एक कम्बल या बिछौने की चादर से ढके रखना आवश्यक है। खासकर जाड़े के दिनों और वर्षा के समय हमेशा इस नियम का पालन होना चाहिये। इस अवस्था में हर बार रोगी के शरीर के केवल एक-एक अङ्ग को खोलकर मालिश करना उचित है और मालिश हो जाने पर फिर उस अङ्ग को पहले की ही तरह ढक देना चाहिये। ऐसा करने से रोगी को ठंड नहीं लग सकती। गर्मी के दिनों को छोड़कर और दिनों में रोगी को कमी-खुली जगह में मालिश नहीं करनी चाहिये। पर मालिश के समय घर के दरवाजे एवं खिड़कियों को खुला रखना उचित है। पर इस अवस्था में इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि हवा का झोंका रोगी को न लगे ।

साधारणतया मालिश के बाद स्नान कर लेना उचित है। ऐसा करने से स्नान से बहुत लाभ पहुंचता है। क्योंकि स्नान हमेशा शरीर को गरम करके ही करना चाहिये। स्नान के बाद भी सूखी मालिश द्वारा शरीर को फिर गरम कर लेना उचित है ।

[५]

मालिश से जिस प्रकार स्वास्थ्य में सुधार होता है, उसी प्रकार इससे

बीमारियाँ भी ठीक की जा सकती है।

पुराना अजीर्ण रोग किसी भी प्रकार जल्दी अच्छा नहीं होना चाहता। किंतु यदि नियमानुसार पेट की मालिश की जाये तो परिपाक क्षमता बढ़ जाती है और अजीर्ण धीरे-धीरे कम हो जाता है। जब पाकस्थली फूल आती है या पाकस्थली और आँतें आदि झूल पड़ती हैं तब कमजोर यंत्रों को फिर से अपनी असली हालत में वापस आने में मालिश से बढ़कर दूसरा कोई उपचार ही नहीं।

पित्त-पथरी का भी यह एक बढ़िया इलाज है। पित्त-पथरी में पित्तकोष को खाली करना ही मुख्य बात है। पित्तकोष की मालिश से पित्त नीचे उतरकर आसानी से आँतों में चला जाता है। इसी कारण मालिश से पित्त-पथरी रोग में बड़ा ही फायदा होता है।

सभ्य समाज में आये दिन ऐसे बहुत ही कम आदमी हैं जो कब्जियत के शिकार न हों। पर केवल पेट की मालिश से ही पुरानी से पुरानी कब्जियत दूर हो सकती है। क्योंकि आँतों की कृमिगति को स्थायीरूप से बढ़ने में मालिश से बढ़कर निर्दोष उपाय बहुत ही कम हैं।

अर्श (बवासीर) रोग में मालिश से विशेष लाभ पहुंचता है। इस रोग में यकृत और पेट की मालिश के साथ-साथ मल्द्वार की भी मालिश जरूरी है। दिन में दो बार पाखाना जाने के बाद मलद्वार में क़रीब एक इञ्च तक उँगली घुसाकर ऊपर से पानी डालकर इस स्थान को साफ करने के साथ-साथ आधे मिनट तक घर्षण करना चाहिये।

विभिन्न स्नायविक रोगों में मालिश से बहुत ही लाभ होता है। अनिद्रा रोग में मालिश ही एक प्रधान चिकित्सा है। बहुत अवस्थाओं में केवल पैरों को दबाने मात्र से ही थोड़ी ही देर में नींद आ जाती है। मालिश के फलस्वरूप स्नायविक उत्तेजना और सभी तरह की शारीरिक तथा मानसिक थकान शीघ्र चली जाती है। परन्तु स्नायविक उत्तेजना रहने पर सदैव घर्षण का परित्याग करना उचित है।

दर्द में मालिश हमेशा ही लाभदायक होती है। स्नायुशूल और

साइटिका आदि बहुत अवस्थाओं में केवल मालिश से ही कम हो जाते हैं। लकवा रोग में भी मालिश सफलतापूर्वक कराई जा सकती है।

रक्तचाप में तो यह बड़ा ही लाभ पहुँचाती है। कुछ दिनों तक मालिश कराने से ही धीरे-धीरे रक्तचाप कम होने लगता है। जिन्हें रक्तचाप बढ़ने का डर हो उन्हें बीच-बीच में कुछ दिनों के लिये अवश्य मालिश कराते रहना चाहिये। ऐसा करने से खून ले जानेवाली नलियों की हालत कभी भी बिगड़ने नहीं पाती। इसलिए रक्तचाप रोग का होना ही प्रायः असम्भव हो जायगा।

पुराने मलेरिया में भी हमेशा मालिश कराना उचित है। मालिश के फलस्वरूप खून में श्वेत कणों की वृद्धि होती है और वे मलेरिया के कीटाणुओं का नाश कर डालते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि स्वाभाविक रीति से मलेरिया दूर हो जाता है।

शरीर बहुत सूख जाने पर हमेशा मालिश करनी चाहिये। इससे मांसपेशी की ताक (tone) बढ़ती हैं (Michael G. Wohl, M. D.—Diatotherapy p, 814, Philadelphia, 1945) और सब ओर से लाभ होता है।

टॉनसिल में सूजन हो जाय तो टॉनसिल पर मालिश करने से उसमें सञ्चित तमाम दूषित पदार्थ (infectious accumulations) उससे निकल जाते हैं और बहुत अवस्थाओं में इससे ही रोग मिट जाता है। लेकिन यह मालिश मुँह के भीतर से और दबाकर करना चाहिये (Otto Glasser, Ph. D.—Medical Physics, p. 705 Chicago, 1951)।

मालिश के कारण शरीर की दहन क्रिया विशेष रूप से बढ़ जाती है। इसलिए गठिया, मधुमेह, चर्बी का बढ़ना आदि बीमारियाँ जो दहन क्रिया की कमी के कारण (deficient oxidation) उत्पन्न होती हैं उनका उत्पन्न होना जिस प्रकार असंभव होता है उसी प्रकार दहन क्रिया के बढ़ जाने के कारण वे सभी रोग भी धीरे-धीरे कम हो जाते हैं। मधुमेह

रोग में मालिश के कारण शरीर के अन्दर की बहुत सी चीनी भस्म हो जाती है और पेशाब में चीनी की मात्रा कम होने लगती है।

सभी प्रकार की वात-व्याधियों में मालिश अत्यन्त लाभदायक है (Frank H. Krusen, M.D.—The 1951 Yearbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 293, Chicago, 1952)। यदि ठीक प्रकार इसका प्रयोग किया जा सके तो इसके द्वारा रक्त का आवागमन बढ़ता है, संधि में संचित दूषित रस सूख जाता है तथा अंगों के संचालन की शक्ति बढ़ जाती है (D. M. Donlop, M. D, F.R.C.P.—Text-book of Medical Treatment, p. 820, Edinburgh, 1949)। इसके अलावा दर्द घट जाता है, फूलाव ठीक हो जाती है और अङ्गों की शुष्कता जाती रहती है। परन्तु दर्द के स्थान पर जबरदस्ती से या दुखाकर कभी भी मालिश करना उचित नहीं (Howard F. Conn. M.D.—Current Therapy, p. 308, Philadelphia 1951)।

मेद रोग में मालिश बहुत लाभदायक है। इससे चर्बी घट जाती है। किंतु इस रोग में बहुत जोर से मालिश करनी चाहिये (Moel M. Tidy—Massage and Remedial Exercise, p. 357, London, 1952)।

विभिन्न रोगों में जब विश्राम ही चिकित्सा (rest-cure) मानी जाती है, तब व्यायाम के बदलें में मालिश का व्यवहार हो सकता है। व्यायाम की सबको आवश्यकता होती है। जब किसी कारण से व्यायाम नहीं किया जा सके तो मालिश से ही व्यायाम का लाभ होता है। मालिश शरीर को नहीं थकाते हुए व्यायाम के उद्देश्यकी पूर्ति करती हैं।

मालिश से जिस प्रकार वयस्क लोगों को लाभ होता है, बच्चों को भी मालिश से उसी प्रकार लाभ होता है। इससे बच्चों की कोष्ठबद्धता दूर होती है, सूखा रोग या लकवा रोग आदि होने पर उनकी प्रगति रुक

जाती है एवं शरीर का स्वास्थ्य ही सुधरता है (M. G. Peterman, M.D.—The disease of Children, Vol. 1, p. 131)।

किंतु मालिश यद्यपि शरीर के लिए अनेकों तरह से लाभदायक है तो भी सभी प्रकार के रोगियों को मालिश नहीं की जा सकती या सभी अवस्थाओं में मालिश नहीं होनी चाहिये।

बुखार होने पर समझना चाहिये कि रोगी की मालिश नहीं की जा सकती। साधारणतया शरीर का ताप ९९° से अधिक होने पर तो मालिश हरगिज नहीं होनी चाहिये। पर राजयक्ष्मा (थाइसिस) और प्लूरिसी आदि रोगों में जब ज्वर न हो तब मालिश का प्रयोग किया जा सकता है।

चर्मरोग होने पर कभी भी मालिश नहीं करानी चाहिये, क्योंकि चर्मरोग पर मालिश करने से यह और भी फैलता जाता है। यदि कहीं ट्यूमर (चक्का) हो तो उक्त स्थान को सावधानी से बचाकर मालिश होनी चाहिये। निर्दोष ट्यूमर पर मालिश करने से वह कभी कभी कैंसर का रूप धारण कर लेता है। चमड़े पर फोड़ा, फुन्सी, घाव आदि हो तो मालिश के वक्त उन स्थानों को सावधानी से बचाते जाना चाहिये।

गर्भावस्था में और पेट में किसी तरह का सूजन रहने पर पेट की मालिश हमेशा वर्जनीय है (William Bierman, M.D., and Sidney Licht, M.D.—Physical Medicine in General Practice, p. 309, New York, 1972)।

उन्नीसवाँ अध्याय

पथ्य और आरोग्य

बीमारी की हालत में पाकस्थली की परिपाक :शक्ति बहुत कुछ कम हो जाती है। यदि खाद्य किसी प्रकार परिपाक हो भी जाये, तो भी शरीर के भीतर जाकर वह पूरी तौर से शरीर के काम नहीं आता।' बीमारी के समय शरीर के भीतर जो विष का स्रोत छूट पड़ता है, वह जिस प्रकार पाकस्थली आदि के परिपाक की क्षमता में कमी कर देता है उसी प्रकार वह शरीर के कोषों को भी इस प्रकार अर्ध चेतन कर देता है कि उनके सामने खाद्य-पदार्थ के उपस्थित रहने पर भी वे उसे पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाते। तब खाद्य-पदार्थ शरीर के काम न आकर शरीर के लिए विषाक्त पदार्थ के ही रूप में परिणत हो जाता है। उस समय यह शरीर की शक्ति को बढ़ाने के स्थान पर रोग की ही शक्ति को बढ़ाता है। इसी कारण सभी देशों और सभी कालों के लोग बीमारी की अवस्था में यथासंभव हल्का भोजन ही करते हैं।

हर नया रोग शरीर को रोगमुक्त करने की प्रकृति की विभिन्न चेष्टा मात्र है। जब शरीर तरह-तरह के दूषित पदार्थों के बोझ से दब जाता है, तब प्रकृति भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं द्वारा इसे विकार-रहित-करने की कोशिश करती है प्रकृति की इस चेष्टा का ही नाम रोग है। इसीलिए इस समय इस तरह के पथ्य का चुनाव करना चाहिये, जिसे पचाने के लिए प्रकृति को सफाई करने के काम से विरत होकर परिपाक करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग न करना पड़े। इसलिए इस समय रोगी की पुष्टि की तरफ ध्यान न देकर उपवास के समान ही केवल किसी पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये। और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यथासंभव यह पथ्य हल्का हो।

किंतु केवल हल्के पथ्य के चुनाव मात्र से हो संतोष नहीं कर लेना चाहिये। इस समय तो वह पथ्य ऐसा भी होना चाहिए जो शरीर में जमा विष को नष्ट (neutralize) करे और प्रकृति को घर की सफाई में सहायता प्रदान करे।

इसी कारण बीमारी की अवस्था मे प्रधान पथ्य नीबू के रस के साथ पानी, फलों का रस, रसीले फल (juicy fruits), छेने का पानी पतला मट्ठा, वारह घण्टे भिगाये किशमिश का पानी, तरकारी का पतला सूप और मधु के साथ पानी आदि हैं।

हर रोग में रोगी को नीबू के रस के साथ काफी मात्रा में पानी पीने देना चाहिये। हमारे शरीर में जितने प्रकार के रोगों के विष हैं वे सभी अम्लधर्मी हैं। नीबू का रस मुँह में अम्ल होने पर भो परिपाक के बाद वह क्षारधर्मी बन जाता है और रोग के अम्ल-विष का नाश करता है। कमला नीबू, बिजौरा नीबू और अनन्नास आदि विभिन्न खट्टे जाति के फलों के रस से भी एक लाभ होता है। किन्तु रोग की तेज अवस्था में हमेशा ही फलों के रस के साथ पानी मिलाकर देना चाहिये। बीमारी की हालत में इस प्रकार काफी मात्रा में पानी पीने से रोग का विष बहुत अंशों में नष्ट हो जाता है और पसीना तथा पेशाब के साथ शरीर से निकल जाता है। रोगी को सफेद जाम, जामुन, खीरा और मिश्रीकन्द आदि का रस भी दिया जा सकता है। नारियल का पानी भी फल के रस की ही सूची में है। जो रोगी अम्ल-रोग से कष्ट पा रहे हों उन्हें रोग की अवस्था में खट्टे जाति के फलों के बदले ये इन सभी फलों के रस ही देना उचित है। रोग के समय मौसम्बी आदि रसीले फल खाने में कोई आपत्ति नहीं। दूसरे फलों को खाने पर इसका ध्यान रहना चाहिये कि प्रारंभिक अवस्था में उनके छिलके, बीज तथा सीठी न खाये जायँ। रोगी को कब्जियत रहने पर हमेशा फल के रसों पर ही जोर देना चाहिये।

किंतु यदि रोगी को पतला दस्त होता हो तो किसी भी हालत में उसे नीबू का रस, नारियल का पानी और मौसम्बी के रस को छोड़कर

दूसरा कोई फल नहीं देना चाहिये। पतला दस्त होने की हालत में रोगी का मुख्य पथ्य छेने का पानी और मट्टा है। छेने के पानी में और मट्ठे में दूध के कई गुण बचे रह जाते हैं तथा साथ ही साथ ये बड़े हल्के पथ्य हैं। रोगी के लिये बिना मलाई के दही में काफी मात्रा में पानी मिलाकर पतला मट्ठा तैयार करना चाहिये। पेट के रोगों में यह तथाकथित दवाईयों का काम करता है। किंतु रोगी की छाती में दोष होने पर कभी भी रोगी को दही या मट्ठा नहीं देना चाहिये। नये मलेरिया, गठिया, अम्ल-रोग और छाती के दोषों में दही हमेशा वर्जित है। छाती के दोष होने पर रोगी को नारियल का पानी व बरफ देना उचित नहीं। इससे रोग बढ़ने की संभावना रहती है।

रोगी को तरकारी का सूप भी देना चाहिये। उससे तरह-तरह के विटामिन और धातव लवण शरीर में जाते हैं। पालक का साग, धनिये की पत्ती, पपोता, खेखसा, चुकन्दर और गाजर आदि शाक सब्जी का उबाला हुआ जल रोगी को दिया जा सकता है। रोग की तीव्रता में केवल तरकारी का उबाला हुआ जल रोगी को देना चाहिये। रोग दूर हो जाने पर तरकारी को अच्छी तरह मसलकर उसके गाढ़े क्वाथ (vegetable) puree) को भी खाने दिया जा सकता है।

बीमारी में कभी भी चीनी और मिश्री खाना उचित नहीं। चीनी पचने में बहुत समय लेते हैं। भात रोटी आदि की परिपाक क्रिया तो मुँह में ही आरम्भ हो जाती है। किंतु चीनी न तो मुँह में हजम होती है और न पाकस्थली में, यह हजम होती है छोटी आँत में। इस समय वह बहुत कुपित होती है। इसके अलावा चीनी में कोई पुष्टिकर तत्व नहीं रहता है। इसीलिए अधिक चीनी खाने से तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। इसी कारण बीमारी की हालत में फल के रस आदि को मीठा करने के लिए फल के रस के साथ चीनी के बदले में मधु का व्यवहार करना उचित है अथवा बारह घंटे पानी में भिगोये किशमिश को पीसकर उसके छने रस को चीनी के बदले काम में ला सकते हैं। रोगी यदि बहुत कमजोर हो तो औषधि-

रहित मॉल्ट (malt) भी दिया जा सकता है। इससे शरीर का वजन जल्दी बढ़ता है।

साधारणतया बीमार पड़ते ही लोग साबूदाना और बार्ली खाते हैं। किन्तु साबूदाना और बार्ली आदि अम्लधर्मी खाद्य हैं। और फलों का रस है क्षारधर्मी। इसी कारण फलों के रसों पर सदा जोर देना चाहिये। इसके अलावा चबाये बिना श्वेतसार जातीय पदार्थ पच नहीं पाता। बार्ली आदि को चबाये बिना खाने के कारण लाभ के बदले हानि ही होती है। पच जाने पर भी श्वेतसार जातीय पदार्थ शरीर के लिये रोकनेवाला भोजन (clogging food) है और फलों के रस आदि पदार्थ को अपनयन-मूलक खाद्य (eliminating food) कहा जा सकता हैं।

सभी नये रोगों में कम ज्यादा कमजोरी आती है। पर यह नहीं समझना चाहिये कि यह कमजोरी हल्के भोजन के फलस्वरूप है। नये रोगों के रक्तप्रवाहक में जो कि विष चला आता है वही रोगी को कमजोर बना देता है। अपनयनमूलक चिकित्सा और पथ्य से यह विष जितना ही शरीर से दूर हो जाता है रोगी के हृदय आदि यंत्र उतने ही अच्छे होने लगते हैं और रोगी उसी अनुपात में अपने को चंगा महसूस करने लगता है। अधिक भोजन करने से रोगी जिस प्रकार सूखता जाता है हल्के पथ्य से वह बात नहीं होती और रोग से छुटकारा पाने के बाद हमेशा ही रोगी का स्वास्थ्य पहले की अपेक्षाकृत सुधर जाता है। क्योंकि इस प्रकार के पथ्य पर रखकर शरीर के स्वास्थ्य को पूर्णरूप से वापस लौटा लेने के लिये रोग को एक प्रकार से यंत्र को तरह व्यवहार किया जाता है।

रोग के छुटकारा पा जाने से बाद भी अचानक अधिक भोजन नहीं करने लगना चाहिये। रोग शान्त हो जाने के भी कुछ दिनों बाद तक बीमारी के समय के चालू पथ्य को ही ग्रहण करना जरूरी है। उसके बाद बहुत धीरे-धीरे तरल भोजन को गरिष्ठ भोजन में बदलना चाहिये। खुराक की मात्रा भी बहुत धीरे-धीरे बढ़ानी उचित है। रोग मुक्ति

मिलने के बाद ही अचानक अधिक भोजन करने से बीमारी प्रायः फिर असाध्य रूप में लौट आती है।

पुराने रोगियों को जब तक वे सबल रहें, साधारणतया स्वस्थ अवस्था का ही भोजन करना चाहिये। किंतु पुराने रोगों के नये आक्रमण की हालत में अथवा प्राकृतिक चिकित्सा कराते समय हमेशा नये रोग के पथ्य को ही ग्रहण करना जरूरी है।

बीमारी की हालत में अधिक चर्बी जातीय पदार्थ और नमक, हल्दी को छोड़कर अन्य सभी मसाले, सभी तरह के तले पदार्थ हलवाई की दूकान के सभी पदार्थ, चाय, कोको, काफी और सभी प्रकार के दुष्पाच्य तथा उत्तेजक द्रव्यों से परहेज करना चाहिये।

इस प्रकार से पथ्य ग्रहण करने से रोग कभी भी असाध्य नहीं हो जाता और थोड़े समय में ही रोग से छुटकारा मिल जाता।

आयुर्वेदमें लिखा है—

बिनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनानां भेषजानां शतैरपि॥

बिना किसी औषधि के केवल पथ्य से ही रोग से छुटकारा मिल सकता है किंतु बिना पथ्य के रोग सैकड़ों औषधियों से भी नहीं छूटता।

यह शरीर एक प्रकार का खाद्य यंत्र (food engine) है। कुभोजन से जिस प्रकार रोग की सृष्टि होती है, उसी प्रकार अच्छे खाद्य से रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। इसी कारण कहा जाता है, diet cures more than doctors—डाक्टरों की अपेक्षा पथ्य से ही अधिक रोगी नीरोग होते हैं।

एक विद्वान् ने कहा है, "मैं जानता हूँ कि काफी दिनों तक कमला नीबू और बिजौरा नीबू आदि फल कुछ अधिक और पालक का शाक तथा लेटूस आदि शाक कुछ कम खाकर बहुत-से यक्ष्मा, दमा, गठिया, मधुमेह एवं यहाँ तक कि मिरगी के रोगी भी अच्छे हो गये हैं (Bernard,

Editor, Health and Life—Eating to Correct Ill-Health. p. 43) ।

प्राकृतिक चिकित्सा के साथ साथ सुपथ्य ग्रहण करने से किस प्रकार असाध्य रोग ठीक हो सकते हैं उसका मैं एक उदाहरण देता हूँ ।

श्री श्रीनाथ बारी की स्त्री २० नं० अपर चितपुर रोड में अपने पति के साथ रहती थीं । दो साल पहले उनकी जंघा पर एक फोड़ा हुआ । उनके पति चिकित्सा के लिए उन्हें कलकत्ता के एक मेडिकल कालेज में ले गये । वहाँ उनके फोड़े पर चीरा लगाया गया । किंतु घाव जरा भी नहीं सूखा ; तब दो बार और चीरा लगा । उससे रोगिणी का कष्ट बेहद बढ़ गया । किंतु ठीक होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया । इसके पहले रोगिणी की जंघा की एक बार एक्स-रे की जा चुकी थी । फिर एक्स रे की गई । रोगिणी को बहुत दिनों से बुखार था । उनका शरीर सूखता जाता था एवं साथ ही साथ अजीर्ण और रक्तहीनता प्रबल रूप धारण करती जा रही थीं । तब कुछ डाक्टरों ने कहा, उन्हें हड्डी की टी० बी० हो गई है । यादवपुर यक्ष्मा अस्पताल में बेड की व्यवस्था करना ही उचित है । किंतु यक्ष्मा अस्पताल में बेड पाना सहज काम नहीं है । यादवपुर जाने के पहले उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा करने का निश्चय किया मेरे पास आने पर मैंने देखा कि रोगिणी के जंघा के घाव में एक बड़ी नाली-सी हो गई है । काफी दूर पर दबाने से घाव के मुँह से पीब निकलता था एवं हर रोज नाली में कपड़े के कई टुकड़े भरना पड़ता था । मैंने उनके घाव पर दिन में चार बार गरम-ठंडा, एक घंटे के अन्दर बदल बदलकर घाव पर दिन में चार बार मिट्टी की पुलटिस, रात में एक बार उस जगह पर गीले कपड़े की पट्टी, नीम की पत्ती का डूस एवं दिन में तीन बार सिर धोकर तौलिया स्नान देने की व्यवस्था की । साथ-साथ उन्हें आग पर पकाये हुए खाद्य को न खाने का निर्देश दिया । जो असाध्य रोगी कहे जाते उनसे मैं यह शर्त करा लेता हूँ कि मेरी चिकित्सा कराने पर कच्ची चीज खाकर रहना होगा । मैंने उन्हें केवल फल, फल का रस, सलाद, किशमिश का जल एवं

मधु के साथ पानी पीकर रहने के लिए कहा। रोगिणी ने परम निष्ठा के साथ मेरे निर्देश के अनुसार रहना आरम्भ किया। हर सप्ताह रोगिणी दो दिन आकर अपनी हालत मुझे दिखाती थीं। मैंने देखा कि इस चिकित्सा के दस-बारह दिनों में ही उनकी नाली का घाव काफी सूख गया एवं एक महीने से पहले ही वे पूर्ण रूप से नीरोग हो गईं यह रोगिणी यदि पथ्य का विचार न कर इच्छानुसार पदार्थ खातीं तो वह कभी भी नीरोग नहीं हो सकती थीं।

एक और रोगी का उदारण देता हूँ। श्रीमती मोहनलाल माहेश्वरी ४३, जकरिया स्ट्रीट में रहती थीं। वे कई दिनों मेरुदण्ड के क्षय (caries of the spinal bone) के कारण कष्ट पा रही थीं। उनके मेरुदण्ड की चार हड्डियाँ ही रोग से आक्रान्त हो गई थीं। कुछ दिनों बाद उनके मेरुदंड पर एक ठंडा फोड़ा (cold abscess) निकला। इन सब कारणों से धीरे-धीरे उनकी चलने की शक्ति कम हो गई और अन्त में उन्हें लकवा मार गया। उनकी कई प्रकार की चिकित्सा की गई। उन्होंने बहुत समय तक एलोपैथिक चिकित्सा कराई और कुछ दिनों तक प्लास्टर की पट्टी भी चढ़ी। किन्तु उससे उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ। जब मैंने रोगिणी की चिकित्सा शुरू की तब वे जिन एलोपैथिक डाक्टर की चिकित्सा करा रही थी उनके साथ रोगिणी के घर पर ही मेरी भेंट हुई। वे मेरे पुराने परिचित थे। उन्होंने कहा, अपनी चिकित्सा में मैं जो कुछ कर सकता था वह सब किया गया है। मै अब और कुछ नहीं कर सकता। मैंने देखा रोगिणी उठ बैठ या टहल नहीं सकती थीं। मैंने रोगिणी से कहा, पूरे तीन माह तक मेरी चिकित्सा करानी होगी और उसके बाद तीन महीने और मेरे निरीक्षण में रहना होगा। और इस बारे में जो शर्तें मैं करता हूँ वह मैंने उनसे कह दी। मैंने उनसे कहा कि छः महीनों तक उन्हें केवल कच्चा खाद्य खाकर रहना पड़ेगा। तीन माह तक मेरी एक नर्स ने उन्हें मालिश, पेट पर गरम-ठंडा, नीबू का रस मिले पानी का डूस, उष्ण पादस्नान, फोड़े पर गरम-ठण्डा व बार-बार बदलकर ढकी पट्टी

एवं घर्षण-स्नान का प्रयोग कराया। इसके बाद और दो महीने तक रोगिणी ने बीच-बीच में टब और घर्षण-स्नान आदि का प्रयोग किया। इतने महीने उन्हें बिस्तर पर ही लिटाकर रखा गया था एवं बिछौने से उठने नहीं दिया गया था। इस काल में उन्होंने धारोष्ण दुग्ध, फल, फल का रस और मधु आदि का सेवन किया। इसके बाद रोगिणी वह घर छोड़कर चली गई और मुझे कोई खबर नहीं मिला। इसके करीब एक वर्ष बाद एक नये रोगी को देखने के लिए २७, शिब ठाकुर लेन से मेरा बुलावा आया। मैंने उस घर में जाकर आश्चर्य-चकित हो देखा कि श्रीमती मोहनलाल रोगी के बिस्तर के पास खड़ी हैं। उनका शरीर आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो गया है। मैंने देखा कि वे फिर घर की कर्ता-धर्ता हो गई हैं एवं मेरे सामने ही एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर दौड़-धूप कर रही हैं।

बीसवाँ अध्याय

यौगिक व्यायाम

[१]

योगशास्त्र में जिन आसनों का वर्णन है उनमें से कुछ आसनों को व्यायाम की जगह किये जा सकते हैं। इसलिए उन्हें यौगिक व्यायाम कहा जाता है।

आसन दो तरह के हैं। एक श्रेणी के आसनों को ध्यानासन एवं दूसरी श्रेणी के आसनों को स्वास्थ्यासन कहा जाता है। जिन आसनों में बैठकर मन को स्थिर करने की चेष्टा की जाती है उन्हें ध्यानासन कहते हैं और जो आसन व्यायाम के निमित्त किये जाते हैं उन्हें स्वास्थ्यासन कहा जाता है।

स्वास्थ्यासनों का प्रथम एव प्रधान उद्देश्य पेट को ठीक करना है। हमारे शरीर की पुष्टि प्रधानतः हमारी परिपाक क्षमता पर ही निर्भर रहती है! इसके अलावा हमारे अधिकांश रोग पेट की खराबी के कारण ही उत्पन्न होते हैं। यौगिक आसन एक तरफ तो हमारी पाचनशक्ति की वृद्धि करता है दूसरी ओर हमारे पेट को साफ रखने में सहायता देकर जिस तरह शरीर को पुष्ट रखता है उसी तरह शरीर की बीमारी से रक्षा भी करता है।

यौगिक आसन हमारे स्नायु-तन्तुओं को भी सबल करता है तथा थकावट एव जड़त्व को दूर करता है।

स्नायु ही हमारे शरीर का राजा है। हमारे शरीर का तमाम काम स्नायु द्वारा ही परिचालित होता है। वास्तव में जिनका स्नायु जितना अधिक सबल, शांत एव स्वस्थ है वे उतने ही श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। इसी कारण

से यौगिक आसन में शरीर जिस तरह गठित होता है उसी तरह मन भी गठित होता है।

यौगिक आसन से दूसरा लाभ यह होता है कि यह शरीर के भीतरी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (endocrine glands) की कार्य क्षमता को बढ़ाकर शरीर को स्वस्थ और रोगमुक्त कर देता है। हमारे शरीर में थाईरोयड (thyroid gland), एड्रीनल (adrenal bodies), पिट्यूटरी (pituitary body), पेराथाईरायड (parathyroid glands) इत्यादि विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ हैं। ये जो रस निकालती हैं वह सीधा खून में मिल जाता है एवं शरीर के भीतर विभिन्न रासायनिक परिवर्तन करती हैं तथा शरीर के विभिन्न यंत्रों के परिचालन में काफी असर डालती हैं। नियमित आसन करने से इन ग्रन्थियों की कार्यक्षमता लौट आती हैं एव बुढ़ापा दूर हो जाती है। इन तमाम आसनों के अभ्यास से यकृत इत्यादि वहिःस्रावी ग्रन्थियाँ भी चंगी हो उठती हैं एवं वे शरीर में जिन जरूरी कामों को कराती हैं वह अच्छी तरह से होने लगता है।

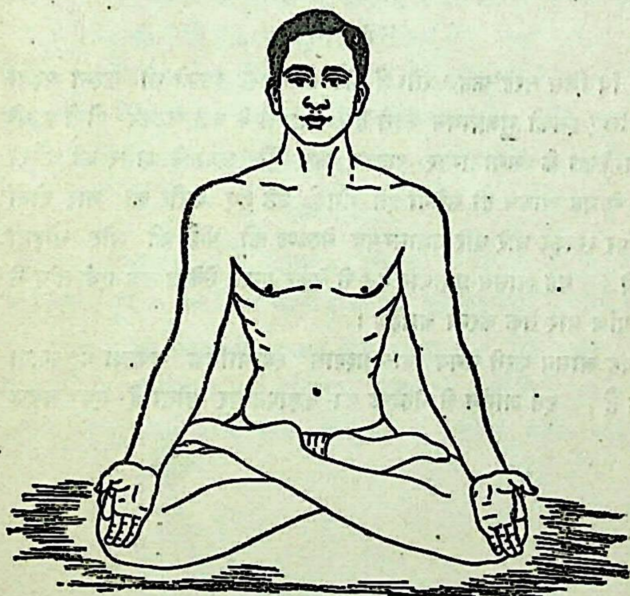
साधारणतया जो व्यायाम किया जाता है उसका ध्येय शरीर में मांसपेशियों की पुष्टि ही रहती है। किंतु यौगिक व्यायाम का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाना है। मांसपेशियों की वृद्धि होने से ही शरीर अच्छा हो जाता है ऐसी बात नहीं है। जब शरीर में अत्यधिक मांस उत्पन्न होता है, तब शरीर का अधिकांश माल मसाला उसकी पुष्टि के लिये ही खर्च होता है, और उसके फलस्वरूप हृदय एव फेफड़े आदि शरीर के प्रधान यंत्र धीरें-धीर कमजोर हो जाते हैं। इसलिए देखा जाता है कि पहलवान लोग हमेशा अल्पजीवी होते हैं। लेकिन यौगिक व्यामाम शरीर के प्रधान यन्त्रों को सबल और स्वस्थ कर शरीर को नया बना देते हैं।

इसलिए ऋषियों द्वारा परिकल्पित यौगिक व्यायाम की तुलना पृथ्वी के किसी भी व्यायाम से नहीं की जा सकती।

[२]

पद्मासन

पहले पद्मासन में कुछ देर बैठकर यौगिक व्यायाम प्रारम्भ किया जाता है। स्थिर होकर जमीन पर बैठकर बाईं जांघ पर दाहिना पांव एवं दाहिना जांघ पर बायां पांव रखकर यह आसन किया जाता है। इस



पद्मासन

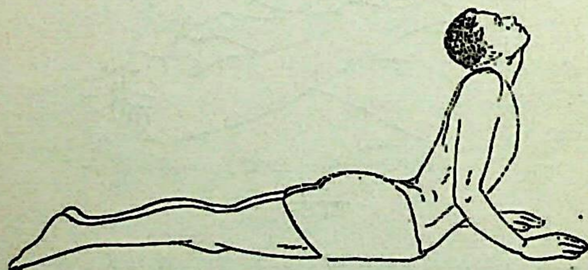
समय मेरुदण्ड को खासकर सीधा रखना जरूरी है इसी आसन में बैठकर विभिन्न योगासन किये जाते हैं। इसलिए सबसे पहले इस आसन का अभ्यास होना आवश्यक है। प्रत्येक दिन इस आसन को करने के बाद में क्रम से भुजङ्गासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, हलासन,

मयूरासन, मत्स्यासन, सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रा, उड्डीयान नौली व शवासन का अभ्यास करना आवश्यक है। इन आसनों को क्रम से करते जाने से ही ठीक रूप से आसन होता है (S. Sundaram—Yogic Physical Culture, pp. 20-21, Bangalore; 1921)।

भुजङ्गासन

सांप जिस तरह फन करता है ठीक उसी तरह इसको भी करना पड़ता है, इसलिए इसको भुजङ्गासन कहते हैं। छाती के बल लेटकर दोनों हाथों को स्तनरेखा के समानान्तर रखकर धीरे-धीरे ऊपर के शरीर को ऊँचा उठाने से यह आसन हो सकेगा इस समय उठे हुए शरीर का भार दोनों हाथों पर रखकर धीरे-धीरे यथासम्भव मेरुदण्ड को पीछे की ओर मोड़ना चाहिये। यह आसन प्रतिबार दस से लेकर पन्द्रह सेकेण्ड तक एवं तीन से लेकर पांच बार तक करना चाहिये।

यह आसन करते समय श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक अवस्था में रखना उचित है। इस आसन से मेरुदण्ड का कड़ापन दूर होता है एव लचक



भुजङ्गासन

(elasticity) बढ़ जाती है। मेरुदण्ड की लचक पर ही मनुष्य की जीवनीशक्ति एवं यौवन निर्भर करते हैं। जब मेरुदण्ड कड़ा हो जाता है तब बुढ़ापा आता है मेरुदण्ड के रास्ते ही शक्ति प्रवाहित होती है एवं

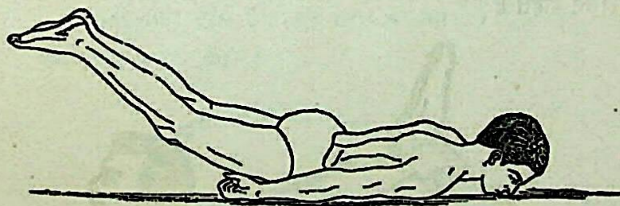
इसी रास्ते से ही मस्तिष्क में विभिन्न अनुभूतियाँ भी पहुंचती हैं। इसके अलावा बहुत-से स्नायु मेरुदण्ड के स्नायु-तन्तुओं से ही निकले हैं। इसलिए मेरुदण्ड की सबलता पर जीवनीशक्ति, कार्यक्षमता एवं यौवन निर्भर करते हैं। इस आसन द्वारा मेरुदण्ड सबल होता है और इससे नवजीवन प्राप्त होता है। सभी प्रकार की स्नायविक दुर्बलता में यह अत्यन्त लाभकारी है।

विभिन्न स्त्री-रोगों में इससे बहुत लाभ होता है। यह आसन करने से रोगमुक्त गर्भाशय और डिम्बकोष फिर से ठीक हो जाते हैं एव मासिक धर्म, बाधक वेदना और श्वेतप्रदर आदि विभिन्न-स्त्री-रोग चले जाते हैं। (Swami Sivanand—Yogic Home Exercises, p. 51)।

शलभासन

शलभ शब्द का अर्थ है तितली। तितली के समान दोनों पैरों को ऊँचा करके यह आसन किया जाता है इसलिए इसे शलभासन कहते हैं।

छाती के बल लेटकर यह आसन किया जाता है। दोनों हाथ शरीर के दोनों ओर उर्ध्वमुखी एवं मुष्टिबद्ध हालत में रहते हैं। इसके बाद निश्वास लेकर तथा कुम्भक करके दोनों पैरों को सीधा करके यथासंभव



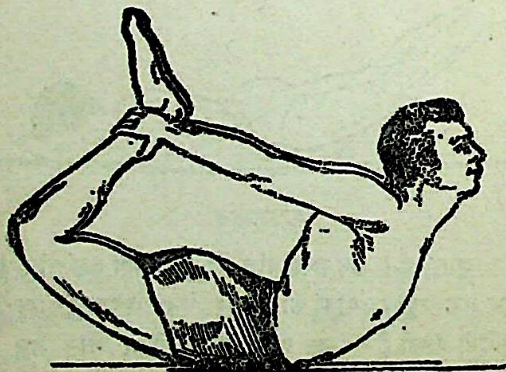
शलभासन

ऊपर उठाया जाता है। इस तरह पांच सेकेंड या जब तक सांस बन्द रखी जा सके तब तक रहकर पांवों को उतार लेना पड़ता है एव धीरे-धीरे श्वास छोड़ देनी पड़ती है। इस प्रकार एक से लेकर तीन बार तक यह आसन करना चाहिये।

भुजङ्गासन जिस प्रकार ऊर्ध्व शरीर का व्यायाम है उसी तरह शलभासन निम्न शरीर का व्यायाम है। इस आसन के अभ्यास से कोष्ठ शुद्ध रहता है, यकृत; पेंक्रियस एवं मूत्रयंत्र सबलता प्राप्त करते हैं एवं पेड़ू की समस्त मांसपेशियाँ व निम्न मेरुदण्ड सबल होते हैं। इसलिए नियमित रूप से यह आसन करने से कटिवात या कमर दर्द, साइटिका एवं जननेन्द्रिय की दुर्बलता दूर हो जाती है एवं चलने-फिरने की शक्ति में भी वृद्धि होती है। पेट फूलने में भी शलभासन अत्यन्त फलदायक है। जब भोजन के बाद ही पेट फूल उठे तब भुजङ्गासन करना उचित है एवं जब और किसी समय पेट फूले तब इस आसन से बहुत लाभ होता है (Srimat Kuvalayanand, Yoga Mimansa—Vol. IV, p. 252, Bombay, 1930)। किंतु हृत्पिंड की दुर्बलता या हृदय की किसी बीमारी में यह आसन करना वर्जित है।

धनुरासन

यह आसन करते समय शरीर धनुषाकार हो जाता है इसलिए इसको धनुरासन कहते हैं।



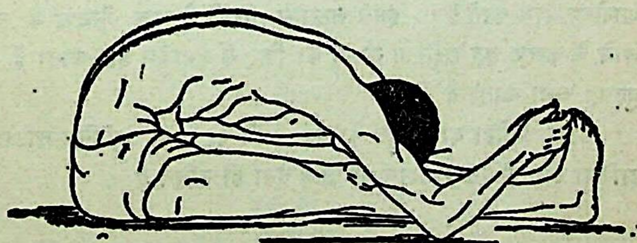
धनुरासन

छाती के बल लेटकर इस आसन को करना पड़ता है। शरीर सीधा एवं पूर्ण शिथिल रहता है। उसके बाद दोनों हाथों द्वारा दोनों पाँवों की एड़ी को पकड़कर एक तरफ से सिर, गरदन व छाती एवं दूसरी ओर से दोनों जंघा को ऊपर की ओर उठाना पड़ता है। इस समय केवल पेट पर शरीर का समस्त भार रहता है एवं मेरुदण्ड धीरे धीरे टेढ़ा होकर धनुष के आकार का हो जाता है इस समय श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक हालत में चलता रहता है। इस अवस्था में पाँच से लेकर बीस सेकेंड तक रहकर शरीर को फिर प्रथम अवस्था में ले आना चाहिये। इस व्यायाम को पुनः तीन बार करना पड़ता है।

यह आसन मेरुदण्ड को यौवन प्रदान करता है और पेट की तमाम बीमारियों को नष्ट करता है। इसलिए स्नायविक दुर्बलता व अजीर्ण (dyspepsia) रोग की यह एक श्रेष्ठ चिकित्सा है। इससे मधुमेह भी चला जाता है एवं पेट की चर्बी दूर होती।

पश्चिमोत्तानासन

इसके द्वारा शरीर के पिछले भाग का व्यायाम होता है, इसलिए इसे पश्चिमोत्तानासन कहते हैं।



पश्चिमोत्तानासन

पीठ के बल लेटकर यह आसन शुरू किया जाता है। दोनों हाथ

सिर के पीछे की ओर फैले रहते हैं। उसके बाद दोनों पैरों को जमीन से लगाकर निश्वास ग्रहण करते-करते धीरे-धीरे सिर और छाती को उठाकर बैठाना होता है। उसके बाद क्षण भर भी बिलम्ब न कर श्वास छोड़ते-छोड़ते शरीर झुकाकर दोनों हाथों से पाँव के अंगूठे को पकड़ना होता है। इस समय निवास छोड़ने के साथ ही साथ बार-बार सिर को झुकाकर अंत में जंघा से मिलाना होता है तथा दोनों कुहनियाँ जमीन के साथ आकर मिल जाती हैं। लेकिन यह बहुत धीरे-धीरे करना जरूरी है और प्रति दिन थोड़ा-थोड़ा कर इसके अभ्यास की चेष्टा करनो चाहिये। इस समय पेड़ू को भीतर खींच लेना चाहिये। इस तरह दो से लेकर पाँच मिनट तक रहकर फिर निश्वास लेते-लेते पूर्वावस्था में लेट जाना उचित है। इस तरह तीन बार किया जा सकता है। इस आसन में बैठकर सिर नीचा करते समय जोर-जबर्दस्ती (straining) व झटका (jerk) हर हालत में वर्जित है।

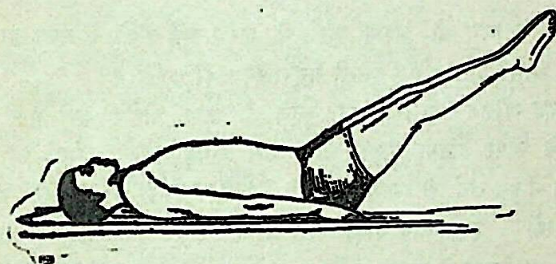
यह आसन पेट व मेरुदण्ड का एक श्रेष्ठ व्यायाम है। इससे पाकस्थली यकृत, क्लोमयंत्र (pancreas), आँत, मूत्रयंत्र व मूत्राशय आदि सबल हो उठते हैं एवं मेरुदण्ड लचीला हो जाता है। इसके फलस्वरूप अजीर्ण कोष्ठबद्धता, बवासीर, स्वप्नदोष, जननेन्द्रिय की दुर्बलता, पेट की बढ़ी हुई चर्बी, यकृत और प्लीहा आदि के विभिन्न रोग नष्ट होकर आरोग्य लाभ करते हैं। इससे जठराग्नि बढ़ती है एवं मेरुदण्ड में लचक आने के कारण वृद्ध शरीर में यौवन का फिर से समावेश हो जाता है और बुढ़ापा चला जाता है।

लेकिन प्लीहा या यकृत के बढ़ आने पर तथा एपेन्डिसाइटिस व हार्निया रोग में इस व्यायाम को छोड़ देना ही उचित है।

हलासन

यह आसन करते समय शरीर हल के आकार का हो जाता है, इसलिए इसे हलासन कहते हैं।

चित्त लेटकर यह आसन करना पड़ता है। दोनों हाथ जंघाओं के दोनों बगल में रहते हैं। उसके बाद दोनों पैरों को सीधा करके एवं हाथों को यथास्थान रख धीरे-धीरे पैरों को ऊपर उठाना पड़ता है। इस समय ३० डिग्री तक पैर आ जाने पर जरा विश्राम करना चाहिये। वह एक उत्तम अलग आसन में। इसका नाम है उत्थानपादास्नान। उसके बाद ९०° तक पैर उठाकर जरा विश्राम करना उचित है। अंत में दोनों



उत्थानपादासन

पैर ऊपर उठाकर धीरे-धीरे सिर के पीछे ले जाकर जमीन छूना आवश्यक है। इस समय दोनों जंघों का आपस में मिली हुई एवं सीधी हालत में रहना जरूरी है। इस अवस्था में रहकर ठुड्डी से गले को दबाना चाहिये।

हलासन

इस तरह दस सेकेण्ड रहकर फिर दोनों पैरों को ऊपर उठाकर पहले की हालत में ले आना उचित है। इसके बाद दोनों हाथ गरदन के नीचे पंजा मिड़ाकर रखते हुए यह आसन फिर किया जा सकता है। तृतीय

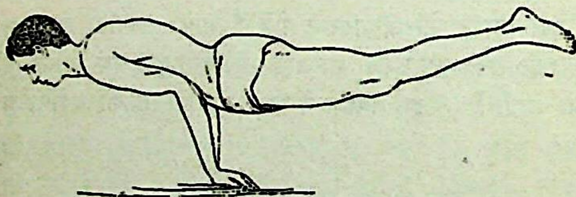
बाद ठीक इसी तरह फिर यह आसन करके दोनों पैरों को सिर के पीछे यथासम्भव फैलाना चाहिये।

यह आसन मेरुदण्ड के लिए एक अत्यन्त श्रेष्ठ आसन है। इसके अलावा कोष्ठबद्धता, पेड़ू को चर्बी बढ़ना और मधुमेह इत्यादि रोग इससे दूर होते हैं।

मयूरासन

इस आसन को ग्रहण करने से शरीर कुछ अंशों में मयूर का आकार ग्रहण करता है, इसलिए इसको मयूरासन कहा जाता है।

यह आसन करते समय घुटने के ऊपर शरीर का भार रखकर एड़ी के ऊपर बैठना पड़ता है। उस समय दोनों हथेली को घुटने के सामने में इस ढंग से रखना चाहिये कि दोनों हाथों की कुहनियाँ एक साथ आ जायें। इसके बाद थोड़ी साँस ग्रहण कर पेट कुछ अंश में कड़ा और नीचा कर केहुनी के ऊपर शरीर का भार रखना चाहिये। उस समय



मयूरासन

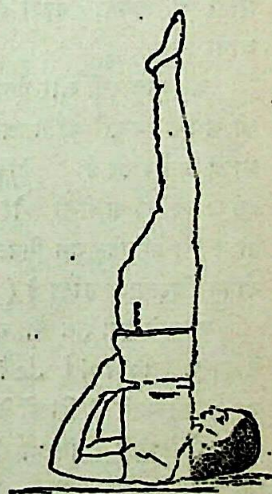
दोनों केहुनियों को नाभि के ऊपर या उसके नजदीक रखना जरूरी है। फिर केहुनी के ऊपर शरीर का भार रखकर दोनों जमीन से ऊपर उठाना चाहिये। पहले पहल इस ढंग से तीन-चार रोज अभ्यास करना जरूरी है। इसके बाद उसी अवस्था में रहकर पहले एक पैर और इसके बाद दोनों पैर सीधा कर शरीर को जमीन के साथ एकदम समतल कर लेना चाहिये। इस समय साँस बन्द रखना उचित है।

मयूरासन पाँच सेकेण्ड से एक मिनट तक और तीन से छः बार किया

जा सकता में। कब्जियत, अपच, मधुमेह लिवर की कमजोरी और क्डिनी आदि के रोगों में यह बहुत फलदायक है (S. Sundaram—Yogic Physical Culture p 84, Banglore; 1931)। पाचनशक्ति और भूख बढ़ाने के लिए इससे बढ़कर और कोई आसन नहीं है (डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह—आसन, पृष्ठ १५४)।

सर्वाङ्गासन

चित्त लेटकर यह आसन करना होता है। पहले दोनों पैरों को मोड़कर पेट के ऊपर तह देकर रखना पड़ता है। उसके बाद दोनों पैरों को मिलाकर धीरे-धीरे समूचे शरीर को इस प्रकार उठाना पड़ता है कि दोनों पैर सिर के ऊपर शून्य में और सीधे रहें। इस समय साथ ही साथ दोनों हाथों द्वारा कमर पकड़कर समूचे शरीर को सीधा रखा जाता है एवं ठुड्डी द्वारा गले को दबाना पड़ता है। इससे गलग्रन्थि से काफी रस निकलकर खून में मिल जाता है। मन की भी इस हालत में गलग्रन्थि पर निबद्ध रखना जरूरी है। इस समय श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक होना चाहिये। इस तरह कुछ क्षण रहने के बाद धीरे-धीरे छाती के ऊपर दोनों जघों को उतार लेना और फिर पूर्वावस्था में पैरों को ले आना पड़ता है। इस तरह छः बार तक किया जा सकता है। लेकिन इस आसन में अगर एक बार में ही पांच मिनट तक रहा जा सके तो इसे बार-बार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अवस्था में धीरे-धीरे समय बढ़ाकर इसे बीस मिनट तक किया जा सकता है।



सर्वाङ्गासन

प्रधानतः गलग्रन्थि की निःसरण शक्ति

की वृद्धि के लिए ही यह आसन ग्रहण किया जाता है। गलग्रन्थि (thyroid gland) गले के नीचे और सामने के भाग में है। यह एक नलीहीन (ductless) ग्रन्थि है। इससे जो रस निकलता है वह खुन में जा मिलता है। गलग्रन्थि का यह रस शरीर के लिए इतना जरूरी है कि काफी परिमाण में नहीं होने पर मंदाग्नि कोष्ठबद्धता, जल्दी ही सर्दी लगना, विभिन्न चर्मरोग सिर दर्द, आलस्य, नींद न आना शरीर के वजन में कमी, मानसिक अवसाद, चर्बी की कमी, जननेन्द्रिय सम्बन्धी विभिन्न रोग एवं अकाल-बुढ़ापा इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी तरफ जब गलग्रन्थि का रस अच्छी तरह निकलता है, तब शरीर को तोड़ने-बनाने (metabolism) में इस तरह प्राण संचार होता है कि शरीर के विभिन्न यंत्र स्वस्थ, सबल एवं कर्मशील हो उठते हैं। इसके अलावा यह स्नायुओं को नया करता है। इसलिए इस आसन के फलस्वरूप शरीर की स्नायविक उत्तेजना दूर होती है, शरीर की सब प्रकार की क्षमता बढ़ती है एवं गिरे हुए शरीर में भी नवयौवन आ जाता है।

आजकल स्त्री और पुरुषों के शरीर में योवन लौटाने के लिए गलग्रन्थि को काटकर बन्दरों की गलग्रन्थि दी जाती है। इस प्रकार चीड़-फाड़ में काफी खर्च होता है लेकिन इस आसन का अभ्यास करने से कभी भी इस प्रकार की खर्चीली और कष्टसाध्य अस्त्र चिकित्सा आवश्यक नहीं होती है। प्रतिदिन दस मिनट से अधिक समय तक इसका अभ्यास करने से यौवन चिरस्थायी होता है (Ibid., p. 35)।

बहुत-से स्त्री-रोग भी गलग्रन्थि के उपयुक्त रस निःसरण के अभाव के कारण (thyroid deficiency) ही हुआ करते हैं। इसलिए यह आसन करने से स्त्रियों के मासिक धर्म सन्बन्धी तमाम रोग शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। मिरगी रोग की यह एक प्रधान आरोग्यकारी विधि है। कुछ चर्बी सम्बन्धी रोग (obesity) ऐसे हैं जो किसी भी प्रकार ठीक नहीं होते किंतु यह करने से शरीर में तोड़ने और बनाने की शक्ति इतनी

तेजी से बढ़ती है कि वजन आप से आप कम होकर स्वाभाविक हालत में आ जाता है। गलग्रंथि का रस खून के श्वेतकणों को स्वस्थ रखता है एवं उनकी संख्या को बढ़ाता है। इससे शरीर में रोगों की प्रतिरोध करने की क्षमता बढ़ती है एवं विभिन्न संक्रामक बीमारियों से मुक्त रहना सम्भव होता है। इस आसन के करने से एपेन्डिसाइटिस रोग में अत्यन्त लाभ होता है। गर्भाशय के स्थान से हट जाने व बहिर्गमन (displacement and prolapse) और हर्निया रोग की यह एक प्रधान चिकित्सा है। इसके द्वारा बहिर्गत बच्चादानी और आँत अपने स्थान में आ जाते हैं। अजीर्ण एवं कोष्ठबद्धता रोग में भी इससे काफी लाभ होता है।

इस आसन के बाद ही मत्स्यासब करना आवश्यक है।

मत्स्यासन

यह आसन करके मछली की भाँति जल के ऊपर रहा जा सकता है। इसलिए इसको मत्स्यासन कहते हैं (Swami Sivanand—Yogic Home Exercises, p. 55)।

पद्मासन में बैठकर यह आसन किया जाता है। पहले इस हालत में चित्त लेट जाना आवश्यक है। उसके बाद दोनों कुहनियों पर भार देकर पेट और छाती को ऊपर उठाना पड़ता है एवं मेरुदण्ड को इस प्रकार टेढ़ा करना पड़ता है कि वह एक पुल के समान हो जाय। इस समय एक तरफ सिर और दूसरी तरफ नितम्ब के ऊपर शरीर का भार रहता है। इस हालत में गरदन को यथासम्भव पीछे की ओर टेढ़ा किया जाता है एवं गले पर विशेष रूप से जोर पड़ता है। इसके बाद दाहिने हाथ द्वारा बाएं पैर का अंगूठा एवं बाएँ हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ना पड़ता है। इस आसन के समय श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने की बड़ी सुविधा होती हैं। इसलिए इस आसन के समय बार-बार धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करना चाहिये। इस आसन से उतरते समय कुहनी पर भार देकर शरीर को नीचे लाना आवश्यक है।

यह आसन हमेशा ही सर्वाङ्गासन के बाद तुरन्त ही करना चाहिये। सर्वाङ्गासन में गला जिस हालत में रहता है, मत्स्यासन में ठीक उसकी विपरीत अवस्था में रहता है। इसके फलस्वरूप गले की विभिन्न स्नायु, मांसपेशी, गलग्रंथि एवं पेराथाईरायड ग्रंथियाँ विशेष रूप से पुष्ट होती हैं।



मत्स्यासन

पेराथाईरायड ग्रंथियों की संख्या चार है एवं गलग्रन्थि के पास तथा पीछे रहती हैं। शरीर की सूजन शक्ति में वे विशेष प्रभाव डालती है। इसलिए सर्वाङ्गासन के साथ इस आसन को करने से सर्वाङ्गासन का पूरा लाभ होता है।

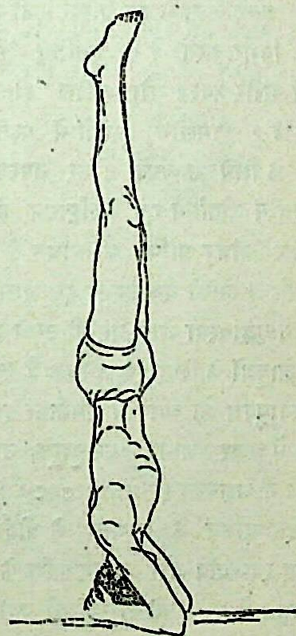
शीर्षासन

इस आसन से मस्तिष्क यन्त्र का व्यायाय होता है, इसलिए इसको शीर्षासन कहते हैं।

जमीन पर सिर और दोनों पाँव ठीक उपर शून्य स्थान में रखकर यह आसन किया जाता है। पहले घुटनों के बल पर बैठकर सिर को जमीन से मिलाना पड़ता है। हाथों की उँगली से लेकर कुहनी तक के अंग दृढ़तापूर्वक जमीन से मिले रहते हैं एवं उँगलियाँ परस्पर मिली रहनी चाहिये। उसके बाद दोनों पांवों को मोड़कर एवं सिर के ऊपर जोर देकर दोनों पैरों को ऊपर उठाना पड़ता हैं। इस समय दोनों हाथों को आपस में मिलाकर कुछ सिर के नीचे तथा कुछ सिर के पीछे रखना आवश्यक होता है। पहले पहल इस प्रकार बार-बार पैर शून्य में ऊपर उठाकर कुछ क्षण

रखकर फिर नीचे ले आना चाहिये। कुछ दिन तक इस तरह अभ्यास करते रहने पर अन्त में पैरों को मोड़कर सारे शरीर को ही एक सीधी रेखा में रखा जा सकता है। यह आसन करते समय श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक हालत में रहता है।

पहले पहल यह आसन करते समय किसी आदमी की सहायता ली जा सके तो बहुत अच्छा है। अथवा दीवाल पर पैर रखकर यह निर्भय होकर किया जा सकता है। पहले पहल शरीर को जरा पीछे की ओर हिलाकर रखना चाहिये। उससे गिर जाने का डर नहीं रहता। यह आसन पहले पहल कुछ सेकेंड तक करना जरूरी है, उसके बाद धीरे-धीरे समय बढ़ाना चाहिये एवं अन्त में बीस मिनट तक किया जा सकता है। पैर उतारते समय पहले पैरों को चौड़ा कर छाती पर ले आकर फिर उनको स्वाभाविक हालत में ले आना चाहिये एवं पैरों को ऊपर ले जाते समय भी ऐसा करना आवश्यक है।



शीर्षासन

शीर्षासन को आसनों का राजा कहा जाता है। क्योंकि स्नायुओं का मूल केन्द्र ही मस्तिष्क है। इस आसन से काफी खून मस्तिष्क में पहुंचता है। इसलिए समस्त स्नायु और साथ-साथ उसके लगाव के तमाम यंत्र उद्दीप्त हो उठते हैं। मस्तिष्क के भीतरी भागों में जो यौवन की ग्रंथियाँ (pituitary body) हैं, इस आसन के फलस्वरूप वे जी-

उठती हैं। यह ग्रन्थि आकार में एक मटर के समान है। किन्तु इससे जो रस निकलता है वह शरीर पर काफी प्रभाव डालता है। किसी कारण इस ग्रन्थि का रस उचित रूप से नहीं निकलने के कारण शरीर की विशेषतः हड्डियों की वृद्धि रुक जाती है, जनन-यन्त्र दुर्बल हो जाते हैं एवं मानसिक उन्नति रुक जाती है। इस ग्रन्थि से निकले हुए रस से कैलशियम हजम होता है। हड्डी और दाँतों के गठन, हृत्पिण्ड और स्नायविक यन्त्र की क्रियाशीलता एवं कीटाणुओं के रक्षा करने के लिए शरीर में कैलशियम विशेष रूप से आवश्यक होता है। इसके अलावा इन ग्रन्थियों की रस निकलने की ताकत पर ही यौवन-शक्ति निर्भर करती है। इसलिए शीर्षासन का अभ्यास करने से जिस प्रकार शरीर स्वस्थ और सुडौल होता है वैसे ही चिर यौवन की प्राप्ति होती है। हमलोग पुराणों में पढ़ते हैं कि उस समय के योगी अमरत्व पाने के लिये ऊर्ध्वपद होकर तपस्या करते थे। योगी ऊर्ध्वपद होकर वास्तव में शीर्षासन एवं सर्वाङ्गासन ही करते थे। इन आसनों का अभ्यास ही चिर यौवन प्राप्ति का साधन है। बुढ़ापा शरीर की एक अवस्था है। किन्तु इसको यथासम्भव इस आसन के जरिये टाला जा सकता है और अन्त में वृद्धावस्था आने पर भी उससे जड़ता नहीं आ पाती। यह मस्तिष्क और स्नायुओं के लिए एक टॉनिक है एवं इससे स्मरणशक्ति बढ़ती है। इसे मूल स्नायुयंत्र का व्यायाम समझकर इसका अभ्यास करने से हिस्टीरिया, सिर में चक्कर आना, स्नायुशूल, उन्माद रोग, मूढ़ता (idiocy); प्रजनन में अक्षमता (impotency) इत्यादि रोग ठीक होते हैं।

इस आसन के अभ्यास से वीर्यकोष की रक्ताधिक्यता दूर होती है इसलिए स्वप्नदोष और प्रजनन शक्ति के अभाव (spermatorrhoea) जाते रहते हैं। इससे आँखों की ज्योति बढ़ जाती है एवं आँख, कान, नाक, मस्तिष्क, गला, पाकस्थली, यकृत व फेफड़ों के विभिन्न रोग ठीक हो जाते हैं। बहरापन, मधुमेह, बवासीर, पाइरिया, कोष्ठबद्धता तथा मूत्रयंत्र का दर्द आदि रोग भी इससे नष्ट होते हैं (Great Ascetics

and Eminent Physicians---Students' New Hygiene and Physical Culture, p. 188) ।

लेकिन दाँत, आँख, कान, नाक और गले आदि में नवीन सूजन होने पर तथा हृद्रोग एवं अधिक बुढ़ापा आ जाने पर इस आसन का परित्याग करना उचित है।

अर्ध मत्स्येन्द्रासन

पैरों की एड़ी के ऊपर बैठकर यह आसत करना पड़ता है। पहले बायें पांव को मोड़कर एवं पांव की एड़ी मलद्वार के नीचे रखकर उसके ऊपर बैठना आवश्यक हैं। बाद में दाहिना पैर, घूटनों के नजदीक मोड़कर बायें पैर के बाहर रखना पड़ता है। उसके बाद बायें हाथ को दाहिनी जांघ के ऊपर देकर बायें हाथसे बायें घुटने को कसकर पकड़ना जरूरी है। इसके बाद दाहिना हाथ पीछे ले जाकर दाहिने पैर की एड़ी पकड़कर पीठ, सिर व कन्धा दाहिनी ओर घुमाना पड़ता है। पांच सेंकेण्ड तक इस तरह रहने के बाद फिर दाहिने पांव की एड़ी पर बैठकर उपरोक्त पद्धति के विपरीत मेरुदण्ड को टेढ़ा करना चाहिये।



अर्ध मत्स्येन्द्रासन

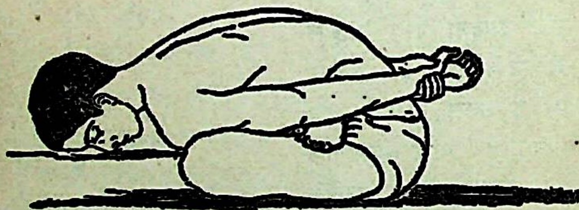
यह आसन करते समय जिससे मेरुदण्ड सामने की ओर न मुड़ जाय इसका ध्यान रखना चाहिये। इस समय श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक रूप में रखना आवश्यक है।

इस आसन में मेरुदण्ड प्रबल रूप से मुड़ता है। इसलिए इस आसन को अंग्रेजी में the spinal twist कहते हैं। इस आसन से मेरुदण्ड के स्नायु यथेष्ट रूप से रक्तस्नान लाभ करते हैं। इसके फलस्वरूप स्नायु-रज्जु के साथ ही साथ समस्त मेरुदण्ड सबल और स्वस्थ हो उठता है।

मत्स्येन्द्र नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे। यह आसन करने से उनके द्वारा आविष्कृत आसनों का आधे किये जाते हैं, इसलिए इसका अर्ध मत्स्येन्द्रासन है।

योग मुद्रा

पद्मासन में बैठकर दोनों हाथ दोनों पैरों के तलवे पर रखकर यह आसन किया जाता है। उसके बाद निश्वास छोड़ते-छोड़ते धीरे-धीरे-धीरे मस्तक जमीन से मिलाना पड़ता है। इस हालत में पाँच सेकेंड तक कुंभक करना चाहिये। उसके बाद श्वास लेकर साथ ही साथ धीरे-धीरे मस्तक उठाकर पूर्वावस्था में शरीर को ले आना चाहिये। इस तरह तीन से लेकर सात बार तक किया जा सकता है।



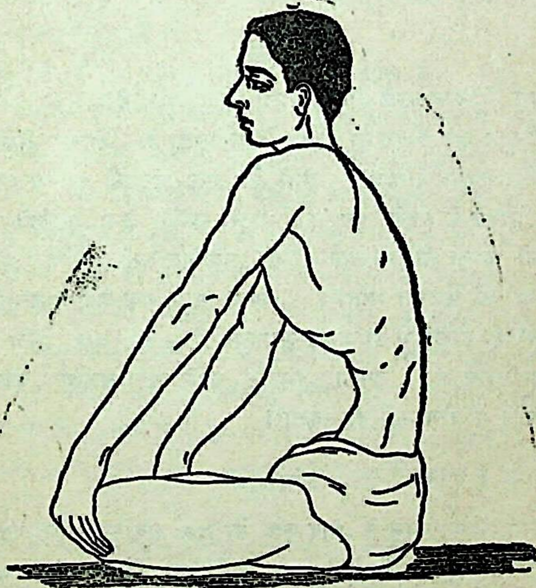
योग मुद्रा

इस आसन के करने से पुरानी कोष्ठबद्धता एकदम चली जाती है। इससे निम्न मेरुदण्ड का भी सुन्दर व्यायाम होता है।

उड्डीयान

कुछ झुके हुए खड़े होकर घुटने पर दोनों हाथों को रखकर यह आसन

किया जाता है। दोनों पैरों में थोड़ी-सी जगह रहनी चाहिये। उसके बाद धीरे-धीरे इस तरह निश्वास छोड़ना पड़ता है कि पेट खाली हो जाय। इसके बाद ही निश्वास न लेकर पेट को मेरुदण्ड की ओर आकर्षण किया जाता है एवं छाती और पसली हड्डी को ऊपर की ओर खींचना पड़ता है। इसका अभ्यास हो जाने पर पेट पीठ के साथ लग जाता



उड्डीयान

है। जब तक स्वाभाविक रूप से कुंभक करके रहा जाय तब तक उसी हालत में रहना चाहिये। उसके बाद फिर यह आसन ग्रहण करना पड़ता है। यह एक साथ पाँच से लेकर सात बार तक करना चाहिये। इस आसन को पद्मासन में बैठकर भी किया जा सकता है (Srimat Kuvalayananda—Asana, p. 60, Bombay, 1937)।

नियमित रूप से यह आसन करने से कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, एपेन्डिसाइटिस, हार्निया, स्वप्नदोष औरतों के प्रदर और ऋतु सम्बन्धी रोग कभी भी नहीं हो सकते एवं पेट के साथ-साथ समस्त शरीर की हालत सुधरती है। इसलिए हमारे योगशास्त्र में कहा गया है कि उड्डीयान के अभ्यास से बूढ़े जवान हो जाते हैं।

नौली

पहले उड्डीयान करके बाद में नौली किया जाता है।

उड्डीयान खड़े होकर या बैठकर किया जाता है। लेकिन नौली हमेशा खड़ा होकर करना चाहिये। दोनों पैर एक फुट की दूरी पर रहते हैं। निश्वास छोड़ने के पहले पेड़ू को भीतर खींच लेना चाहिये। इसके बाद दोनों बगल की मांसपेशियों को संकुचित करके पेट के भीतर की मांसपेशियों को फुलाना पड़ता है। आधे मिनट तक ऐसी हालत में रहकर फिर पहले की हालत में हो जाना आवश्यक है। इस तरह पाँच छः बार किया जा सकता है। इसका अभ्यास करने पर अजीर्ण कोष्ठबद्धता इत्यादि कोई भी रोग नहीं हो सकता।

शवासन

तमाम आसन करने के बाद कुछ देर तक शवासन करना पड़ता है। इससे यौगिक व्यायाम करने के बाद शरीर पूर्ण विश्राम प्राप्त करता है (इसके प्रयोग के लिए 'विश्राम और आरोग्य" अध्याय देखिये)।

[३]

योगासन ग्रहण करने का सबसे अच्छा समय संध्याकाल है। क्योंकि संध्या समय शरीर थकावट से मुक्त रहता है। फिर भी सुबह में यौगिक व्यायाम करने में कोई आपत्ति नहीं है। जिनके पास पूरा समय नहीं है वे एक बार कुछ आसन करके दूसरी बार बाकी आसन कर सकते हैं।

आसनों के साथ अन्य व्यायाम भी किया जा सकता है। लेकिन ऐसा

होने पर एक बार साधारण व्यायाम और दूसरी बार आसन करना उचित है। कभी भी भरे पेट आसन करना उचित नहीं है। भोजन के कम से कम पाँच घण्टे के बाद आसन किया जा सकता है। किंतु फल, मूल इत्यादि लघु आहार करने के कुछ ही देर बाद आसन करने से कोई हानि नहीं होती।

जमीन के ऊपर एक कम्बल और उसके ऊपर एक चादर बिछाकर आसन ग्रहण करना चाहिये। कम्बल नहीं होने पर चटाई बिछाकर आसन किया जा सकता है।

साधारणतः कौपीन पहनकर आसन किया जाता है। किंतु लंगोट पहनकर भी आसन किया जा सकता है। यदि कौपिन आदि पहनने में कोई असुविधा जान पड़े तो धोती समेटकर या हाफ पेंट पहनकर भी आसन कर सकते हैं। इस समय शरीर पर कोई भी कपड़ा नहीं रहना ही उचित है। लेकिन शीतकाल में एक गंजी या फतुई पहनी जा सकती है।

जहाँ तक संभव हो खुली हवा में आसन करना चाहिये। घर के भीतर करने पर घर की खिड़कियाँ एव दरवाजे यथासंभव खुले रहने चाहिये। जिस जगह किसी तरह की दुर्गन्धि हो अथवा जहाँ हवा का आगमन न हो वहाँ कभी भी आसन ग्रहण करना उचित नहीं है। क्योंकि कितने ही आसनों से साथ-साथ श्वास-प्रश्वास का व्यायाम किया जाता है और श्वास-प्रश्वास का व्यायाम हमेशा खुली हवा में ही करना जरूरी है।

हमेशा शांतचित होकर आसन ग्रहण करना चाहिये। इस समय मन में किसी प्रकार का उत्तेजनामूलक भाव रखना ठीक नहीं एवं शरीर को शिथिल (relax) कर लेना जरूरी है। आसन अत्यन्त शांतिपूर्वक चंचलता को छोड़कर करना चाहिये। जो आसन जितनी देर तक किया जा सके उतना ही अधिक उससे लाभ होता है। जब कोई आसन एक मिनट तक किया जाता हो तो उसे ही बार-बार न करके काफी देर तक करने का अभ्यास करना उचित है (V. G. Rele, L. M. S.

F.C.P.S.—Yogic Asanas, p. 7)।

प्रतिदिन ठीक समय पर आसनों का अभ्यास करना जरूरी है। ऐसा होने पर ही ठीक-ठीक लाभ हो पाता है।

आसन का अभ्यास करने के साथ आहार में संयम का भी अभ्यास करना आवश्यक होता है एवं यथासंभव ब्रह्मचर्य का पालन करना जरूरी होता है। जिसके जीवन में किसी विषय में थोड़ा बहुत भी संयम नहीं है उसे आसन क्या किसी भी चीज से लाभ होना संभव नहीं है।

कोई-कोई मन में ऐसा सोचते हैं कि आसन करने से भयंकर व्याधि उत्पन्न हो जाती है। किंतु यह एक बिलकुल गलत धारणा है साधारण व्यायाम जिस तरह किया जाता है. उसी तरह आसन भी किये जा सकते हैं। यौगिक आसन व्यायाम छोड़कर और कुछ नहीं है। केवल वे वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित हैं। तब भी बहुत धीरे धीरे इन व्यायामों का अभ्यास करना चाहिये। आसन में बैठकर कई प्रकार से शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा करना पड़ता है। पहले पहल शरीर को बहुत कम टेढ़ा करना उचित है एवं थोड़ी देर के लिए आसन करना चाहिये। इसके बाद अभ्यास होने के साथ ही साथ सब तरह से मात्रा बढ़ाने की कोशिश होनी चाहिये। क्योंकि धीरे-धीरे अभ्यास करने से कभी भी खराब नतीजा नहीं निकल सकता है।

पहले पहल कई आसन बहुत कठिन मालूम पड़ते हैं। किंतु धैर्य के साथ अभ्यास करते जाने पर ऐसा कोई भी आसन नहीं जो नहीं किया जा सके।

पुरुषों की भाँति औरतों को भी आसनों का व्यायाम करना चाहिये नियमित रूप से इन आसनों को करने से उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा, प्रसव वेदना बहुत अंशों में कम हो जायगी और कोई भी स्त्री-व्याधि जल्दी नहीं हो पायेगी। किंतु प्रति मास मासिक धर्म के समय पाच दिन के लिए आसन छोड़ देना चाहिये (Srimat Kuvalayananda—Yoga Mimansha, Vol. II, p. 292, Bombay, 1926)।

सन्तान की सम्भावना होने पर भी तीन मास के बाद और आसन करना उचित नहीं। तो भी इस समय प्राणायाम का अभ्यास करने से अत्यन्त लाभ होता है। प्रसव हो जाने के तीन मास बाद फिर आसन शुरू कर देना चाहिये।

कुछ ही दिन आसन करने से यथेष्ट लाभ पहुंचता है। किंतु स्वास्थ्य-पूर्ण दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों तक आसनों का अभ्यास करना चाहिये। उसके बाद शरीर सुगठित हो जाने पर सप्ताह में दो दिन ही आसनों का व्यायाम करना काफी होगा और उसके पश्चात् वर्ष में दो-एक हप्ता करने से ही चल सकता है।

इक्कीसवाँ अध्याय

श्वास-प्रश्वास का व्यायाम

[१]

शरीर की धौंकनी

हमारे दोनों फेफड़ों की लोहार की धौंकनी से तुलना की जाती है। ये हमारी छाती में द्वारहीन दो थैले की तरह स्थित हैं। श्वासनली और गले के द्वारा मुँह तथा नाक की राह में बाहरी पृथ्वी से अपना संबंध बनाये हुए हैं। हमारी श्वासनली छाती के ठीक बीचोबीच जाकर दो भागों मे बँट गई है। इसकी एक शाखा गई है दाहिने फेफड़े में और दूसरी बायें फेफड़े में। इसकी हर शाखा हर फेफड़ों में जाकर अति सूक्ष्म वायुकोष का निर्माण करती है। यह क्रमशः छोटी होकर इतनी छोटी हो गई है कि हर पूर्णदेह व्यक्ति के शरीर में प्रायः छः करोड़ वायुकोष हैं।

फेफड़े जिस समय हवा अन्दर खींचते हैं, उस समय फेफड़ों के करोड़ों वायुकोषों की एक तरफ हवा होती है और दूसरी तरफ रक्त होता है। फेफड़े हवा के साथ जो ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं उसे रक्त सूक्ष्म पर्दे के माध्यम से ग्रहण कर लेता है तथा शरीर के तन्तुओं से खून जो विषाक्त कार्बनिक एसिड ले आता है उसे निश्वास द्वारा बाहर निकाल देता है। फेफड़ों के इन कोषों को शरीर के कार्बनिक एसिड और ऑक्सीजन की अदला-बदली का केन्द्र कहा जा सकता है।

हवा से संग्रहीत ऑक्सीजन फेफड़ों से हृदय में जाती है। फिर हृदय उसे पम्प करके शरीर को धमनियों द्वारा सारे शरीर में पहुंचाता है। जिस प्रकार बड़े-बड़े शहरों में पम्प की सहायता से नल द्वारा जल चारों तरफ पहुंचाया जाता है, हमारा हृदय भी ठीक उसी प्रकार शरीर में पम्प का काम करता है। दोनों फेफड़ों के बीच में छाती की हड्डी की बायीं ओर

यह स्थित है। हृदय से जो नल के द्वारा रक्त सारे शरीर में ऑक्सीजन पहुँचाता है उसे धमनी (artery) कहते है और जो नल के द्वारा शरीर के दूषित रक्त शुद्धि के लिये हृदय से होकर फेफड़ों में पहुँचाती है उसे शिरा (veins) कहते हैं। हमारी धमनियाँ क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होकर बालों की तरह सूक्ष्म कैशिक नालियों (capilary) में विभक्त हो गई हैं। फिर सूक्ष्म नालियाँ क्रमशः बड़ी होकर शिराओं में परिणत हो गई हैं। ये ही दूषित रक्त चारों ओर से लाती हैं। हृदय द्वारा पम्प किये जाने पर खून सूक्ष्मतर धमनियों से होता हुआ इन कैशिक नालियों की राह फिर शिराओं के माध्यम से हृदय में लौट आता है। जब इन कैशिक नालियों द्वारा धमनी का रक्त शिराओं में आ जाता है तब शरीर के तन्तु रक्त से ऑक्सीजन ग्रहण कर लेते हैं एवं रिक्त ऑक्सीजन खून में शिराओं की राह शरीर में उत्पन्न कार्बनिक एसिड छोड़ देता है। इसीलिए हमारी शिराएँ नीले रंग की होती हैं तथा धमनियाँ साफ खून ले जाने के कारण लाल होती हैं। शिराओं को दूषित रक्त हृदय से होकर फेफड़ों में आता है। वहाँ वह हवा में कार्बनिक एसिड छोड़ विषमुक्त होकर फिर से ऑक्सीजन लेकर लौट आता है। दिन-रात हमारे शरीर के ये सेवक ऑक्सीजन और कार्बनिक एसिड लेने तथा छोड़ने का काम करते रहते हैं। प्रतिक्षण इसे लेने और छोड़ने पर ही हमारा जीवन निर्भर करता है। इस क्रिया के कारण ही हमारा दूषित रक्त प्रतिक्षण शुद्ध होता रहता है।

हवा से ली गई ऑक्सीजन से ही हमारे शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न होती है। यह ताप न हो तो हम जीवित नहीं रह सकते। जब मनुष्य मर जाता है तब उसके शरीर में यह ताप नहीं होता। रोशनी या चुल्हा जलाने के लिए जिस प्रकार ऑक्सीजन की आवश्यकता है उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रतिक्षण ऑक्सीजन की आहुति होती रहती है ऑक्सीजन न हो तो रोशनी या चूल्हा जल नहीं सकते। हवा नहीं मिलने पर हम भी उसी प्रकार एक-दो मिनट से अधिक नहीं बच सकते।

इसीलिए वायु को प्राण कहते हैं।

भोजन के साथ आई हुई कार्बन के साथ मिलकर ऑक्सीजन हमारे शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करती है। लकड़ी और कोयला यदि हवा की सहायता से जलाया जाय तो इस प्रकार का ताप उत्पन्न होता है। किये हुए भोजन के साथ मिलकर ऑक्सीजन उसे दग्ध करती है। इस प्रकार ऑक्सिजन से नहीं मिलने पर भोजन शरीर के किसी भी काम में नहीं आ सकता (Before food can be assimilated it must undergo oxidation— शरीर के काम में आने से पहले भोजन ऑक्सीजन की आग में अवश्य ही दग्ध होना चाहिये (Charles A. Tyrell, M.D.—Royal Road, p. 83)। इसीलिए भिटामिन आदि की तरह वायु भी एक खाद्य-पदार्थ है।

ऑक्सीजन जिस प्रकार खाद्य को दग्ध करती है, शरीर में सञ्चित विष और दूषित पदार्थ भी उसी प्रकार ऑक्सीजन की आग में दग्ध होते हैं। इसलिए हमारे शरीर में ऑक्सीजन की उपयोगिता सबसे अधिक है।

[२]

श्वास-प्रश्वास की आवश्यकता

बाहर से जितनी अधिक ऑक्सीजन ग्रहण की जा सके शरीर का उतना ही लाभ होता है। यदि इस प्रकार की कोई व्यवस्था की जाय, जिससे अधिकाधिक वायु अन्दर आवे तो सबसे अधिक मात्रा में ऑक्सीजन भी शरीर में आ जायेगी। इस प्रकार अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करने की जो व्यवस्था है उसे श्वास-प्रश्वास का व्यायाम कहते हैं।

हम लोग स्वाभाविक तौर पर जो सांस लेते एवं छोड़ते हैं, उसी सांस को देर तक लेने एवं देर तक छोड़ने की क्रिया को श्वास-प्रश्वास का व्यायाम कहते हैं। भारतवर्ष में यह व्यायाम प्राणायाम के नाम से प्रचलित है।

हमारे दोनों फेफड़े जितने अधिक फैल सकेंगे उतनी ही अधिक वायु हमारे शरीर में प्रविष्ट हो सकेगी। इसलिए दोनों फेफड़ों को फैलाने के उद्देश्य से किया गया यह एक प्रकार का व्यायाम है।

हम जो साँस खींचते हैं और छोड़ते हैं उसमें हमारे फेफड़े का एक-तिहाई भाग ही काम में लग पाता है। बाकी दो-तिहाई भाग बेकार ही रहता है और यह बेकार हिस्सा जो मांस के साथ-साथ फैलता नहीं है वह पर्याप्त व्यायाम की कमी के कारण क्रमशः दुर्बल हो जाता है, उसमें तरह तरह के विकार आकर जमा हो जाता हैं और फेफड़ा विभिन्न रोगों का केन्द्र बन जाता है। यही कारण है कि दूनिया में मरनेवालों की संख्या में एक-तिहाई फेफड़ों के रोग से मरनेवालों की होती है (H. Lindlahr, M.D.—Nature-cure, p. 332, Poona, 1937)। इसलिए दीर्घजीवन प्राप्ति के लिए कुछ ऐसा उपाय निकालना नितान्त आवश्यक है, जिससे कि फेफड़ों के बाकी अंश भी काम में लाये जा सकें प्राणायाम द्वारा यह काम भलीभांति संभव होता है।

जैसे साधारण सांस लेने एवं छोड़ने में छाती फैलती नहीं, वैसे ही ऐसे भी बहुत-से लोग हैं जिनकी छाती इतनी संकुचित है कि वे काफी हवा लेने में भी असमर्थ होते हैं। किंतु लगातार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने से छाती की चौड़ाई धीरे-धीरे बढ़ती जायगी। इसके फलस्वरूप दहन क्रिया (oxidation) जिस प्रकार बढ़ेगी उसी प्रकार हृत्पिण्ड और फेफड़े पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द एवं सुन्दर ढंग से काम करने लगेंगे एवं उनका काम भी अपेक्षाकृत अच्छा होगा।

ऐसा कहा जा सकता है कि जो जितनी गहरी सांस लेते हैं उनका फेफड़ा उतना ही अधिक मजबूत होता है। फेफड़ों के फैलाने एवं सिकुड़ने की क्षमता को ही फेफड़ों को शक्ति कही जा सकती है। व्यायाम द्वारा शरीर का हर-एक अंग जिस तरह शक्तिशाली होता है, फेफड़ों से भी उसी प्रकार होता है। सांस के व्यायाम का अर्थ है फेफड़ों का व्यायाम। इस सांस के व्यायाम के अभ्यास से फेफड़ों की शक्ति क्रमशः बढ़ जाती है

और अंत में वे काफी सांस ले और छोड़ सकने में समर्थ हो जाते हैं।

हवा को हमारे शास्त्र में प्राण कहा गया है छाती के भीतर जब हवा का आवागमन बढ़ता है, तब प्राणशक्ति की ही बढ़ती होती है। सचमुच में ऐसा देखा गया है कि जिसकी सांस जितनी देर में ली और छोड़ी जाती है उसका जोवन उतना ही दीर्घायु होता है। इसलिए स्वास्थ्यरक्षा एव रोगमुक्ति के लिए जितने भो साधन हैं उनमें प्राणायाम का एक महत्वपूर्ण स्थान है-

श्वास-प्रश्वास के व्यायास से मन भी अच्छा होता है। क्योंकि श्वास प्रश्वास के व्यायाम से स्नायु (nerve) स्निग्ध हो जाते हैं। इसलिए नियमित रूप से प्राणायाम करने पर स्नायु शान्त होते हैं एवं स्नायविक उत्तेजना उद्वेग और मानसिक चञ्चलता दूर हो जाते हैं। इससे सुनिद्रा एवं आत्म-सयम-शक्ति भो आती है। इसलिए हिन्दू शास्त्र में प्राणायाम को योग कहते हैं वास्तव में इस योग साधना से शारीरिक नवीनता पूर्ण स्वास्थ्य, मानसिक एकाग्रता, रोगशून्य दीर्घजीवन इत्यादि सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती है।

विभिन्न रोगों में भी यह अत्यन्त लाभकारी है। प्लूरिसी रोग में बुखार कम हो जाने के बाद मृदु श्वास प्रश्वास का व्यायाम लेने से फेफड़ा बढ़ना है, फेफड़े में रक्त का आवागमन बढ़ता है और रोग से कोई हानि नहीं हो सकती (G. E. Beaumont, M.A , F.R.C.P.—Medicine, p. 192. London, 1953)।

दमा के रोग में दो दिन में दो-तीन बार और जब आक्रमण होने की समावना हो तब श्वास-प्रश्वास का व्यायाम लेना चाहिये (Frank H. Krusen, M.D.—The 1951 Yearbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 311, Chicago, 1952)। इससे ज्यादा आक्रमण नहीं और यदि हो तो भी बहुत कम होता है (Hugh G. Garland, M.D.—

F.R.C.P.—Medicine, p. 1839, London, 1953)।

[३]

श्वास-प्रश्वास व्यायाम करने की पद्धति

सांस के व्यायाम की बहुत सी विधियाँ प्रचलित हैं शांत बैठकर लेटकर, खड़े होकर या टहलने के समय प्राणायाम किया जा सकता है। यहाँ तक कि साधारण व्यायाम के साथ-साथ भी सांस का व्यायाम किया जा सकता है। संगीत भी एक प्रकार का व्यायाम है। संगीत शास्त्र में षड़ज या ओंकार साधना को भी भ्रामरी प्राणायाम कहा जाता है। जो संगीत साधक हैं, वे इसी कारण दीर्घजीवी होते हैं।

प्राणायाम के तीन अंग हैं- पूरक, कुंभक और रेचक धीरे-धीरे वायु ग्रहण करने को योग की भाषा में पूरक, फेफड़ी में वायु रोकने को कुंभक तथा धीरे-धीरे वायु निकालने को रेचक कहते हैं। पूरक में जितना समय लगायां जाता है उससे चार गुना समय कुंभक में लगाना चाहिये तथा रेचक में पूरक का दुगुना समय देना उचित है। पूरक, कुंभक और रेचक का अनुपात होगा १ : ४ : २।

प्राणायाम करते समय हाथ की उँगलियों पर यदि समय का हिसाब रखा जा सके तो अच्छा है। ऐसा होने पर प्राणायाम शृंखलापूर्ण होगा. वायु ग्रहण और वर्जन कभी कम और कभी अधिक नहीं होने पावेगा एवं क्रमशः पूरक कुंभक और रेचक आदि के समय की वृद्धि की जा सकेगी।

प्राणायाम करने से पहले फेफड़ों में सचित वायु को (residual air) पूरी तरह बाहर निकाल देना हमेशा आवश्यक हैं। ऐसा होने पर ताजी हवा शरीर में प्रवेश कर सकेगी। फेफड़े जितने ही खाली होंगे उतनी ही अधिक हवा भीतर प्रवेश करने में समर्थ होगी। बहुधा फेफड़े की समस्त हवा निःश्वास के साथ बाहर नहीं निकलती। अंदर ही रहकर

यह हवा हमेशा के लिए नुकसान पहुँचाती है (Dr. K. L. Sharma —Pranayam p. 9)।

कुछ लोगों का मत है कि रेचक प्राणायाम का पहला, पूरक दूसरा एवं कुमंक तीसरी अंग है (स्वामी शिवानन्द सरस्वती— सचित्र प्राणायाम और अनन्त शक्ति, पृ० ६७)।

किंतु कुंभक प्राणायाम के लिए नितान्त आवश्यक नहीं। यह साधारणतया ध्यान में रखा जावे कि हवा को फेफड़ों में अधिक समय तक रोक रखने पर ही यथेष्ट ऑक्सीजन शरीर के द्वारा ग्रहीत होगी एवं काफी कार्बन डाई-ऑक्साइड शरीर से बाहर निकलेगी। किंतु यह बार-बार परोक्षा करके देखा गया है कि इसमें कोई सत्य नहीं है।

काफी समय तक हवा को छाती में रोक रखने से न तो अधिक ऑक्सीजन ही शरीर द्वारा ग्रहीत होती है और न अधिक कार्बन डाई आक्साइड ही बाहर होती है (Srimat Kuvalayananda—Yoga Mimansa, Vol. IV, pp. 267—73)।

पाश्चात्य विद्वानों की यह राय है कि ऑक्सीजन शरीर द्वारा ग्रहण कर लेने पर कार्बन डाई-ऑक्साइड के विषों को छातीमें न रखकर बाहर निकाल देना ही उचित है।

सच तो यह है कि कुंभक के बिना भी प्राणायाम किया जा सकता है और ऐसा करने पर प्राणायाम अत्यन्त निरापद हो जाता है।

इसीलिए श्रीमान् स्वामी कुवलयानन्द ने कहा है— जो प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, मैं उनके लिए पूरे जोर से कहता हूँ कि, केवल पूरक और रेचक से ही उन्हें प्राणायाम आरंभ करना चाहिये। The physical culturist can get all the advantages he wants to derive from Pranayam, by the practic of Puraka and Rechaka only— जो शरीर चर्चा करते हैं वे केवल पूरक और रेचक से ही प्राणायाम का पूरा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कुंभक करने के लिए कभी भी बहुत जल्दीबाजी करना ठीक नहीं। आरंभ

करने के बाद भी बहुत धीरे-धीरे अत्यन्त सावधानी के साथ इसकी मात्रा में वृद्धि करनी चाहिये (Pranayam, p. 55)।

किंतु कुंभक कुछ भी नहीं है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये। स्नायु-तन्तु एवं मन को शान्त तथा सबल बनाने में यह अद्वितीय है। इसीलिए प्राणायाम का अभ्यास एक श्रेष्ठ साधना है एवं योगाभ्यास कहने से साधारणतया प्राणायाम का ही बोध होता है।

प्राणायाम करना हो तो स्थिर बैठकर सुखासन आदि कोई एक आरामप्रद आसन लगाकर मेरुदण्ड को सोधा रखकर एवं शरीर को ढीला करके बैठना उचित है। जो स्नायु रोगों से ग्रस्त हों या जिनका स्वभाव विशेष रूप से चंचल हो अथवा जो सब काम जल्दीबाजी में करते हैं, उन्हें हमेशा स्थिर आसन मे बैठकर प्राणायाम करना चाहिये। ली हुई हवा को बाहर निकाल देने के बाद दाहिनी नाक को उँगली से बन्द कर बायीं नाक से पूरक ग्रहण करना उचित है। उसके बाद बायीं नाक को बन्द कर दाहिनी नाक द्वारा रेचक करना पड़ता है। किन्तु एक साथ हो दोनों नाकों द्वारा वायु ग्रहण और विसर्जन किया जा सकता है तथा प्राणायाम की वही सबसे निरापद विधि है।

सच तो यह है कि प्राणायाम इस प्रकार रहना चाहिये कि यह सहज-साध्य, पूर्ण निरापद एवं हितकर हो। यदि एक ही साथ दोनों नाकों से श्वास लेकर दोनों ही नाकों द्वारा छोड़ी जावे तो प्राणायाम सबसे निरापद होगा।

वास्तव में प्रकृति जिस प्रकार श्वास लेती और छोड़ती है, ठीक उसी प्रकार श्वास को जरा अधिक देर तक लिया और छोड़ा जा सकता है। श्वास लेने के बाद जरा भी देर किये बिना श्वास छोड़ देना चाहिये (J. P. Muller—My System, p. 51)।

श्वास लेते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि श्वास लेते समय साथ ही साथ पेट भीतर ढुक जावे और छाती ऊँची उठ जावे। ऐसा होने पर ही श्वास-प्रश्वास का ठीक-ठीक व्यायाम होता है। इससे छाती

और पेट में स्थित जितने भी यन्त्र हैं, उनकी एक प्रकार की मालिश हो जाती है। उससे शरीर के सकल मुख्य यंत्र एक-सी उद्दीपना प्राप्त करते हैं।

इस समय सारे शरीर को शिथिल करना पड़ता है। नाक के दोनों छेद फैले रहने चाहिये। हवा पिचकारी की तरह कभी भी शरीर में न जावे। फैले हुए नासिका छिद्र की राह स्वाभाविक तौर पर भीतर जानेगी और बाहर आवेगी

दुर्बल रोगियों को बिस्तर पर ही प्राणायाम करना अच्छा होता है बिछौने पर तनकर लेटकर दोनों हाथों को शरीर से सटाना चाहिये। उसके बाद धीरे धीरे छाती को हवा से भरना उचित है। इसके बाद धीरे-धीरे हवा निकालनी जरूरी है. सबल व्यक्ति भी इस प्रकार प्राणायाम करे तो कोई आपत्ति नहीं है

खड़े होकर प्राणायाम करना हो तो पहले सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को शरीर के दोनों तरफ झुलाना चाहिये उसके बाद धीरे-धीरे छाती को हवा से भरना उचित है। श्वास लेते समय पेट के भीतर के ढुके और छाती फूले। उसके बाद धीरे-धीरे हवा निकालनी चाहिये।

इस समय छाती को सामने की ओर फैलाना जरूरी है। इस प्रकार अंग संस्थान से शरीर के समस्त यंत्र यथास्थान रहते हैं। इसीलिए इस प्रकार खड़े होने एव चलने का अभ्यास करना उचित है। इससे पाचन क्रिया में सहायता मिलती है एव सारे शरीर को लाभ पहुंचता है। जो छाती फुलाकर चलता है हम उसे वीर कहते हैं। साहवों की भांति छाती फुलाकर सीधे चलने का अभ्यास करके अवश्य ही वीर बना जा सकता है।

अथवा दोनों हाथों को कमर पर रखकर सीधा, खड़ा होना पड़ता है। कुहनी बाहर रहे। इस समय सिर, गला और धड़ एक सीध में रखना चाहिये।

घूमते-घूमते भी प्राणायाम किया जा सकता है। सीधे चलते-चलते पांच-छः कदम तक श्वास खींचना व उसके बाद फिर दस-बारह कदम जाते-जाते श्वास छोड़ी जा सकती है। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करना अत्यन्त लाभप्रद होता है (Great Ascetics and Eminent Physicians—Students' New Hygiene and Physical, Culture, p. 86)। क्योंकि श्वास-प्रश्वास का व्यायाम हमेशा ही खुली एवं शुद्ध हवा में करना उचित है।

यदि शारीरिक व्यायाम के साथ इसे किया जावे तो श्वास-प्रश्वास के व्यायाम से सबसे अधिक लाभ होता है। उससे छाती में वायु का आवागमन बढ़ता है एवं ली गई ऑक्सीजन यथेष्ठ रूप में शरीर के काम में आती है।

किंतु हर हालत में श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने पर भी सब व्यायामों से एक ही फल नहीं होता। इसलिए श्वास-प्रश्वास के व्यायाम के लिए कुछ निश्चय व्यायाम किये जा सकते हैं। ये व्यायाम श्वास-प्रश्वास के व्यायाम के लिये विशेष रूप से उपयोगी हैं। उन व्यायामों की विधि इस प्रकार है।

पहले सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को शरीर के पास झुलाना होता है। उसके बाद श्वास लेने के बाद पैरों की उँगलियों पर शरीर का भार रखकर शरीर को जितना ऊँचा हो सके उठाना चाहिये। इस समय दोनों हाथ सामने और ऊपर की ओर इस तरह उठाना चाहिये कि दोनों हाथ सिर के ऊपर आपस में मिल जावें। फिर पैरों की उँगलियाँ और हाथ नीचे लाते-लाते धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिये। नीचे करते समय दोनों हाथ एक गोलाकार रूप में ले आना आवश्यक है।

सीधे खड़े होकर गहरी साँस लेना, उसके बाद श्वास छोड़ने के साथ-साथ हाथ को कटोरी समान करके सारी छाती को थपथपाना।

दोनों पैरों को फैलाकर तथा शरीर को सामने की ओर झुकाकर दोनों हाथों से पैरों के बीच की भूमि को स्पर्श करना। उसके बाद शरीर

को उठाने के साथ-साथ श्वास ली जाती है। शरीर को सीधा करने के बाद भी पीछे की ओर शरीर को मोड़ना होता है एवं उस समय तक श्वास ग्रहण चलता रहता है। इसके बाद श्वास छोड़ते-छोड़ते फिर दोनों पैरों के बीच की भूमि को स्पर्श करना होता है।

सीधे खड़े होकर श्वास लेने के साथ साथ दोनों हाथों को शरीर से सटा-कर कंधों के पास लाकर इस तरह टेढ़ा करना कि बड़ो उँगलियाँ कंधों को स्पर्श करें। इसके बाद श्वास छोड़ते-छोड़ते दोनों हाथों को फिर फैलाकर गोलाकर रूप में लाकर शरीर से मिलाना होता है। श्वास छोड़ने के समय दोनों मुट्ठियाँ कसकर बधी रहनी आवश्यक हैं।

पूर्वावस्था में ही खड़े रहकर श्वास लेते-लेते दोनों हाथों को सामने की ओर लाकर सिर के ऊपर उठाना तथा कुछ अंशों में पीछे की ओर अधिक ले जाना होता है। उसके बाद फिर श्वास छोड़ते-छोड़ते दोनों हाथों को सामने की ओर लाकर पहले की अवस्था में ले आना चाहिये।

ये व्यायाम श्वास-प्रश्वास के व्यायाम के लिए विशेष उपयोगी होते हुए भी अन्य व्यायामों के साथ भी श्वास-प्रश्वास का व्यायाम किया जा सकता है। किंतु श्वास-प्रश्वास का व्यायाम तथा अन्य व्यायाम हमेशा अलग करना चहिये। वास्तव में दैनिक साधारण व्यायाम के साथ श्वास-प्रश्वास के किसी भी व्यायाम को संयुक्त करना उचित नहीं है (Sophia Marquise A. Ciacoline—Deep Breathing p. 33)।

तो भी जिन व्यायामों में अधिक समय लगता है, उनमें इच्छानुसार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम किया जा सकता है।

यहाँ तक कि किसी भी प्रकार का व्यायाम धीरे-धीरे करके उसके साथ श्वास-प्रश्वास का व्यामाम किया जा सकता है। इस प्रकार दण्ड बैठक आदि किसी भी व्यायाम के साथ श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने में कोई बाधा नहीं है

[४]

श्वास-प्रश्वास के व्यायाम में सावधानी

किंतु जैसे-तैसे कर लेने की अपेक्षा प्राणायाम न करना ही उचित है। इसे ठीक तरह से करने पर ही लाभ होता है, अन्यथा हानि ही हो सकती है।

श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करने में मुख्य बात यह है कि हमेशा धीरे-धीरे सब प्रकार की हड़बड़ी छोड़कर उसे करना चाहिये और इस प्रकार करना जरूरी है कि श्वास लेते और छोड़ते समय शब्द न हो। कभी-कभी प्राणायाम के कारण जो हानि होती है, वह अधिकांशतः जल्दी-जल्दी श्वास-प्रश्वास ग्रहण करने के कारण होती है।

सर्वदा नाक द्वारा ही प्राणायाम का श्वास लेना तथा छोड़ना चाहिये। अन्य अवसरों पर भी श्वास-प्रश्वास के लिए केवल नाक का ही उपयोग करना चाहिये। हवा लेने और छोड़ने में विशेष रूप से उपयोगी बनाकर ही प्रकृति ने नाक की रचना की है। नाक के भीतर जो रोम हैं वे फिल्टर का काम करते हैं। हवा की अधिकांश गंदगी को रोककर यह उसे भीतर जाने देती है। इसके अलावा नाक हवा की गर्मी और सर्दी को शांत कर उसे ग्रहणोपयोगी बनाकर प्रवेश कराती है। ये सब काम मुंह द्वारा कभी संभव नहीं होते हैं। सचमुच में मुंह से सांस लेने पर हवा के साथ धूल और धुंआ आदि गंदे पदार्थ बेरोक टोक फेफड़े में चले जाते हैं एवं छाती में भिन्न-भिन्न रोगों को पैदा करते हैं। सच तो यह है कि मुह द्वारा सांस लेना रोगीपन की निशानी है यह एक अस्वास्थ्यकर अवस्था है। इन कारणों से हमेशा प्राणायाम के समय मुह बन्द रखना चाहिये।

प्राणायाम करने का मुख्य उद्देश्य यह हैं कि देह की श्वासक्रिया में अधिक से अधिक ऑक्सीजन पहुंचाना। लेकिन ज्यादा ऑक्सीजन ग्रहण करने से ही वह ज्यादा काम आयेगा यह बात नहीं। प्रकृति अतिरिक्त

ऑक्सीजन को निश्वास वायु के साथ बाहर फेंक देती है। इसलिए प्राणायाम के पहले शरीर में ऑक्सीजन की मांग (demand) पैदा कर लेना जरूरी है। प्राणायाम करने के पहले कोई व्यायाम करके शरीर को गरम कर लेने से इस उद्देश्य की सिद्धि होती है (Geo. E. Taylor, M. D —Massage, p. 98)। कोई एक व्यायाम कर लेने से ही शरीर गरम हो जाता है। इस कारण से देह की अग्नि अधिक ऑक्सीजन की आहुति मांगती है। तब प्राणायाम ग्रहण करने से ही सबसे ज्यादा लाभ होता है। इसलिए प्राणायाम के पहले व्यायाम के बदले मालिश भी की जा सकती है।

किंतु बुखारवाले सभी रोगी कोई भी व्यायाम न कर प्राणायाम कर सकते हैं, क्योंकि उनका शरीर हमेशा गरम ही रहता है।

प्राणायाम करने के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि हवा भीतर में रुक न जाय। हिचकना और झांकना बिलकुल छोड़ देना चाहिये। साधारणतया उत्तेजित न होकर शांतिपूर्ण भाव से स्थिर होकर सांस लेने से इन उपद्रवों से छुटकारा मिल जाता है।

प्राणायाम हमेशा खाली पेट करना चाहिये। पूरे आहार के चार घंटे बाद प्राणायाम करना ठीक है। यहाँ तक कि दूध आदि साधारण भोजन के दो घंटे बाद प्राणायाम करना उचित है और प्राणायाम करने के बाद आधा घंटा रुक कर आहार करना चाहिये।

पहले पहल प्राणायाम की संख्या आधा दिन में व एक बार में सात बार से अधिक नहीं होनी चाहिये। उसके बाद प्रति सप्ताह तीन बार के हिसाब से वृद्धि करनी आवश्यक है। अंत में वृद्धि करते-करते हर बार १२० बार तक किया जा सकता है। सुबह और शाम इस प्रकार प्राणायाम करने से २४० बार करना होता है। शरीर गठन की इच्छा करनेवाले के लिए यह मात्रा पर्याप्त है (Srimat Swami Kuvalayananda—Pranayam, p. 77, Bombay; 1935)।

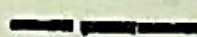
यदि श्वास-प्रश्वास का व्यायाम शारीरिक व्यायाम के साथ करना हो

तो दिन में दो बार करना ही काफी होगा। किंतु सुविधा हो तो स्वाभाविक तौर से खड़े होकर या मेरुदण्ड को सीधा करके बैठकर दिन में आठ-दस बार भी यह क्रिया जा सकता है (Herbert A. Parkyn, M. D.—Auto-suggestion p. 124)।

इस प्रकार देर तक निश्वास-प्रश्वास ग्रहण करते-करते दीर्घ श्वास-प्रश्वास ग्रहण करने का अभ्यास-सा हो जाता है। अंत में हमेशा के लिये ही श्वास गहरी हो जाती है।

श्वास-प्रश्वास का व्यायाम हमेशा खुली हवा में ग्रहण करना चाहिये। इसलिए इसे खुले मैदान में या छत पर ग्रहण करना उचित है। यदि खुली हवा में व्यायाम करने को सुविधा न हो तो खिड़कियों के पास खड़े होकर किया जा सकता है। विस्तर पर पड़े रोगी खिड़कियाँ खोलकर कर सकते हैं।

प्राणायाम सदा शुद्ध हवा में हो करना चाहिये। कहीं भी खुली हवा पाते ही लोभी लोगों की तरह श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करना उचित है। किंतु वायु यदि निःसन्देह रूप से शुद्ध न हो, वायु में धुआँ, धूल, बदबू हो या हवा गरम हो तो ऐसी हवा में प्राणायाम करना किसी भी हालत में ठीक नहीं। उससे लाभ के बदले हानि ही हो सकती है।



बाईसवाँ अध्याय

विश्राम और आरोग्य

[१]

जीवन के मार्ग पर श्रम और विश्राम कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं। परिश्रम से शरीर की बैटरी में से जो शक्ति खर्च होती है, विश्राम शक्ति का वह शून्य पात्र भर देता है। शरीर को यदि यह विश्राम न मिले तो शरीर कमजोर हो जाता है।

श्रम के बाद विश्राम और विश्राम के बाद श्रम 'इसी सिद्धांत पर हमारा जीवन आश्रित है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त श्रम और विश्राम के हेर-फेर से ही हम जीते हैं।

हमारे शरीर के प्रत्येक यंत्र का जैसे श्रम का समय नियत है, वैसे ही विश्राम का भी। हमारे शरीर में हृदय ही एक ऐसा यंत्र है जिसे निरन्तर काम करना पड़ता है। पर वह भी प्रत्येक स्पंदन में एक बार विश्राम ले लेता है। इस प्रकार विश्राम कर अगले स्पंदन के लिए वह शक्ति प्राप्त करता है। हमारा मस्तिष्क, पाकस्थली आदि भी विश्राम लेकर ही फिर श्रम के लिए शक्ति प्राप्त करते हैं।

श्रम के अंत में शरीर स्वयं टूटने लगता है। उस समय प्रकृति स्वयं विश्राम चाहती है। तब आवश्यक विश्राम कर लेने पर शारीरिक और मानसिक शक्ति लौट आती है।

श्रम एक प्रकार का ध्वंसकार्य है। हर श्रमयुक्त कार्य से शरीर कुछ अंशों में क्षय होता है परिमित विश्राम द्वारा इस क्षय को पूरा करना आवश्यक है, अन्यथा शरीर-क्षय का भय रहता है। इसीलिए एक बार थक जाने के बाद विश्राम नहीं कर श्रम में लग जाने से शरीर की जो क्षति होती है वह आसानी से पूरी नहीं होती।

जिस प्रकार थकान के बाद विश्राम का आवश्यक है, उसी प्रकार कई दिनों के श्रम के बाद भी एक दिन विश्राम करना आवश्यक है। इसलिए छः दिन काम करने के बाद एक दिन विश्राम लेने की व्यवस्था समाज में प्रचलित है। संभव हो तो कुछ दिनों काम करने के बाद भी इसी तरह थोड़ा लम्बा आराम लेना चाहिये। इस प्रकार विश्राम में बिताया हुआ समय कभी व्यर्थ नहीं जाता। कारण the time spent in rest in an investment for the future—जो समय विश्राम में बिताया जाता है वह भविष्य में शक्ति का भण्डार होता है (Frederick Tice, M. A., F. R. C. P.—Practice of Medicine, Vol. IV, p. 486)। इसीलिए जो लोग दिमागी काम करते हैं (brain workers) वे शारीरिक श्रमिकों की (muscle workers) अपेक्षा लगभग पन्द्रह-बीस साल अधिक आयु पाते हैं (Otto Juettner, M. D., Ph.D.—A Treatise on Natural Therapeutics, p. 334)।

लेकिन जिन्दगी में विश्राम का सुयोग पाना सरल नहीं है। इस दुनिया में एड़ी चोटी का पसीना एक करने पर गुजर बसर का सामान जुट पाता है। पहले की सी हालत अब नहीं रही। जीवन लीला का संसार अब जीवन संग्राम के संसार में परिणत हो गया है। नई परिस्थितियों के कारण आज लोग घरों में चुप नहीं बैठ सकते। आजकल दुनिया के बड़े-बड़े शहरों के लोगों के फुटपाथ पर चलने को हम चलना न कहकर दौड़ना कहें तो अधिक सार्थक होगा। एक ओर तो अभाव और दरीद्रता की मार, दूसरी ओर लोभ और प्रभुत्व का मोह मनुष्य को पागल किये दौड़ाये जा रहा है। इस कार्य-व्यस्तता के युग में विश्राम एक समस्या बन गई है।

लेकिन यदि हम चाहें तो इस कार्य-व्यस्तता में भी थोड़ा बहुत विश्राम ले सकते हैं। श्रम से हमारा छुटकारा तो सम्भव नहीं है, पर यत्न द्वारा श्रम को हलका किया जा सकता है। संभव है हमें विश्राम के बहुत

अवसर न मिलें पर ऐसा उपाय हो सकता है कि थोड़े से आराम से पूर्ण विश्राम का फल मिल जाय।

एक विद्वान का कथन है कि मनुष्य काम के बोझ से उतना नहीं मरता जितना जल्दीबाजी और उद्वेग (hurry and worry) से। ये दोनों श्रम को गुरुतर बना देते हैं। परिश्रम से शरीर का जितना क्षय होता है, उससे कहीं अधिक जल्दीबाजी और चिन्ता से होता है। इसलिए जब काम में उत्तेजना नहीं होती तब श्रम मानो कन्नी काटकर चला जाता है। श्रम से बचा नहीं जा सकता। पर काम इस तरह से किया जा सकता है कि उसमें जल्दीबाजी और चिन्ता न रहें। श्रम को कम कर लेने का यही कौशल है। इसे गीता की भाषा में 'कर्मषु कौशलम्' कहते हैं।

जैसे हमें श्रम को कम करना नहीं आता वैसे ही हम विश्राम की कला भी नहीं जानते। हम घूमने निकलते हैं तब भी मन को निश्चिन्त नहीं रख पाते। घर लौटने के लिए मन छटपटाता रहता है। जब हम बाहर हवा पानी बदलने जाते हैं, तब भी बहुधा यही हालत होती है। ऐसे अस्थिर मन से कभी विश्राम नहीं मिल सकता।

शरीर जब विश्राम करता है, तब भी मन तो विचारता ही रहता है। कभी विद्वेष में, कभी क्रोध और हिंसा में और कभी भ्रांति श्रांति की योजनाएँ गढ़ते हुए अदम्य कर्मपिपासा में मन गोते खाता रहता है। साथ ही साथ रक्तस्रोत धमनी में घोड़े की तरह छूटता। तब कहिये बेचारे शरीर को विश्राम कहाँ से नसीब हो। आरामकुर्सी पर या नरम बिछौने पर पड़े रहने से भी पूर्ण विश्राम होता नहीं। या तभी देह का क्षय होता रहता है।

अतः श्रम में जिस प्रकार विश्राम होता है, उसी प्रकार विश्राम में भी शरीर में श्रम चलता रहता है। इसीलिए आराम के मानी सिर्फ शारीरिक आराम नहीं है। शारीरिक विश्राम का मानसिक विश्राम से मेल होने पर ही शरीर को पूर्ण विश्राम का सौभाग्य प्राप्त होता है (Herbert A. Reimann, M. D.—Treatment in

General Medicine, Vol. 4, p. 722 Philadelphia, 1948)।

[२]

पर विश्राम का मानसिक पक्ष हमारी दृष्टि से सदा ओझल रहता है। शय्या पर पड़े रहने की हालत में भी हमारा शरीर खींचा तना रहता है। इसका कारण मन की उत्तेजित अवस्था है। किसी सोये हुए बच्चे को देखने से ही हम समझ सकते हैं कि हमारे विश्राम में कहाँ त्रुटि है। बच्चा निश्चिन्त हो देह को शिथिल किये शय्या पर पड़ा रहता है। हम इस प्रकार क्यों नहीं पड़े रह सकते? यदि हम भी उस तरह से बिछौने के साथ अपने को एकाकार करके निश्चिन्त पड़े रह सकें तब ही हमारा विश्राम सफल और सार्थक होता है। इसीलिए दैहिक विश्राम से मानसिक विश्राम बहुत अधिक आवश्यक है (Oliver E. Byed, M. D.—Health Instruction Yearbook. p. 50, California, 1949)।

कुछ दिनों तक कोशिश करने से ठीक बच्चों की तरह ही सारे शरीर को शिथिल करके विश्राम किया जा सकता है। इस प्रकार विश्राम के निमित्त शरीर को शिथिल (relax ; करना ही सबसे प्रधान प्रश्न है। कुछ ही दिनों अभ्यास से सारे शरीर में इस तरह की शिथिलता लाई जा सकती है प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा में इसे आरोग्यमूलक शिथिलता (curative relaxation) कहा जाता है। यह अभ्यास एक प्रकार की साधना है। इसे विश्राम की साधना कहा जा सकता है।

इस प्रकार विश्राम करने की एक विशेष पद्धति है। इसे करने के पहले शरीर और मन को तैयार कर लेना जरूरी है। सबसे पहले मन को चिन्ताशून्य (vacant) करना आवश्यक हैं। उसके बाद बिछौने पर पीठ के बल धीरे-धीरे लेटकर जैसे बिल्ली अंगड़ाई लेती है ठीक वैसे ही एक नाममात्र की कसरत कर लेनी चाहिये। पहले एक हाथ को धीरे-धीरे जितनों दूर तक संभव हो फैलाकर फिर वापस लाया जाय उसके बाद उस हाथ को बिछौने पर इस तरह से गिरने दिया जाय मानो वह टूटकर गिर

गया हो। उसे वहीं छोड़ें। फिर दूसरा हाथ भी उसी तरह फैला और सिकोड़कर गिरने दें। इसके बाद एक एक करके दोनों पैरों को जहाँ तक सभव हो फैलाकर फिर उनको सिकोड़कर छाती के पास लाना चाहिये। जब दोनों घुटने छाती से मिल जायं तब सिर को घुटनों के साथ मिला दें। इस समम इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि मेरुदड (रीढ़ की हड्डी) फैल जाय। इस प्रकार जब मेरुदंड अच्छी तरह फैल जाय तब सिर और दोनों पैरों को अपनी जगह पर इस तरह जाने दें मानों वे निष्प्राण गिर पड़े हों

अब दोनों आँखें बन्द करनी चाहिये। उसके बाद एक एक करके शरोर के प्रत्येक अंग के बारे में यह सोचना चाहिए कि वह अंग शिथिल रहा है। किसी अंग पर मन को टिकाते ही आप समझ पायेंगे कि अन्दर ही अन्दर एक उत्तेजना की स्रोत जारी है। तभी हम इस बात का ठीक-ठीक अनुमान कर पाते हैं कि विश्राम के लिए पड़े रहते पर भी शरीर आराम नहीं पाता। किन्तु क्षण भर इस तरह सोचने मात्र से ही वह अंग शिथिल हो जायगा, यानी उसकी सारी उत्तेजना जाती रहेगी। कम से कम थोड़ा अभ्यास करने पर यह दशा अवश्य आ जाती है। क्योंकि यह एक तरह की स्वकल्प भावना (auto-suggestion) है।

पहले एक पैर के बारे में यह सोचना उचित है कि सारा पैर शिथिल और शांत होता जा रहा है। पहले पैर की अंगुलीयों के सम्बन्ध में इस प्रकार सोचना शुरु करके उसके बाद इस भावना को ऊपर की ओर ले जाना चाहिये। फिर दूसरे पांव के बारे में भी इसी प्रकार सोचें। फिर अलग अलग एक हाथ के सम्बन्ध में सोचें इसके बाद पीठ के बारे में सोचें। पीठ के बारे में सोचने के समय यह सोचना चाहिये कि मेरुदन्ड के नीचे से शुरू करके क्रमशः ऊपर की ओर के अँग शिथिल होते जा रहे हैं। तब पेट, छाती गरदन और मुंह के बारे में इसी प्रकार सोचे। इस तरह कुछ दिन अभ्यास करने पर विचार मात्र से ही हाथ, पैर आदि तुरन्त शिथिल पड़ जाते हैं। फिर दोनों हाथों को पेट के ऊपर उठाकर पेट के नीचे के

ओर संयुक्त अवस्था में रखे। हाथों को बहुत ढीला रखना चाहिये। इससे शुरू-शुरू में पेट पर कुछ दिक्कत-सी मालूम हो सकती है। लेकिन यह दिक्कत जल्द ही दूर हो जाती है। इसके बाद शरीर की इस शिथिल अवस्था को भंग किये बिना ही एक पैर का टखना (ankles) दुसरे पांव को टखने पर रखें (E. J. Boome—Relaxation in Everyday Life, pp. 36—39)।

इस क्रिया में साधारणतया तीन-चार मिनट समय लगता है। किंतु इससे ही सारे शरीर में एक प्रकार की आश्चर्यजनक शान्ति व्याप्त हो जाती है और ऐसा मालूम होता है मानो सारा शरीर ही आकाश मे तैर रहा हो।

इस प्रकार शरीर शिथिल हो जाने पर साधारणतया अपने आप ही निद्रा आ जाती है, लेकिन उस समय सो जाना उचित नहीं है। उस समय जागते रहकर देह की यह आश्चर्यजनक शांतिमय अवस्था पर विचार करना चाहिये। किंतु इस समय सो जाने पर भी शरीर इतना विश्राम पाता है कि साधारण विश्राम की अपेक्षा वह अधिक गहरा होता है। (Charles Sanford Porter, M. D.—Milk-cure, p. 40)। इस अवस्था को करतलगत करने के लिए साधारणतया एक से दो सप्ताह तक का समय लगता है। लेकिन एक बार अभ्यास हो जाने पर बिछौने पर लेकर चाहने मात्र से ही देह, शिथिल और ढोली हो जाती हैं।

देह के इस प्रकार शिथिल हो जाने पर साथ ही साथ श्वास-प्रश्वास का व्यायाम भी किये जावे तो बहुत फायदा होता है। वास्तव में श्वास-प्रश्वास का व्यायाम आरोग्यमूलक शिथिलता का एक अपरिहार्य अंग है। शरीर शिथिल हो जाने के बाद तीन-चार बार तक श्वास-प्रश्वास का व्यायाम किया जा सकता है। इस दशा में इस व्यायाम को बहुत जल्दी जल्दी करने की जरूरत नहीं होती। काफी आराम कर थोड़े-थोड़े समय के बाद एक-एक बार कर लेना ही काफी हो जाता है। लेकिन इस समय

देह की शिथिलता भंग न होने पाए, इसका ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए श्वास-प्रश्वास के व्यायाम को बहुत धीरे-धीरे करना उचित है। तथापि शिथिलता सध जाने पर शरीर जितना शिथिल हो जाता है, श्वास-प्रश्वास उसी अनुपात से गहरे हो जाते हैं उस समय चाहे जितनी बार व्यायाम किया जा सकता है (E. J, Boome and M. A. Richard --Relaxation in Everyday Life pp. 35—45)।

इस तरीके से आधे घण्टे के लिए शरीर को शिथिल कर देना काफी है। किन्तु प्रतिदिन इसके करने की जरूरत नहीं होती। साधारण दशा में सप्ताह में दो दिन करना काफी होता है। लेकिन उत्तेजनामूलक हर एक स्नायविक रोग में इसका नित्य करना आवश्यक होता है।

उसके वाद ज्यों-ज्यों रोग घटता जाय, दिन बढ़ाते जायं।

देह और मन की श्रांत अथवा उत्तेजित दशा में यह किसी भी समय किया जा सकता है। किन्तु साधारण दशा में खाली पेट या भोजन के पहले करने से सबसे अधिक लाभ होता है।

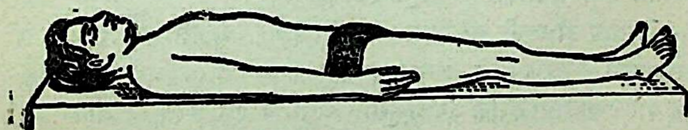
[२]

थके हुए. शरीर में फिर ताजगी लाने के लिए शरीर को शिथिल करने के समान संसार में और कुछ है या नहीं इसमें सन्देह है शरीर की श्रांत दशा में सिर्फ दश मिनट के लिए यह कर लिया जाय तो सारी थकान जाती रहती है और क्लांति कट जाती है। बहुत बार मेहनत के वाद कुछ काल के लिए शरीर को इस प्रकार शिथिल कर लेने पर फिर काम में लगाया जा सकता है।

शरीर और मन की उत्तेजित अवस्था में भी चाहे जिस समय इस विधि को अपनाकर आश्चर्यजनक लाभ उठाया जा सकता है। मन के अकस्मात् क्रुद्ध या उत्तेजित हो जाने पर बिछौनों में पड़कर शरीर को शिथिल करने से ही मन शान्त हो जाता है। अधिक क्या, जो लोग अस्वाभाविक उपाय से शरीर को नष्ट करते हैं वे भी देह के उत्तेजित

होने के बाद भी शरीर को शिथिल कर सकें तो बात की बात में यह अस्वाभाविक उत्तेजना चली जाती है।

संसार में शरीर पर काबू पाना सहज है, किंतु मन को काबू या वश में लाना कठिन है। यह हमेशा छुटता रहता है। इसीलिए साधारण मनुष्य की मन की अवस्था क्षिप्तावस्था कही जाती है। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि मांसपेशियों की शिथिलता मन पर भी अपना असर डालती हैं। मन की चञ्चल और उत्तेजित अवस्था भी बहुत बार शरीर को ज्ञात और अज्ञात उत्तेजना से पैदा होती है। इसीलिए कुछ दिनों शरीर की शिथिलता का अभ्यास कर लेने पर जब मांसपेशियों और स्नायुओं की उत्तेजना कम हो जाती है तब मन भी उसी के साथ-साथ शांत और संयत हो जाता है और मानसिक शक्ति काफी बढ़ जाती है। इसीलिए देह को शिथिल करने की पद्धति हमारे यहाँ योगशास्त्र में एक आसन की भाँति बतलाई गई है। अंगरेजी में जिसे शरीर को शिथिलता (relaxation) कहा जाता है हमारे योगशास्त्र में उसे शवासन कहा गया है। कोई-कोई यूरोपियन इस बात का दावा करते हैं कि उन्होंने इस पद्धति का आविष्कार किया है। लेकिन शरीर और मन को शांत करने-वाले इस अद्‌भुत कौशल का यूरोपियनों के दिमाग में आने के कई हजार वर्ष पहले भारतीय ऋषियों को ज्ञात था।



शवासन

योगशास्त्र में इसकी बड़ी प्रशंसा है।

एक भारतीय योगी का कहना है जैसे नल खोल देने से पानी की धारा अबाध गति से बहने लगती है वैसे ही शरीर को शिथिल कर देने से सारे स्नायुओं ने शक्ति-धारा बहने लगती है।

वास्तव में कुछ दिन शरीर की शिथिलता का अभ्यास कर लेने पर मन की दिशा में भी अद्भुत परिवर्तन हो जाता है। इसे करने का फल यह होता है कि क्रोधी और चिड़चिड़ा स्वभाव शांत हो जाता है, कलह-स्पृहा दूर हो जाती है, मनुष्य उत्तेजना-रहित होकर युक्तिपूर्वक बातें करने लगता है, सहज में घबराता नहीं, भयभीत नहीं होता और काम की कोई बात भूलता नहीं। मन जब इस प्रकार शांत हो जाता है तब शरीर का स्वास्थ्य भी सुधरता है।

कुछ दिनों तक शरीर की शिथिलता का अभ्यास कर लेने पर इस पर ऐसा काबू हो जाता है कि प्रबल उत्तेजना के समय भी किसी के साथ खड़े खड़े बातें करते हुए या राह चलते-चलते इच्छामात्र से ही शरीर को शिथिल करके देह और मन को शांत कर लिया जा सकता है।

[४]

बहुत अधिक परिश्रम के बाद जिस प्रकार देह विश्राम चाहती है उसी प्रकार रोग के समय भी देह काम करने से इनकार करती है। क्योंकि देह जब विश्राम में लीन रहती है, सिर्फ तभी प्रकृति देह को मरम्मत कर लेने का अवसर पाती है। इसलिए सभी रोगों में विश्राम ही एक चिकित्सा है। डा० सैमुएल जैकसन (Dr. Samuel Jackson) ने कहा है, "Rest—absolute rest, is the panacea"—पूर्ण विश्राम सभी बीमारियों का अचूक इलाज है।

विश्राम ही प्रकृति की निजी चिकित्सा है। पशु पक्षी आदि आघात प्राप्त करने से उनके अपने जन्मजात ज्ञान से ही विश्राम ग्रहण करते हैं। एक बार देखा गया है कि जंगली मुरगा श्रेणी के एक पक्षी ने आघात के फलस्वरूप अपना पर तोड़ लिया था। उसी समय वह एक तालाब के पास जाकर चुपचाप बैठ गया। उस स्थान से दो-चार दिन तक हिला तक नहीं। उसीसे उसका पङ्ख जुट गया (Otto Glasser, Ph. D.—Medical Physics, p. 1237, Vol. I, Chicago, 1951)। आजकल के बैण्डेज, पैरिस प्लास्टर तथा सर्वाधुनिक प्लास्टिक

प्लास्टर — आहत अङ्गों को विश्राम देकर प्राकृतिक तरीके से रोग आरोग्य की ही व्यवस्था मात्र है। आघातप्राप्त अङ्ग को इस प्रकार विश्राम देने की व्यवस्था करने से प्रकृति अपने आप उस अंग का संस्कार कर लेती है।

प्रायः सभी प्रकार के दर्दों में मामूली हिलने-डुलने से ही कष्ट अनुभव होता है तब सिर्फ विश्राम लेने से ही बहु त दर्द कम हो जाता है।

विभिन्न स्नायविक रोगों में विश्राम बहुत ही फलप्रद है। क्योंकि पर्याप्त विश्राम, खासकर शिथिलता-अभ्यास द्वारा स्नायु स्निग्ध होते हैं। तथा स्नायुओं को उत्तेजना दूर हो जाती है। अनिद्रा दूर करने का यह एक मुख्य उपाय है। यदि अच्छी नींद न हो तो सभी प्रकार के विश्राम निरर्थक होते हैं। वास्तव में जो स्वाभाविक सच्चा विश्राम है वह सिर्फ सोते समय ही प्राप्त होता है। इस समय सभी उत्तेजनाओं का अन्त होता है और देह उसके क्लान्त तन्तुओं को मरम्मत करने का अवसर प्राप्त करती है। यदि प्रतिदिन ठीक समय पर नींद न आवे, हल्की नींद आवे, या थोड़ी देर के बाद नींद टूट जावे तो लेटने के पहले कुछ देर के लिए देह को शिथिल कर लेना उचित है। कुछ रोज ऐसा करने के बाद देह को शिथिल करने के साथ ही साथ नींद आ जाती हैं और किस समय नींद आती है उसका पता तक नहीं चलता।

तुतलापन को वर्तमान काल में वाक्यंत्र के रोगों में गिना नहीं जाता है। यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुका है कि यह एक स्नायविक विश्रृङ्खलता से सम्बन्धित बीमारी है। रोजाना नियमित रूप से आधे घंटे के लिए देह को शिथिल करने से धीरे धीरे तुतलापन दूर हो जाता है और अन्त में रोगी स्वर-यंत्र की पूर्ण स्वच्छन्दता प्राप्त करता है।

सभी तरह के ज्वर रोगों में विश्राम अपरिहार्य माना जाता है। ज्वर के समय केवल विश्राम से ही बहुत हालतों में ज्वर अपने आप अच्छा हो जाता है। यहाँ तक कि यक्ष्मा रोगी को केवल विश्राम देने से उसका ज्वर और अधिकांश कष्ट अपने आप कम हो जाते हैं। यदि यक्ष्मा के रोगी को आवश्यकतानुसार कुछ दिनों या कुछ सप्ताहों तक विश्राम दिया जाय तो

बहुत बार केवल उसी से रोगी की दुर्बलता, मंदाग्नि, अजीर्ण, हृदय की धड़कन, ज्वर, खाँसी और कफ में कमी हो जाती है और कभी-कभी पूर्ण रूप से दूर हो जाती है (Francis Marion Pottenger, M. D. L. L. D.—Tuberculosis in the Child and the Adult, p. 404)।

चिकित्सा विज्ञान की कितनी ही उन्नति क्यों न हुई हो, विश्राम के बदले में आज तक कुछ भी आविष्कृत नहीं हुआ।

पूर्ण विश्राम वजन बढ़ाने का एक मुख्य सहायक है। इसलिए जिन बीमारों का वजन बढ़ाना आवश्यक है उन्हें सदा ही दीर्घ समय के लिए विश्राम देना जरूरी है। जब देह और मन शांत हो जाता है तथा इच्छा के साथ ही देह को शिथिल किया जा सकता है तब देह का वजन बढ़ता है (Otto Glasser, Ph.D.—Medical Physics, p. 1240, Vol. I, Chicago, 1951)।

Rest permits accumulation of waste to be excreted and the destroyed materials replaced—विश्राम के फलस्वरूप देह का दूषित सञ्चय देह से विदा लेता है और ध्वसप्राप्त तंतु पुनर्गठित होने म सहायता प्राप्त करते हैं (Mark ; Byed, M. D.—Preventive Medicine, p. 512 Philadelphia, 1952)। इसीलिए विभिन्न रोग इससे आरोग्य होते हैं।

विश्राम से हार्ट की मेहनत और साथ ही साथ ब्लड-प्रेशर घट जाते हैं तथा हार्ट फेल्योर (heart failure) बन्द होता है (Charles K. Friedberg, M.D.—Diseases of the Heart, p, 162, Philadelphia 1955)।

वास्तव में विश्राम से दीर्घ जीवन लाभ हो सकता है (Randolph Lee Clark M. Sc., M.D.—The Book of Health, p. 582, NewYork 1953)।

परन्तु सभी की एक सीमा होती है। जब विश्राम बहुत लम्बा होता है तब रोगी के लिए बहुधा यह बहुत नुकसानदेय होता है। आजकल चिकित्सकों का यही मत है कि जब ही रोगी बिना खतरे के बिछौने से उठ सकता है तभी उसे उठ जाना चाहिये। क्योंकि विश्राम का जब प्रयोजन नहीं रहता, तब ही लगातार दीर्घ विश्राम लेने से कोष्ठबद्धता, मूत्ररोग, सिर दर्द, पलंग घाव और मानसिक कमजोरी आदि उत्पन्न हो सकती है। कभी इसके फलस्वरूप हार्ट, फेफड़ा और रक्त चलाचल यंत्र का रोग उत्पन्न होता है एवं हड्डियों में कैलशियम का क्षय होने लगता है (Randolph Lee Clark, M.Sc., M.D.—The Book of Health, pp. 582-3, New York, 1953)।

इसलिए सभी प्रकार के रोगों में, रोग की नाजुक (acute) हालत उतर जाने ने के बाद, रोगी को करवट बदल-बदलकर मालिश का प्रयोग करके तथा हाथ-पैर मोड़ मोड़कर उनके रक्त-आवागमन को सदा ही चालू रखना चाहिये और जभी रोगी चलने में समर्थ हो तभी उसे चलाना उचित है।

स्वस्थ अवस्था में भी यह स्मरण रखना आवश्यक है कि विश्राम और अलसना एक बात नहीं है। रोग के बिना विश्राम का अर्थ ही है "मेहनत के बाद विश्राम"। जो विश्राम श्रम का अनुगमन नहीं करता ·जो देह तथा मन की निष्क्रिय अवस्था को ही दीर्घ बना देता हैं, वह विश्राम नहीं है, वह अलसता है। अत्यधिक श्रम से जिस प्रकार देह का क्षय होता है, अलसता में भी उसी प्रकार मन के अन्दर जंग पकड़ लेता है। अलसता और थकान में यदि एक को चुनना हो तो थकान को ही चुनना चाहिये। खट-खट के मरना भी बल्कि अच्छा है परन्तु जंग पकड़कर मरना ठीक नहीं है—it is better to wear out than to rust out.

तेईसवाँ अध्याय

स्वकल्प भावना (Auto-suggestion)

[१]

शरीर और मन आपस में अभिन्न रूप से मिले हुए हैं। शरीर के साथ मन का एवं मन के साथ शरीर का एक घनिष्ठ लगाव है। मानसिक हालत से शरीर एवं शारीरिक हालत से मन हमेशा ही प्रभावित होता रहता है। कितनी ही बार ऐसा देखा गया है कि सुस्वादु भोजन की कल्पना मात्र से मुंह में पानी भर आता है। कभी-कभी वीभत्स या भयानक घटना देखने से ही पाचन क्रिया बन्द हो जातो है। खून देखने मात्र से ही अक्सर बेहोशी दिखाइ पड़तो है। इन सब बातों से प्रमाण मिलता है कि मन के साथ शरीर का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जिन्हें हम रोग कहते हैं, अधिक अवस्थाओं में वे मन के द्वारा ही प्रभावित होते हैं। कई बार ऐसा देखा गया है कि अचानक डर पैदा हो जाने से ही तरह तरह के रोग पैदा होते हैं। हैजे के समय कितने ही व्यक्ति केवल डर के कारण ही हैजे के शिकार बन जाते हैं। डर जाने के कारण ही बहुधा पतला दस्त होने लगता है। हृदय रोग की चिन्ता करते करते लोग बहुधा हृदय रोग के चंगुल में फंस जाते हैं। चर्मरोगी के कपड़ों के स्पर्श से डर जाने से अक्सर देखा गया है कि, देखते देखते चर्मरोग छूनेवाले व्यक्ति के सारे शरीर में उसके लक्षण प्रकट हुए हैं। यहाँ तक की डाक्टरी किताबों में रोगों के विवरण पढ़ने के कारण दुर्बल-चित आदमी के शरीर में उसके लक्षण फूट निकलते हैं।

इस प्रकार डर के कारण मृत्यु भी संभव है। एक बार चिकागो की एक महिला को साधारण सिर दर्द हुआ। तब ही महिला ने अपनी आदत के अनुसार आलमारी से सिडलिज पाउडर खाने के लिए उसे खोला और